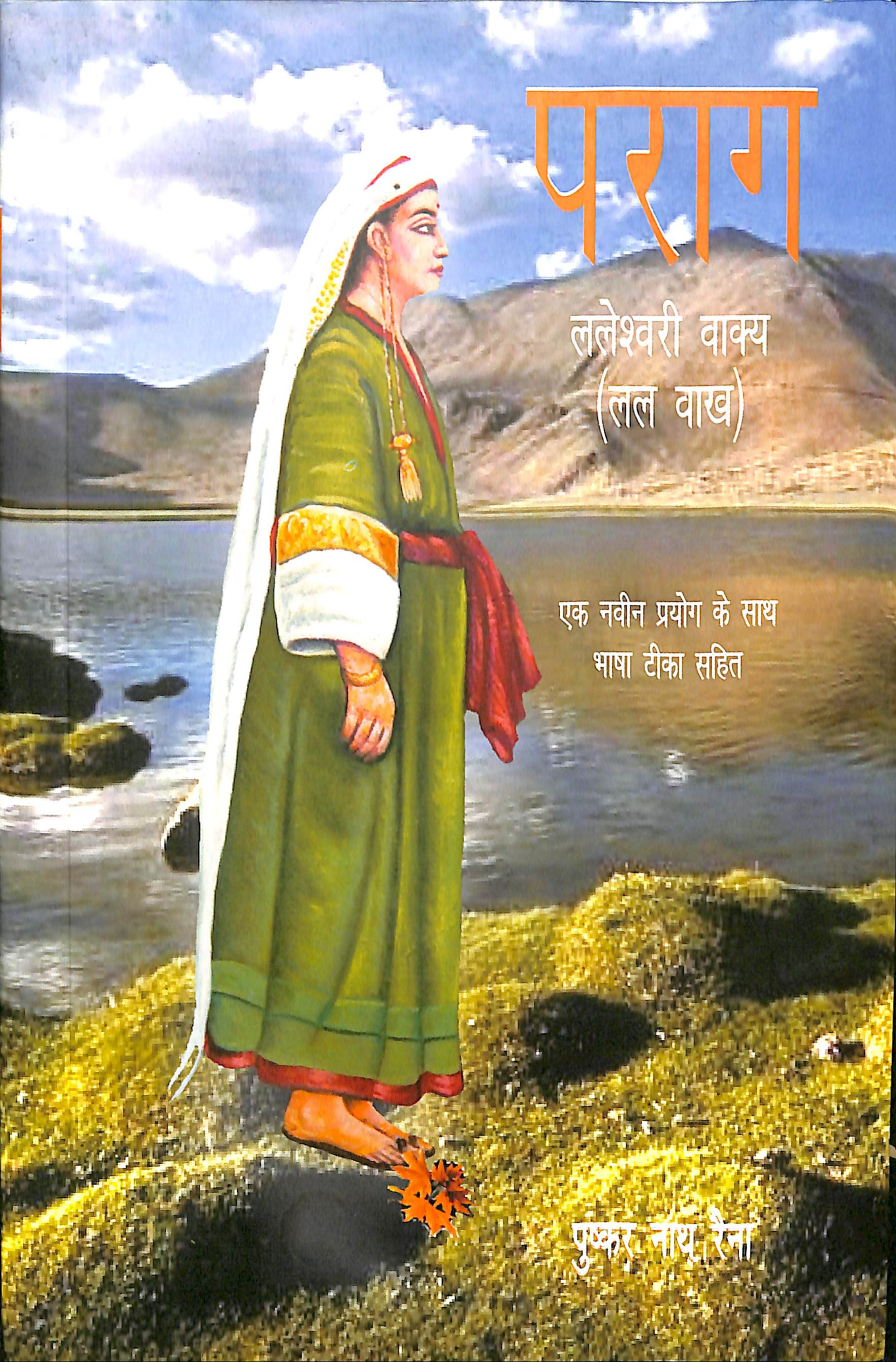


पराग
ललेश्वरी वाक्य
(लल वाख)
एक नवीन प्रयोग के साथ
भाषा टीका सहित
पुष्कर नाथ रैना

पराग

ललेश्वरी वाक्य
(लल वाख)



पराग

ललेश्वरी वाक्य

(लल वाख)

एक नवीन प्रयोग के साथ

भाषा टीका सहित

पुष्कर नाथ रैना

२०१३

पराग

ISBN No : 81-85217-23-8

मुख प्रष्ठ : स्वामी गोविंद कौल द्वारा लेखक को कराये गए ललेश्वरी के दर्शन का चित्रांकन

चित्रांकन : श्री विनोद कपले

प्रथम संस्करण २०१३

प्रकाशक :

उत्पल पब्लिकेशन्स

आर-२२, खनेजा कॉम्पलेक्स, मेन मार्किट शकरपुर,दिल्ली-११००९२

Ph.: 011-22464458 E-mail:utpalpublication@gmail.com

मुद्रक

जॉफरी एण्ड बेल पब्लिशर्स, पिंटर्स

बी-३०,चन्द्रगुप्त कॉम्पलेक्स सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-११००९२

Ph.:011-22047667, E-mail: jeoffrybell@hotmail.com

Contact:

1. Author Shri PN Raina 91-9469173422

pnrainajee@gmail.com

विषय सूची

संदर्भ

प्रस्तुत पुस्तक में प्रयोग किए गए संदर्भों के लघु नाम तथा संकेत प्रत्येक ललवाख के साथ आवश्यकता अनुसार नीचे दिए गए हैं।

क्रम	संदर्भ विवर्ण		लघु नाम
१	ललवाक्याणि ग्रियर्सन		ग्रि
२	ललद्यद जम्मू कश्मीर कलचरल अकाडमी १९८४ संस्करण	जिया लाल कौल तथा नंदलाल तालिब	क
३	दि एसेन्ट ऑफ सेल्फ	बी एन पारिमू	पा
४	ललदूयद	शिबन कृष्ण रैणा	शि
५	ललेश्वरी वाक्य रहस्य	गोपी नाथ रैणा	ग
६	ए पीप इनटु हाय ह्यूमन	बी एन सोपोरी	बी
७	टु दि अदर शोर	जयश्री काक ओडिन	जय
८	का'शिरि अदबुक ता'रीख	नाज़ी मुनवर, शफी शौक	क्यू
९	दि वाईज़ सेईंग्स ऑफ ललेश्वरी	ए एन चिरागी	चि
१०	लल म्यान्यन नज़रन मंज़	बिमला रैणा	बि
११	पराग लल वाख		वा
१३	कुलियात शैख उल आलम जम्मू कश्मीर कलचरल अकाडमी १९८५ संस्करण श्री मोती लाल 'साकी'		नुंद
१४	संस्कृत		सं

इस पुस्तक में प्रयोग किए गए लल, लल माता, ललद्यद आदि नाम ललेश्वरी के ही हैं। वाख का तातपर्य ललेश्वरी के वाक्यों से है।

ॐ

कुंजी

क्रम	मात्रा	प्रभाव	उदाहरण			
1.	अर्धविराम (')		कश्मीरी	हिंदी	कश्मीरी	हिंदी
	(')	(˘) व्यंजन की ध्वनि को छोटा बनाता है	च़'र	चिडिया	न'र	बाज़ू
	(')		ग'र	घडी	छ़'र	खाली
2.	आ'= (ा')		दा'र	दाढी	ना'र	रग
			का'र	गर्दन	हा'र	मैना
3.	अ़ = (़)		च़ू	आप	ब़ = बु	मैं
			ख़ूर	फिसलना	कांग़र	कांगडी
4.	अ़ू = (़ू)		तूर	सर्दी	सूत्य	साथ
			कूत्य	कितने	ग्रूस्य	किसान
5.	ए' = (े')		चे'ह= च़्यह	आपको	म्यह	मुझे
			चे'= च़्यह	तुम को	ज़्यव	जिह्वा
6.	ओ' =(ो')		छ़ो'ट	बौना	मो'ट	मोटा
7.	ज़ छ़		छो'न्य	कम	ल़े'ट	पूंछ
8.	व्व		व्वपकार	उपकार	छ़'वपू	चुण्णी

इस पुस्तक में कुछ नए शब्दों का समावेश किया गया है जैसे गणक = कमप्यूटर। गणकपटी = कीबोंड। गणक चक्री = डिस्क। मूलचक्री = हार्ड डिस्क। गणकीकरन = कमप्यूटरायज़।

उद्‌देश्य

ॐ श्री गुरुवे नमः

लल बो द्रायस लोलरे छ़ान्डान लूसूतुम द्यन क्योह रात।
वुछुम पंडिथ पन्‌ने घरे सुय म्य रो'टुमस न्यछतुर तू साथ।

अर्थात, प्रेम में लीन कई दिन रात मैं उसे (परब्रह्म को) जगह जगह ढूंढने निकली। जिस घडी अपने ही घर में उसे पाया तो वही समय मेरे लिए शुभ महूर्त होकर मैं उसी (उपलब्धि) का अनुसरन करने लगी।

ललेश्वरी के वाक्यों (वाखों) में मेरी रुचि बचपन से ही रही है। १६६० ई में कश्मीर से विस्थापन के पश्चात इनके विस्तृत अध्ययन के उपरांत ऐसा प्रतीत हुआ कि अभी तक लिखी गई पुस्तकों में यद्यपि लेखकों ने विस्तार से लिखा है फिर भी उन सब में भाषा और संदर्भ में अनेक मतभेद हैं। अतः मैंने इन वाखों को पुनः शब्दार्थ एवं भावार्थ देने तथा यथासंभव इन त्रुटियों को कम करने का प्रयास किया है। जैसे-

(क) ललेश्वरी तथा इनके गंभीर एवं रसीले वाख मनुष्य मात्र की एक सांझी धरोहर है। किंतु इनके वाखों की मूल कृति उपलब्ध न होने के कारण वाखों में अर्थ संबंधी कुछ अशुद्धियां तथा विकृतियां आ गई हैं इनको यथावत करने तथा हिंदी में निकटतम संभावित शब्दशः अर्थ देने का प्रयास किया गया है।

उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत पुस्तक के वाख संख्या १८६ में 'वो'न' का अर्थ 'कहा गया है' जब कि 'वो'न' का अर्थ 'जिसको जानकारी है', है तथा

'अशववार' का अर्थ 'घोडा' (पा वा ६५, ६६) दिया है जब कि इसका अर्थ 'घोडे को सिधाने अथवा सिखाने वाला निपुन घुडसवार' है।

वाख संख्या ६२ की तीसरी पंक्ति में ' न ज़्यये ' शब्द का लोप तथा ' खेंच खांच ' शब्द का प्रयोग (क वा ६७) करना तर्क संगत नहीं है।

वाख संख्या १४२ में ' स्वथ ' को 'पुलि शिकस्ता' (क वा १३) तथा ' किनारा' (पा वा ६५) कहा है, जो अर्थ सामंजस्यपूर्ण नहीं है। जब कि ' स्वथ ' का अर्थ ' बल ' है।

वाख संख्या १०२ में ' डिंगि ' का अर्थ 'सोना' (ग्री वा ७६ तथा क वा १२०) दिया है। किंतु मन कभी सोता नहीं है। डिंगि का अर्थ है 'भागेगा' तथा ' व'त्रि' का अर्थ कौल (१२०) ने 'सद हा पेचो ताब' तथा (पा वा ६८) में 'लगातार' दिया है, जो सार्थक नहीं है। जब कि 'व'त्रि' का अर्थ है 'बडी तेज़ी से' एवं 'वेग से'।

वाख संख्या १०३ में 'पो'न्य' का अर्थ 'पानी' (क १२१) बताया है। मेरे विचार में इस का अर्थ ' पुण्यवाण पुरुष ' है।

वाख १५५ में 'प'न्य' शब्द को 'पानी' का अर्थ (पा वा ६३ ' ज्ञान् मार्ग छय हाक वा'र्य दिज़्यस शमूदम क्रय प'न्य') दिया है। जब कि इसका अर्थ ' खूंटे गाडकर जकडकर रखना ' है, जो एक मुहावरा है। वाख ७ (पा वा २० 'नाथ ना पान ना पर ज़ोनुम' अर्थात 'अपने आप और दूसरे में भेद न जाना') में 'परज़ोनुम' शब्द को विभाजित कर 'पर ज़ोनुम' अर्थात ' भेद न जाना' का प्रयोग किया है। जब कि वाख में 'परज़ोनुम' का अर्थ है 'प्रज़नोवुम अर्थात 'पहचाना'। ('प'न्य' शब्द को १५६ वाख में भी देखें)।

वाख १२२ (पा ५० 'पानस ला'गिथ रूदुख म्य चूय') में ' रूदुख ' को 'रोवुख' अर्थात 'खोगया' बनाया है। यह अर्थ शुद्ध नहीं है। क्योंकि ' ला'गिथ ' का अर्थ है 'नाम बदलकर आना' अर्थात आप मेरे अंदर नाम बदलकर रह रहे हैं।

वाख संख्या १२३ 'परुन पोलुम अपो'रुय पोरुम' में प्रथम पंक्ति में स्रोत बताए बिना ही 'अपो'रुय पोरुम' अर्थात 'सूक्षम विद्या पढी' के स्थान पर 'अपो'रुय रोवुम' अर्थात 'जिसे न पढा वह खो गया' शब्द (पा वा ६२) बनाकर मूल में परिवर्तन किया है। मेखला संस्कार के समय माताएं बच्चे को आशीर्वाद देतीं थीं कि ' अपो'रुय पर ' अर्थात 'सूक्षम विद्या' को प्राप्त हो जा।

वाख १३० ' यथ सरस सर्य फो'ल ना व्यचि़य ' (चि वा ४२, भास्कर, ग्रि वा ४७) 'सिर फो'ल' के स्थान पर 'सरसों' लिखा है और भासकर ने संस्कृत अनुवाद में सरशफ (पीली सरसों) कहा है, जो अशुद्ध है, जब कि 'सिर्यफो'ल' का अर्थ 'चावल का टूटा हुआ छोटा सा दाना' अर्थात 'कनकी' होता है।

वाख संख्या १७७ में ' राज़हमस आ'सिथ सपदुख को'लुय ' (ग्रि वा ८६) का अर्थ ग्रींसन नहीं दे सके, जो कि उन्होंने स्वयं अंगीकार किया है। अब इसका अर्थ देने का प्रयास किया गया है।

वाखे संख्या २१५ में 'शिव छुय थलि थलि रोज़ान' (क वा ५६)। यह वाख कदापि ललेश्वरी का नहीं है। इस वाख की टिप्पणी वा २१५ में दी गई है।

वाख संख्या १६० (क वा ११३) में 'पा'यरत्र्व' के स्थान पर 'पा'रव' तथा (पा वा ८८ ए) में 'पा'यरत्र्व च़'रिथ' के स्थान पर 'पा'र वर्ज़ित चरित' जिसका अर्थ 'प्रकृति के विपरीत' दिया है और मूल शब्दों में परिवर्तन किया है।

वाख १ (बि वा ७१ ओम पन् सो द्रस् नावि छस लह हुमान...।) 'आमि पन्' का 'ओम् पन्' 'लमान' का 'लह हुमान', 'सोदरस' का 'सो द्रस्' आदि बनाकर स्रोत दिए बिना वाख में आमूल परिवर्तन किया है।

वाख १३६ में ' च्र्टा ' को 'च्राठा' (बि वा २) बनाया गया है, जो एक निरर्थक शब्द है। जब कि कि 'च्रठ' का अर्थ है 'पूरा जोडना'।

वाख १४० स्रोत बताए बिना ही 'वाख, मानस' का 'वाख-मानस', 'क्वल' का 'कोल' (बि वा १) अर्थ दिया गया है। जब कि ' वाख, मानस ' दो अलग शब्दों के रूप में प्रयोग हुए हैं तथा ' कोल ' एक प्रत्यय है जिसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता है। जैसे 'य'च़कोल'

अब (बि पृष्ठ ५ पर) इस वाख को देखें-

'आयेयि वॉनिस तू गॅय काह ॲन्दरस

लोकोक्ति में भाषा तथा भाव नहीं बदलते हैं। 'आयेयि वॉनिस तू गॅय कान्दरस' कश्मीरी भाषा में एक सर्वमान्य लोकोक्ति है। इस लोकोक्ति में 'कान्दरस' शब्द का विच्छेद करके 'काह+अंदरस' बनाकर उक्ति को निरर्थक कर दिया गया है।

श्री बदरीनाथ सोपोरी की पुस्तक 'ए पीप इनटु हाय ह्यूमन' से कुछ नए वाखों को सम्मिलित किया गया है जिनका वर्णन और किसी ललवाखों के संकलन में दृष्टिगोचर नहीं हुआ जैसे :-

वाख ८० (बी वा ७१/२) 'यस न् कॆंह कान तय छो'नुय यस तरुय' ।

वाख ४६ (बी वा ५१) 'स्वर्गस फीरूस ब'रगस ब'रगस त्वर्गस' ।

वाख ४२ (बी वा ११०) 'ललि म्य दो'पुख लूख हांड करनय' ।

वाख १८ (बी वा ५/२) 'ग्वरूय मोल तय ग्वरूय मा'जी'।

(ख) दूसरा कारण ललेश्वरी के उस आध्यात्मिक आयाम का रहस्योदघाटन करना जो त्रिक् शास्त्र में निहित है। साधारण भाषा में त्रिक् को सरलता से समाज में लाने का श्रेय ललेश्वरी को ही जाता है। उसके वाख इतने रसीले तथा मिठास से भरे हैं कि हृदय को छू लेते हैं, तथा सामान्य मनुष्य भी इसे समझ कर रस ले सकता है।

(ग) ललवाखों को षडयंत्रकारी दुर्भावना तथा विकृति से अछूता रखने, तथा ललेश्वरी के बारे में समाज में प्रचलित कुछ अवांछनीय धारणाओं के स्पष्टिकरण का प्रयास करना। उदहारण के तोर पर ललेश्वरी नंगी घूमने वाली योगिनी थीं, अपनी तोंद बढाने से उनका नाम लल पडा था, आदि जो कि एक मंदबुद्धि की उपज है।

(ड.) नवीन कवियों के उन प्रयासों को जनमानस के सामने लाना जिन में वह अपने को लल के समतुल्य मानकर, लल की शैली अपनाने का प्रयास कर, ललेश्वरी के वाक्यों का स्वरुप बदल कर, अथवा अपने वाक्यों में अपने नाम की जगह लल के नाम का उपयोग करके भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं।

असॉऱ्य संसॉऱ्य वोन्य दिथ वान गोम ... मन लय प्राण गोम अंतर्ध्यान।
मंज़ देह तों'दरस काह ॲन्द'ऱ्य ठान गोम **ललि** प्रस्थान गोम परमस्थान"।
(बि पृष्ठ ५)

उपरोक्त पहली पंक्ति को कश्मीरी भाषा के संदर्भ में देखते हैं। यह व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध वाक्य है। क्योंकि 'काह ॲन्दरस' का कोई अर्थ नहीं बन पाता है। यह पांचों पंक्तियां विश्वक्षित ललेश्वरी की नहीं अपितु बिमला जी की

रचना है। दूसरी चार पंक्तियों के चौथे पद में लेखिका ने अपने नाम के स्थान पर 'लल' के नाम का उपयोग किया है। बिमला जी द्वारा रचित 'ललद्यद मेरी दृष्टि में' पुस्तक में ७६ वाखों के कुछ शब्दों को मूलसे ही बदल दिया गया है, जिस से इन वाक्यों का मूल स्वरुप तथा भाव ही विकृत हो गया है। जैसे वाख १ 'आमि पन् स'दरस नावि छस लमन..' 'आमि पन्' अर्थात 'कच्चे धागे से' का 'ओम्पन्' –'नावि' अर्थात 'नाव' का 'नाभि' अर्थात 'नाभिस्थान' 'लमान' अर्थात 'खेंचना' का 'लह हुमान', सोदरस का सो द्रस् (बि वाख ७१), ' क्रूठ ' का 'किव इष्टो' (बि वाख ७३ 'शिव छुय किव इष्टो चे़न व्वपदीश'), 'मानस' का वाख-मानस (बि वाख १), ' क्वल ' का 'कोल' (बि वाख १)। ' डिंगि ' को 'डेंगि' (बि वाख ४) बनाकर ' डींज ' 'गोला' का अर्थ दिया जबकि 'डींज' संज्ञा है और इस का क्रिया रूप ' डेंगि ' शब्द कश्मीरी भाषा में है ही नहीं, आदि। प्रश्न यह है कि जब लेखिका का कहना है कि ललवाखों का प्रस्तुत रूप मौलिक नहीं है (बि-पृष्ठ १२ तथा १३) तो शब्द का स्रोत बताए बिना ही शब्दों को बदलकर वास्तविक वाख की एक प्रकार से लेखिका द्वारा घोषणा की गई है, जबकि ललवाख शुद्ध रूप में मौखिक ही आते रहे है। लिखित रूप में आने से कुछ नाममात्र विकृति आई हो सकती है। सामान्य भाषा में विकार आना स्वाभाविक है, किंतु ललवाख सूत्रों से कम नहीं जिन में विकार नहीं लाया जासकता था क्योंकि इस परिवर्तन से आगम या शिव शास्त्र निर्देश पर चोट होती है जो एक पाप माना जाता रहा है। उपरोक्त ललवाखों का तो भास्कराचार्य ने संस्कृत भाषा में लगभग ढाई सौ वर्ष पहले अनुवाद किया है जो भाव की दृष्टि से मूल वाखों के अर्थानुरूप हैं जिनमें आज तक इनके उच्चारण में या भाव में भी कोई विकार नहीं आया है। उनको अब बदल दिया

गया है। यहां पर स्थानाभाव के कारण श्रीमती बिमला की उपरोक्त पुस्तक से केवल पहले दो वाखों का शब्द परिवर्तन के दृष्टिकोण से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में ललवाख १३६ तथा १४० इस प्रकार हैं:-

वाख १३६:-

अभ्या'स्य सविकास लयि व्वथू गगनस सगुन म्यूल समि च्रटा।
शून्य गो'ल तू अनामय मो'तू युहय व्वपदीश छुय बटा।।

परिवतर्ति रूपः-

अभ्यॉसी स्व विकॉस लय व्वथू गगनस सगुन म्युल समस्त च्राठा ।
समन्यू गो'ल तय उनमन्य मो'तो योहय व्वपदीश छुय ह-बटा । (बि वा २)

वाख १४०:-

वाख मानस क्वल अक्वल ना अते छ्'वपि मुदरि अति ना प्रवीश।
रोज़ान शिव शूक्ति ना अते मो'तयय कोंह तू सुय व्वपदीश।।

परिवतर्ति रूपः-

वाख-मानस को'ल अको'ल ना अते छ्'वपि मुदरि अति ना प्रवीश।
रज़न द्यन शिव शूक्ति ना अते म्वति यय कुंह तू सुय व्वपदीश'। (बि वा १)

मुल्यांकन-कश्मीर शैवसिद्धांत अर्थात (त्रिकू योग) के अनुसार स्व को जानने के लिए तीन उपाय (कश्मीर शैविज़म, बी एन पंडित पृष्ठ ६७) कहे गए हैं।

१. शांभव (इच्छोपाय) २. शाक्त ३. आनव । पहला उपाय श्रेष्ठ कहा गया है। यह दोनों वाख इसी शांभव उपाय के परिचायक हैं।

इनका क्रम १. 'अभ्यास्य सविका'स्य --' है जिसमें अभ्यास प्रक्रिया में लीन तथा दृढ होने की बात एवं मुद्रा बताई जाती है। उसके पश्चात दूसरा वाख 'मानस क्वल अक्वल ना --' का पद आता है। जिसमें उस अवस्था के बारे में बताया जाता है जिस में प्रबल इच्छा वाले साधक को सदा रहना पडता है। ललेश्वरी ने भी इसी बात को अपने दो वाखों में समझाया है। अब बिमलाजी द्वारा लिखे इन्ही दो वाखों का मूल्यांकन करके देखते हैं.

लेखिका ने इन दो वाखों के ...

१. क्रम को उलटा दिया। जबकि श्री राजांक भास्कर (ग्रि वा १ तथा २ 'अभ्यासेन लयमनेतिदृश्येशुन्यतं आगते साक्ष्यरूपं शेष इति अनामयम।। वाड़मनसंचतनमुद्रे शिवशक्तिकुलाकले यत्रसर्वं इदमलीनम उपदेशं परमतुतत्त।') ने भी संस्कृत अनुवाद में ऐसा नहीं किया है।

२. वाख, मानस को एक ही शब्द बनाया जब कि पहली पंक्ति के चारों संज्ञाएं अलग हैं।

३. क्वल को कोल (समय) तथा अक्वल को (कु-समय) लिखा गया है । 'कोल' शब्द कश्मीरी भाषा में एक प्रत्यय है जिसका कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं है। जैसे दुकोल अर्थात दोसमय का। य'च़+कोल = य'च़कोल, अर्थात पुराना। जबकि 'क्वल' का यहां संदर्भ 'कुल' या (तत्वों के) खांदान से है। जैसे इंद्रियों, पांच महाभूत, कुंचिका आदि और 'अक्वल' तीन गुणों से है, जो तत्वों की परिधि में नहीं आते हैं।

ललवाक्याणि के स्टाईन बी के वाख १४-२ की तीसरी पंक्ति ' रज़न दिवस़्।।

शिव शक्त ना यति।। में 'दिवसो' को 'द्यन' शब्द में परिवर्तित करने का क्या प्रयोजन है? ज्ञात नहीं होता है।

४. दूसरे वाख में (बि वा २) लेखिका ने ' च्ऱटा ' को ' च्राठा ' बताया है। 'च्ऱट' या ' च्ऱठ ' शब्द का अर्थ है 'एक को दूसरे में ऐसा मिलाना कि दोनों का कोई अलग अस्तित्व ही न रहे', अर्थात जोडना। दरवाजे या खिडकी की लकडी को ऐसा सटीक जोडना कि जोड का पता भी न चले । ' च्राठा ' शब्द का कश्मीरी भाषा में अस्तित्व नहीं है, अपितु ' च्राठ ', अथवा ' चाठ ' अर्थात 'शिष्य' का बिगडा रूप है। इसलिए ' च्राठा ' काल्पनिक शब्द है।

५. ' समि ' का 'समस्त' कहा गया है। परिवर्तित वाख (बि वा २) की दूसरी पंक्ति में ' गगनस सगुन म्युल समस्त च्राठा' का अर्थ 'गगन से सगुन मिले' 'सम होगए' दिया है, । यहां वाख में 'समस्त' दिया है जिसका कोषार्थ है 'सारा', परंतु वाख का अर्थ 'सम' दिया है जो एक विरोधाभास है।

६. 'शून्य' का 'समन्य़्' (बि वा २) बनाया गया है, जिसे हठयोग का एकादश पडाव बताया है। तथा

७. 'बटा' शब्द को 'बॅ-हठा' (बि वा २) में बदल दिया गया है। जिसका अर्थ 'यही उपदेश है हठ योग का' दिया है, जबकि अभिनव गुप्त के अनुसार तांत्रिक योग आगम पद्धति पर आधारित है, जो किसी भी दबाव या ज़ोर ज़बरदसती से स्वतंत्र है। शरीर और मन को कष्ट पहुंचाना, यहां तक कि हठ प्राणायाम (तंत्रालोक ४-६१ श्री बलजी नाथ पंडित कृत 'स्पेसिफिक प्रनसिपल्जत्र आफ कश्मीर शैविज़म पृष्ठ १११ पहली पंक्ति-तथा १४५ छट्टी पंक्ति,') तथा शरीर को कष्ट पहुंचाने वाला कोई भी तरीका वर्जित है। दबाव से उल्टी प्रक्रिया होती

है। इस कारण 'हठ' शब्द यहां निरर्थक है। बटा शब्द संस्कृत भट्ट से बना है जिस का अर्थ है 'योद्धा', 'भट्ट' ब्रह्मणों की एक उपाधि है, जैसे भट्टाचार्य अर्थात दर्शनशास्त्र का पंडित तथा ' भट्टतारकः ' आदि। अभ्यासी साधक के लिए ही 'बटा' शब्द का संबोधन है। (अर्थ के लिए देखें प्रस्तुत पुस्तक में वाख संख्या १३६, १४०)। इस कारण 'ब हटा' शब्द का प्रयोग तथा बिमला जी के यह दोनों वाख निरर्थक हैं।

सारांश यह कि मौखिक रूप से आए हुए शुद्ध तथा सूत्रात्मक विशेषता युक्त ललवाखों के शब्दों का अर्थ न समझने के कारण अपनी विचारधारा के अनुरूप बदलकर भावशून्य बनाना एक सार्वभौम आस्था अर्थात ललेश्वरी के साथ सरासर अन्याय तथा साहित्य के साथ एक क्रूर उपहास है। पुस्तक 'लल म्यान्यन नज़रन मंज़' से लिए गए उपर्युक्त दो आदर्श वाख इसी तथ्य का साक्ष्य हैं।

(च) उपरोक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त ललेश्वरी के वाखों तथा इस पुस्तक में दिये गए शब्दार्थ का गहन अध्ययन करके साधक मूल कश्मीरी भाषा का ज्ञान भी अर्जित कर सकता है।

आभार

अपने गुरुदेव, स्वामी गोविंद कौल, की असीम कृपा का आभार प्रकट करने में मेरे पास शब्द कहां, जिन्होंने मेरे अंतःकरण में आकर कई गुथियों को सुलझाया और मैं कुछ टूटा फूटा लिखने का दुस्साहस करने लगा। इस पुस्तक को लिखने का दुस्साहस करते समय अनजाने में रही त्रुटियों को तटस्थ पाठक सामने लाकर उपकार करेंगे। ऐसी मेरी आशा है। मैं उन सब महापुरुषों का आभारी हूँ जिन्होंने ललेश्वरी के बारे में संसार को नई जानकारी देकर कश्मीर की उच्चकोटि की भक्त तथा कवयित्री को जनमानस के सामने लाया है। मेरे सुपुत्रों श्री बालकृष्ण, डाक्टर अवतार कृष्ण तथा मेरे परिवार के सहयोग के बिना यह कार्य पूर्णता को पहुंचाना मेरे लिए असंभव था। पुस्तक का गणकीकरण (कम्प्यूट्राइज़ेशन), सम्पादन तथा मुखपृष्ठ तैयार करने में डा० अवतार कृष्ण रैना की भूमिका सराहनीय है। डाक्टर आर एल भट्ट जी जम्मू के साथ विचारों के आदान प्रदान को मैं कैसे भूल सकता हूं।

श्री मोती लाल पंडित पालम दिल्ली, श्री घंशाम वांगन्यू नागपुर, श्री टी के जाह नागपुर, संगीता बज़ाज़ जम्मू का सहयोग सराहनीय है। श्री रंजीत मंड़ल, श्री विजय हडूँ और अंत में श्री उत्पल कौल जी का आभार प्रकट करता हूं जिन्होंनें इस पुस्तक को प्रकाशित करने को स्वीकृति दी।

लेखक

परिचय

भगवान शिव तथा माता पार्वती की क्रीडास्थली, भारत के सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक केंद्र, अद्वितीय सुंदर तपोभूमि कश्मीर या 'कशीर' से सारा संसार परिचित है। यहां की कश्मीरी हिंदू मातृशक्ति ने अनेक आयामों में अद्वतीय दायत्व निभाया है। इन्हों ने कूटनीति, राजनीति, काव्य, सामाज तथा धर्म के क्षेत्र में नेतृत्व संभाला है, जिन में परम ज्ञानी पंडित मदन मिश्र की पत्नि उभयभारती (८ वीं शताब्दी), यशोवती (महाभारत समय), सुगंधादेवी (लगभग ९०२ ई०), रानी दीदा (९५०-१००१) तथा कोटा रानी (लगभग १३०० ई०) विशेष है। यहां के संतों की अविरल धारा में योगिनी एवं उच्च कवत्रियी माता ललेश्वरी (ललद्यद, लल) का नाम संसार भर में प्रसिद्धि पा चुका है। वह अध्यात्मिक क्षेत्र में परिपूर्ण तथा अपने वैदिक एवं त्रिक शास्त्र संबंधी योगिक अनुभवों को एक प्रभावमयी रस पूर्ण तथा सशक्त कविता द्वारा लोक भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करने में समर्थ रही हैं, जिस से कश्मीरी भाषा को भी दृढता प्रदान हुई। यही विशेषताएं उन को कश्मीर में सर्वोच्च स्थान प्रदान करती हैं। उन की आनंदमयी अमृतवाणी आज भी वैसी ही नूतन, ग्राह्य तथा लोक प्रिय है, जैसी पहले थी।

कई महापुरुषों ने ललेश्वरी तथा इनके वाक्यों (वाखों) को अपने अपने अंदाज़ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन में वैज्ञानिक अनुसंधान करने का सर्वप्रथम श्रेय सर ग्रियर्सन[1] को जाता है। उन्होंने १९२० ई० में अपनी पुस्तक 'ललवाक्यानि' प्रकाशित करवाई, जिसमें महामहोपाध्याय पंडित मकुंदराम शास्त्री का बडा योगदान रहा है, जिन्होंने गुश निवासी एक वयोवृद्ध ब्रह्मण पंडित धर्मदास दरवेश से मौखिक तौर ललवाखों को सुनकर लिखा था। धर्मदास एक कथावाचक तथा 'कुलपरंपराचारक्रमः'

विशेषज्ञ थे। यह कृति शेष लेखकों के लिए प्रकाश स्तंभ का काम करती रही है। पंडित बद्रीनाथ पारिमू द्वारा प्रायः सभी वाखों का अनुवाद न्यूनाधिक इसी से लिया गया है। आधुनिक युग में श्री पारिमू (पा) तथा पं० जियालाल कौल (क) आदि ने विस्तृत तथा प्रभावात्मक अध्ययन द्वारा ललेश्वरी तथा उसके वाखों को समग्र रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत किया।

प्रस्तुत पुस्तक में चार शीर्षकों में ललेश्वरी के बारे में संक्षिप्त विवर्ण देने का प्रयास किया गया है :

(क) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।

(ख) जीवन

(ग) आध्यात्मिक यात्रा

(न) ललवाखों को भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के संदर्भ में वर्गीकरण।

(क) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सामान्य तोर पर माना गया है कि ललेश्वरी का जन्म चौदहवीं शताब्दि में हुआ था। उन के जन्म के पश्चात कश्मीर में १३३९ ई० में इस्लामी शासन आरंभ हुआ तथा कई कारणों से त्रिक् शवैमत का अनुसंधानात्मक ताना बाना टूट गया। यह मुकुट ललेश्वरी के सर ही जाता है जिन्होंने शैवशास्त्र के गहन अनुभवों को अपने अद्वितीय वाखों द्वारा पुनर्जीवित कर दिया। यह लक्ष्य उन्होंने जनसाधारण के पास जाकर प्रचलित जन भाषा में शैवदर्शन के संदेश को पहुंचा कर पूरा कर दिया और ललेश्वरी के अनुभवों को लोगों ने प्रेम से गले लगाया।

माईकल विज़ले के अनुसार पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य तक कश्मीर की सरकारी भाषा संस्कृत ही रही [२] थी। यह एक ऐसी कसोटी है जिस से ललेश्वरी के पदों की

मौलिकता का पता चलता है और यह भी सिद्ध होता है कि ललेश्वरी पर इस्लाम तथा सोफी ('टु दि अदर शोर' जय, पृष्ठ १७ लाईन २५) धर्म तथा फार्सी भाषा[३] का अंशमात्र भी प्रभाव नहीं पडा था। अंतिम चरणों में हो सकता है कि भाषा में प्रसंगवश कहीं एक आधा शब्द आया हो, किंतु इसको प्रभाव की उपाधि नहीं दी जा सकती है। ललेश्वरी शास्त्रज्ञ परिवार में जन्मी थी जहां उन्हें कुल गुरु शितकंठ (स्यदमोल) जैसे गुरु मिले, जिन से ललेश्वरी को गुरुमंत्र मिला।

उस समय ललेश्वरी की भाषा परिपक्व हो चुकी थी। इस कारण उन्हें अपनी वाखभाषा को दूसरी भाषा का सहारा लेने की कोई आवश्यकता नहीं थी। नुंद ऋषि[४] आदि कई संत इन से पूरी तरह प्रभावित थे और उनकी रचना को शास्त्र ही कहते थे तथा कई अन्य सोफी संतों [४क] ने भी इनका नाम बडे आदर से लिया है।

(ख) ललेश्वरी का जीवन

१. ललेश्वरी का बचपन ललेश्वरी जिस का लघु रूप लल है, स्यमपोर[५] में विक्रम संव १३८२, अथवा सितंबर १३२६ ई० (पा) की पूर्णिमा को जन्मी थीं (विजेश्वर पंचांग १९९९ में ललेश्वरी का जन्म गंगाष्टमी को दिखाया गया है)। इनके पिता का नाम पंडित चंद्रभट था जो एक पढे लिखे ब्राह्मण थे। स्यमपुर, पांपुर के निकट प्लाई बोंड कारखाने के पास राजमार्ग की उतराई पर स्थित है। माता पिता की इकलौती कन्या होने के नाते इन्हें पुराण तथा शास्त्र का प्राथमिक ज्ञान अपने घर में ही प्राप्त हुआ।

२. ललेश्वरी का वैवाहिक जीवन .. तत्कालीन प्रथा के अनुसार ललेश्वरी का विवाह लगभग ११ साल की छोटी आयु में पांपुर के सोमभट[६] के साथ हुआ था। यह एक बेमेल विवाह था जैसा कि लोक कथा में आया है।

कश्मीरी पंडित आचार संहिता के अनुसार ललेश्वरी का सुसराल का नाम पदमावती [७] रखा गया। ललेश्वरी छोटी थीं और प्रथा के अनुसार सास का बहू पर पूरा वर्चस्व होता था। इस लिए ललेश्वरी को पुरी तरह अनुशासित करने के लिए कुछ ज़ोर ज़बरदस्ती भी हुई होगी। किंतु ललेश्वरी ने उफ तक नहीं की थी। उनके पडोसी भी ललेश्वरी की सास से डरते और इस डर से वे ललेश्वरी का समर्थन नहीं करते कि कहीं उनकी सास कुपित न हो। तभी लल ने कहा होगा ' दो'द क्यां ज़ानि यस नो बने, कांह ति वुछुम नो पननि कने ' अर्थात किसी को अपने पक्ष में नहीं पाया।

(ग) ललेश्वरी की आध्यात्मिक यात्रा

ललेश्वरी को यदि वैदिक तथा त्रिक का संगम कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ललेश्वरी ने अपने पिछले जन्मों [८] के बारे में भी कई वाखों में स्पष्ट संकेत दिया है। वाख १२२ ' दमी डींठ्म पांडवन हूंज़ मा'जी, दमी डींठ्म क्रा'जी मास ' अर्थात 'एक समय पर मैंने पांडवों की मां को कुम्हारिन मासी के रूप में देखा'। इस कारण उस के अंतःकरण में भगवत भक्ति पहले से विद्यमान थी। पिता के घर में पढने लिखने तथा सौम्य वातावरण मिलने से उनकी शिक्षा तथा ज्ञान की नीव दृढ़ हो चुकी थी। बाल्यकाल से ही उन्हें शितकंठ जैसे गुरु से आध्यात्मिक प्रेरणा मिली तभी सास की तीव्रता को सरलता से सहन कर लिया । यदि ऐसा न होता तो वह रो लेती और सास द्वारा परोसे गए अन्न के नीचे रखा पत्थर (निलवठ) फिर अपनी जगह धोकर नहीं रखतीं और घाट पर प्रभावशाली ढंग से सहेलियों के उल्हना का उत्तर न देतीं। 'हों'ड मारन या कठ ललि निल्वठ च़लि न् ज़ांह [९]' अर्थात भोज कितना ही अच्छा हो किंतु लल के लिए पत्थर ही होगा'। जनता में उस पर हो रहे अत्याचार तथा उसकी सहनशीलता की बात फैल जाने से उसके आध्यात्मिक चलन को बल मिल गया। इस

प्रकार ललेश्वरी की बढती पिपासा तीव्रता से अग्रसर होती गई। इस लिए कहा (वा १) 'आमि पन् सो'दरस नावि छस लमन, कति बोज़ि दय म्योन म्यति दियि तार '। अर्थ 'कच्चे धागे से समुद्र में नाव को खेंच रही हूं, काश प्रभु मेरी सुनते और मुझे भवसागर पार उतारते'।

ललेश्वरी ने मन समेत समस्त इंद्रियों को केंद्रीभूत करने की अनिवार्यता भांप ली थी। (वा ५) 'क्याह कर् यिमन पां'चन दहन त् काहन' अर्थात 'इन पांच विषयों, (काम, क्रोध, लोभ, मोह, तथा अहंकार) और दस इन्द्रियों (५ ज्ञानेद्रिंयों तथा ५ कर्म इंद्रियों) का क्या करूं' 'ग्वरन वो'ननम कुनुय वचुन' (वा २०), अर्थ, गुरु ने मुझ से एक ही वचन कहा अर्थात उपदेश दिया', उन्हें प्रकाश का दर्शन हुआ और वह आनंद से झूमने लगी, तथा आडंबरों का जामा मन से उतार दिया 'और गुरु रूप भगवान में प्रीति लगाई। वासनाओं का दमन किया 'कामस सूतिय प्रय नो ब'र्म' अर्थात 'काम के साथ प्रीति नहीं लगाई' । फिर ओम (माण्डोक्योपनिषद १ - द्वितीय अवली श्लोक १५) का जाप तथा कुम्भक प्राणायाम द्वारा मन को स्थिर कर लिया। इस प्रकार उसका भरा गढा छलका और कविता के रूप में फूट पडा। जल्दी योगिक पडावों को पार करके वह सत्यता को प्राप्त हुई। लोकभाषा में उसका स्वछंद नाद शीघ्र ही हर घर में सुना जाने लगा। वह वैदिक तथा शैवमत अर्थात त्रिक योग का संगम बनकर अपने अनुभवों को व्यक्त करने लगी, जब कि सामान्यतयः योगी जन अपनी अभ्यास-प्रक्रिया या इस से मिले अनुभव को गुप्त ही रखते है। ललेश्वरी ने बलि चढाने तथा मांस खाने, बिना अर्थ जाने पोथियों को पढने वालों और कुछ घमंडी ब्रह्मणों के आडंबर को नग्न कर दिया। इस पर उसे संभवतः बुरे बोल भी सुनने पडे होंगे, 'गर् गर् फीर्स प्ययम कने' अर्थात 'प्रत्येक घर में गई किंतु वहां भी मुझे पत्थर मारे गए।' (वा २१२), मैं हर घर में गई

वहां सहानुभूति के स्थान पर पत्थर ही खाने पडे। किंतु वह अपने लक्ष्य-सिध्दि की मानी थी और वह अपने गुरु से भी आगे[10] निकल गई।

ललेश्वरी ने दो कर्म 'सत' और 'असत' तथा तीन कारणों 'सत्वगुण', 'तमोगुण' तथा 'रजोगुण' एवं शरीर में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के निर्धारित स्थानों को पार करके सदाशिव के साक्षात्कार का आस्वादन किया 'कर्म ज़् कारण त्रे' कों' बिथ (वा १४३) 'दो कर्म तथा त्रिकारण से परे'। वह वास्तविक घुड सवार थीं। उन्हों ने अपने ही एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा

'शिव गुर तय कीशव पलनस ब्रह्मा पायरचन ब्वलस्यस,

यूगी यूग् कलि परज़ान्यस, कुस दीव अश्ववार प्यठ चढ्यस' (वा १८५)। अर्थ, शिव घोडा है और केशव उसका पलना (काठी), तथा ब्रह्मा रिकाब बनकर प्रतीक्षा करते हुए झूम रहे हैं। योगी जिसको योग रुचि द्वारा पहचानता है। कौन है वह देव ?, जो घुडसवार के रूप में इस घोडे के ऊपर चढने वाला या बैठने वाला हो सकता है? जिसका उत्तर वह स्वयं देती हैं।

'अनाहत ख-स्वरूफ शुन्यालय यस नाव न वर्ण न गुथुर त् रू फ। (वा १८६)।

अहम विमर्ष नाद ब्यंद्य यस वो'न; सुय दीव अशववार प्यठ चड्यस'। अर्थः जो अनाहत अर्थात ओम शब्द रूप है, आकाशवत शुन्य का स्रोत है, उसका कोई नाम वर्ण गोत्र तथा रूप नहीं है, अहं विमर्ष, नाद बिंदु रूप की जिस को पहचान तथा समझ है और सदा उसी में स्थित है, वही पूर्ण साधक रूपी देव घुडसवार है जो इस घोडे पर चढ सकता है। समस्त त्रिक शास्त्र, वेद, उपनिषदों को उपरोक्त वाख में ललेश्वरी ने सरल भाषा में व्यक्त किया लगता है।

ललेश्वरी ने परमशिव के स्वतंत्र तथा सर्वशक्तिमान एवं सार्वभौमिक स्वभाव को पहचान कर अपने अनुभव को इस प्रकार प्रश्नोत्तर में व्यक्त किया है।

प्रश्न : ' कुस डिंगि तू कुस ज़ागि, कुस सर व'त्रि तेलि..? ' अर्थ, कौन खिसके गा या भागेगा और कौन एकाग्रता से ताक में रहेगा? २- कौन सर (झील) पानी की पांचों नदियों में तेज़ी से संचार करने योग्य है? तथा उत्तर में कहती हैं, 'मन डिंगि तू अको'ल ज़ागि डा'ड्यसर पंचू यंदि व'त्रि तेलि..' (वा १०२, १०३) । अर्थ, मन चंचल रहेगा किंतु सजग मनुष्य (शिव की) ताक में रहेगा। भरा हुआ सर तीव्र गति से पांचों नालियों द्वारा सींचे गा जो शिव सूत्र (मालिणिविजयवर्त्तिका १-२४५ पृष्ठ १२ पंक्ति ११-स्पेसिफिक प्रिन्सप्लज़ आफ कश्मीर शिविज़म, बलजी नाथ पंडित) की ही अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार

' गगन च़्य बूतल च़्य च़्य द्यन पवन तू राथ' (वा ६७)। अर्थात आकाश पृथ्वी वायु दिन रात अर्घ्य पानी चंदन फूल आदि सब आपके ही रूप हैं, तो मैं आपकी पूजा में अपना क्या अर्पण करूं। तथा, ' च़्य दीवू गरतस तू धरती स्रज़ख '(वा ८६)। अर्थात हे देव शिव! आप आकाश धरती के सृजक (स्रष्टा) हैं। सारांश यह कि ललेश्वरी अध्यात्मिक पराकाष्ठा पर पहुंच कर दूसरे लोगों का भी मार्गदर्शन करने लगी थीं।

शाहमदान (१३१४-१३८५) से भेंट - कश्मीर में सैयिद अली हमदानी (शाहमदान) तथा ललेश्वरी के बीच भेंट से जुडी एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है ' आयि वा'निस गय कांदरस'[११] अर्थात, (ललेश्वरी) पनसारी के पास आई किंतु (उसके इनकार करने पर) नानवाई के पास गई। यह घटना लगभग १३८० ई० के आस पास की है जब ललेश्वरी जनसामान्य के हृदयों में आदरनीय हो कर घर कर गई थीं और ललमाता अथवा ललद्यद की उपाधि पा चुकी थी। सैयिद अली हमदानी के साथ लुका छिपी करते हुए रोटी बनाने वाले (कांदुर) के जलते तनूर (तन्दूर) में कूदकर वहां से दिव्य सुवर्णिम आभूषण पहनकर निकलीं। इस प्रदर्शन से सैय्यद को उनकी अवस्था से अवगत कराना था कि ऋषि भूमि कश्मीर में आग के घोडे पर चढ कर परीक्षा[१२] देने के डर से पलायन

(फिदा एम हुसैन 'शाह हमदान ऑफ कश्मीर',पृष्ठ ५५, पंक्ति २८.२६) नहीं करते। शायद यहां की शक्ति को देखकर सैयिद अली हमदानी ने सुलतान कुतुब-उद-दीन को २० नुकाती इसलामी शरियत कानून तुरंत लागू करने को बाध्य किया था किंतु हिंदू बहुसंख्यक देश होने के नाते सुल्तान के नकार देने पर सैय्यद नाराज़ होकर कश्मीर से चले गए (फिदा एम हसनैन 'शाह हमदान ऑफ कश्मीर',पृष्ठ १०६, पंक्ति १६ से ३१), और जाते हुए कुनर के पास उनका देहांत हो गया था। शाह हमदान ने कितने ही काली मंदिरों को खानकाहों में बदल दिया, जिनमें श्रीनगर में शाहमदान तथा त्राल में अमीर कबीर उनके ही नाम से ही प्रसिद्ध हैं। त्राल में अमीर कबीर नाम से शाहमदान द्वारा बनवाया गया आस्ताना या खानकाह (फिदा एम हसनैन पृष्ठ ६४, पंक्ति १२) है जिस की आय का कुछ भाग १६८६ ई० तक काली मंदिर के पंडित पुजारियों को गडियाली करने के लिए मिलता[१३] रहा है।

सैयिद अली हमदानी के साथ एक और मुलाकात के बारे में नितांत असत्य तथा कृत्रिम कहानी गढी गई कि ललेश्वरी नंगी होकर घूमती थी। शाहमदान को देखकर पेट लंबा खेंच कर गुप्त अंग को ढक लिया कि (ललद्यद के तथाकथित शब्दों में) सामने 'मर्दि मूमिन' आ रहे थे और तभी से लंबा पेट होने के कारण उनका नाम 'लल' पडा ('तवय ह्योतुम नंगय नचुन' वाख २०, क - संस्करण ३, १६८४ वाख २१, नचुन फेरुन श्री जिया लाल कौल तथा अन्य) । किंतु इस बात में कोई संदेह नहीं कि ललीश्वरी उसके मायके का नाम था तथा वह नंगी होकर नहीं घूमती थी। उन्हें नंगा नचाने वालों ने इस्लामी तबलीग में ललेश्वरी का वर्चस्व कम करने और शाहमदान का बढाने के लिए अपनी स्थूल बुद्धि के आधार पर 'नंगय नचुन' का अर्थ 'नंगी घूमना' देकर साहित्य के साथ एक क्रूर उपहास किया है। ललेश्वरी के 'यवू तूर चलिय तिम अंबर ह्याता' अर्थात 'जिनसे शीत दूर हो वही वस्त्र पहन' वाख की अनदेखी करके पढे लिखे लोगों ने इस

मनगढंत कथा को आगे चलाया और नग्न तसवीरों को अपनी पुस्तकों आदि या लेखों के मुख पृष्ठ पर छाप दिया। कश्मीरी भाषा मुहावरों तथा लोकोक्तियों से भरा पडा है। लगभग हर वाक्य में इनका प्रयोग होता है। इसी दृष्टि से 'नंगय नचुन' पर तथा लल के नाम पर ध्यान देना आवश्यक है। 'ग्वरन वो'ननम कुनुय वचुन-तवय ह्यो'तुम नंगय नचुन। अर्थ-गुरु ने मुझे एक शब्द कहा.. इसलिए मैं नंगी होकर झूमने लगी'। नंगयः शाब्दिक अर्थ - बिना वस्त्र का जैसे नंगा बदन, नंगा पेड, नंगा पहाड आदि।

लाक्षणिक अर्थ - मन से वासनाओं का वस्त्र उतार कर इन से छुटकारा पाना तथा नचुन - आनंद में नाचना, घूमना, झूमना। इसलिए मुहावरा 'नंगय नचुन' - शुद्ध भावना तथा वासना शून्य अंततः बेपरवाह होकर आनंद से झूमना, न कि 'नंगा होकर घूमना' सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'नंग यिन्य' - 'शर्म-लज्जा करना'। 'नंग् करुन'-'पोल खोलना'। 'नंग् गछुन' - 'खजल होना' तथा 'न्यथ् नो'न गछुन' - 'द्वैत से दूर'। 'नंग् नाच करुन' - 'बेशरमी का हाव भाव' आदि का प्रयोग करने से शारीरिक नग्नता[१४] दर्शित नहीं होती है। जब लल अपने आप में स्वयं ही खो गई और मस्त हो गई तो घूमने की बात कहां से आ गई। यह दोनों विपरीत अवस्थाएं है जिन का होना असंभव है। मैंने कई दरवेशों और संतों को इस वजदानी दशा में देखा है और उनको उस समय संभाला भी है। ऐसी रस दशा में जो मस्ती होती है उस के बारे में किसी पहुंचे हुए संत से पूछना ठीक होगा न कि शब्दों का अर्थ जानने वाले किसी अभ्यास शून्य साहित्यकार से।

दूसरी बात कि कश्मीर में वर्ष के आठ मास, अक्तूबर से मई तक, सर्दी का प्रकोप रहता है। पहले कश्मीर में भारी मात्रा में हिमपात होता था (जो अब शून्य के बराबर है) और भीषण ठंड के प्रकोप से हर वस्तु जम जाती है। ऐसी रक्त जमाने वाली ठंड में क्या एक आदमी नंगा घूम सकता है? ऐसा निश्चित रूप से असंभव है।

श्रावण पूर्णिमा से लेकर अप्रेल के आरंभ तक, दिन रात न्यूनाधिक ऐसी ही स्थिति रहती है। मुझे याद है कि मार्च के अंत में बर्फ को तोड तोड कर रास्ता बनाया जाता था। कांगडी तथा गर्म कपडों के बिना जम जाने में देर नहीं लगती। अप्रेल में भी वसंत की सर्द वायु चुभने वाली होती हैं। इन परिस्थितियों में नंगे चलना नितांत असंभव है।

तीसरा तर्क यह कि कश्मीर में नंगे घूमना व्यावहारिक दृष्टि से भी सत्य सिद्ध नहीं होता क्योंकि कश्मीर एक ऐसा प्रदेश है जहां किसी भी वर्ग विशेष, जातपात, धर्म लिंग से परे महिलाओं का आच्छादन (परदा पोशी करना) जनता अपना दायित्व समझती थी। सामान्यतयः लोगों की यही धारणा रही है कि कोई भी महिला किसी कारण वश नंगी हो जाए तो तुरंत उसका आछादन किया जाता है। आदरनीय ललेश्वरी के बारे में तो बात ही क्या? ललेश्वरी महिला होकर नंगी घूमतीं तो लोग ऐसा करने देते। नंगी महिला को देखना पाप समझा जाता रहा है तो तथाकथित नंगी ललेश्वरी के पीछे पीछे लोग कैसे चल सकते थे?

चौथी बात यह कि सैयिद अली हमदानी के साथ ललेश्वरी की भेंट को अधिकतर इतिहासकारों ने मानक प्रमाणों के अभाव में भ्रामक माना है। इस कारण पेट को लंबा खेंचने की कहानी भी मनगढंत ही है।

सारांश यह कि त्रिक शास्त्रज्ञ, पठित, सुगठित कवयित्री, जागरूक अभ्यासी, तथा समाज की प्रिय ललेश्वरी कैसे नग्न होकर चल सकती थीं।

उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि :-

१ - लल तथा पदमावती ललेश्वरी के ही नाम थे, इनके नाम पर 'ललत्राग' (क-३२० पंक्ति २) तथा गुरु के नाम पर 'सिद्धयारबल (क यू २६/८) अभी भी पांपुर में विद्यमान हैं।

२ - ललेश्वरी निर्वस्त्र नहीं घूमती थीं। उनहोंने लोगों को स्वधर्म पर अडिग रहने का आवाहृन करते कहा था। (वाख ८६) 'हा च़्यता कव् छुय लो' गमुत परमस, कव गोय अपज़िस पज़्युक ब्रोंथ, व्यशि बो'ज़ वश को'रनख पर धर्मस, यिन् गछ़न् ज़्यन् मरन् क्रोंत' (क १४, शि ११३)। अर्थात, अपना धर्म त्याग करने से आवागमन जारी रहता है।

३ - ललेश्वरी समझदार, जागरूक, सहनशील तथा साक्षर महिला थीं। वह अपने इर्दगिर्द के वातावारण से अनभिज्ञ नहीं थी तथा अंत तक अपने पूरी चेतना में थी। तभी तो मृत्यु का आलिंगन करने को उत्सुक नुंदऋषि के तीन दिन तक दूध न पीने पर इस नन्हे नवजात से कहा (क-पृष्ठ ३२८ 'यिन् येलि न् मंदछोख चन्ह क्याज़ि छुख मंदछन') अर्थात जब आने में तुझे लज्जा न आई तो दूध[१५] पीने में लज्जा क्यों? फिर नवजात नुंदऋषि तुरंत दूध पीने लगा।

४ - ललेश्वरी एक ग्रामीन महिला थीं तथा तत्कालिक ब्रह्मणिक आचार संहिता से ऊपर उठ चुकी थी। हो सकता है कि इसी कारण उसकी इतनी ऊंची पदवी होते हुए भी इतिहासकारों द्वारा उनकी अनदेखी की गई हो। प्रथा के अनुरूप ललेश्वरी जैसे ऊंची पदवी वाले संत घर में नहीं बैठते अपितु अपना ज्ञान पराग बिखेरने के लिए या लोगों का निमंत्रण आने पर अपनी इच्छा अनुसार घूमते रहते हैं।

५- देहावसान - अवाक पदवी पर पहुंच कर वह अंत समय तक बिजबिहारा में रहीं। कहा जाता है कि वह बिजबिहारा में एक कुटिया में रहती थीं। एक खिडकी से लोगों को दर्शन देती थीं और वह 'दर्शनदा'र' अर्थात 'दर्शन खिडकी' कहलाती थी। जहां बाद में जामे मसजिद का निर्माण किया गया। किंतु कुटिया को छेडा नहीं गया था। उसी स्थान पर देहत्याग करके परमधाम को चली गई।

(क पृष्ठ ३५- पंक्ति ७)। कुछ लोग उसके शरीर त्याग समय ७८१ हिजरी (१३८४ ई) बताते हैं, जो उसी स्थान के पास बनी समाधी पर हाल ही में कल्चरल एकाडमी द्वारा रखे पत्थर पर अंकित है। (कयू पृष्ठ २७ पंक्ति १५)। कई लोगों का मानना है कि शरीर त्याग के पश्चात श्रद्धालु पंडितों ने ललीश्वरी की काया को अग्नि दाह देना चाहा और श्रद्धालु मुसलमानों ने अपनी मान्यता के अनुसार दफनाना चाहा। जब शव के ऊपर से कपडे को हटाया गया तो वहां केवल कुछ फूल ही मिले जिन को बांट कर अपनी अपनी आस्था के अनुसार उनकी अंत्यष्टि की गई। (कहा जाता है कि बिजबिहाडा में एक घाट 'ललयारबल' का नाम ललेश्वरी के नाम से अभी भी मौजूद है।
कबीर भगत तथा अलखेश्वरी/रूपभवानी के बारे में ऐसी ही घटना घटित हुई थी। ललेश्वरी का यह पद इस के साक्ष्य में समीचीन है कि उन्होंने सदेह मुक्ति पाई। सदेह जीवन मुक्ति प्रा'वूम' (वा ६५)। अर्थात 'मैं सदेह जीवनमुक्त होगई'।

६- ललेश्वरी कश्मीर शैवमत, वैदिक तथा योगिक धाराओं को आत्मसात कर चुकी थीं।

७ - ललेश्वरी के वाखों की अपनी एक विशेष शैली है। यह संस्कृत भाषा युक्त तथा सामान्य तोर पर चार पदों वाले वाख हैं। तथा वाख के पहले पद की अंतिम ध्वनि तीसरे पद की अंतिम ध्वनि से मिलती है और दूसरे तथा चौथे पद के अंतिम शब्द की ध्वनि (कुछ अपवादों को छोडकर) प्रायः एक जैसी है। इन वाखों की उच्च स्तरीय भाषा तथा भाव ही ललेश्वरी के वाखों की कसौटी है।

८- संभव है कि ललेश्वरी ने स्वयं वाख लिखे हों क्योंकि बाल्यकाल से ही उनकी बोलचाल अलंकृत थी जैसे 'होंड मॉर्यतन या कठ ललि निलवठचलिन ज़ाह'।

उनके अनेक वाख भिखर कर नष्ट भी हुए होंगे।

६, ब्रह्मचारिणी(न प्यायस) ललेश्वरी के वाखों में उनके जीवन की झलक मिलती है।

ललेश्वरी के समय कश्मीरी भाषा लोगों की भाषा बन चुकी थी। इस संदर्भ में 'ललि निलवठ..', नुंदऋषि या शेख नूरदीन (शाहमदान द्वारा दिया गया नाम- कयू पृष्ठ ३२) का श्रुख अर्थात श्लोक देखें-

'तस पद्मान पोरचि लले ये'म्य गलि गलि अमरच्यथ पिवो (चवो) ,

स' सा'न्य ति अवतार ल्वले तिथ्य म्यह वर दितो दिवो'। अर्थ 'वह पदमानपुर (आधुनिक पांपुर) की लल जिसने भरपूर अध्यात्म अमृतपान किया है और हमारे हृदय में अवतार के रूप में रहे, प्रभुदेव! वैसा ही वरदान हमें दीजिए।

ललेश्वरी ने व्यवहारिक ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग किया है। जैसे 'यनुद, व'तूर तथा डाड्यसर' आदि।

सारांश यह कि ललेश्वरी हमारी आस्था है इनके अनुभव को हम भी अपनी अनुभवात्मक कसौटी पर तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर परखें, समझें तथा इसे अपने जीवन में उतार कर अपने जीवन और परिलोक को सुधारें।

(न) नाट्कीय आधार पर ललद्यात्रों का वर्गीकरणः

कश्मीर शैव सिद्धांत अर्थात त्रिक् के अनुसार कुल तत्त्व ३६ हैं। ऐसा समझ में आता है कि इसी संख्या के आधार पर संभवतः भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में भी ३६ अध्याय हैं तथा नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक को पांच अवस्थाओं में बांटा गया है लक्ष्य प्राप्त होने पर जिस का अंत सुखांत अथवा आनंद दायक होता है। भारत में दुखांत नाटक के लिए कोई स्थान नहीं है। संसार शिव का एक नाटक है जिस का अंत परमानंद ही है। शिव ही अपने आप को (पांच कुंचिकाओं के आवरण में) भुलाकर

संसार में लीला करके पुनः निज अवस्था में आते हैं। इस के लिए नाटक की इन अवस्थाओं को पार करना पडता है।

'प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च तथा प्राप्तेश्च संभवः।

नियतच फलप्राप्ति फल योगश्च पंचमः'। भरत मुनि नाट्य शास्त्र-१६- ८।

अर्थ - आरंभ, प्रयत्न, प्रापत्याशा, नियत, तथा फल प्राप्ति पांच अवस्थाएं हैं।

१. आरंभ में अध्यवसाय अर्थात ज़िज्ञासा एवं धुन।

२. प्रयत्न में परिश्रम तथा गुरु धारण करना।

३. प्राप्त्याशा में फल की आशा।

४. नियत में व्यवधानों के साथ साथ किंचित फल का निश्चय होना।

५. फलागम में उद्देश्य की पूर्ति।

इस पुस्तक में छटी अवस्था **'पराग'** एवं 'अनुभवात्मक आनंद के साधारणीकरन' को भी सम्मिलित किया गया है। अर्थात ललेश्वरी की हृदय तथा आत्मा की मुक्त अवस्था में अनुभवों की अभिव्यक्ति को इस में दर्शाया गया है। ललवाखों के संदर्भ में ललेशरी के जीवन नाटक की भिन्न कार्य अवस्थाओं का आंकलन इस पुस्तक में इसी आधार पर किया गया है।

पहली अवस्था **'आरंभ'** में ललेश्वरी की निराशा तथा जिज्ञासा तथा औत्सुक्य प्रधान है। यहां अध्यवसाय (परिश्रम, धुन, गंभीरता) ही विद्यमान होता है। 'परन परन ज़्यव ताल फ'जिम' अर्थ, 'पढते पढते मेरी जीह्व और तालू घिस गए'। (वा ८)

दूसरी अवस्था **'यत्न'** में वैराग्य तथा भक्ति का प्राधान्य रहता है। (वा १०) 'तल् छुय ज़्युस तय प्यठ् छुख नच़न'। अर्थ, 'नीचे गहरा गढा है और उसके ऊपर तू नाच रहा है'। तथा 'योरय आयि तुर्य गछुन गछ़े ' अर्थ, जहां से आए

हैं वहीं जाना चाहिए है (वा ४)। तथा गुरु से मिलाप होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। 'गायत्रय —ग्वर् कथ पा'जिम च़ा'जिम च़ख '। अर्थ, 'गुरु से मिला शब्द हृदय में धारण किया' (वा ५५)। 'अकुय ओमकार युस नाभि दरे '। अर्थ, 'एक ही ओमकार जो नाभि में धारण करेगा' अर्थात नाभि के स्थान पर ध्यान करेगा (वा ४८)। आदि।

तीसरी अवस्था **'प्राप्त्याशा'** है। गुरु दीक्षा के पश्चात उसी के अनुरूप गहन अभ्यास करना जहां व्यवधानों के साथ साथ किंचित फल प्राप्ति की आशा का संचार होने लगता है। वहां प्राप्त्याशा कार्य अवस्था है। 'तन् मन् ग'यस बो तस कुनुय बूज़ुम सतुक गंट् वज़न' अर्थ, 'मैं तन मन से उस प्रभु के ध्यान में लीन हुई तो सत्य का घडियाल बजते सुना (वा ३८)।

चौथी अवस्था **'नियत'** की है जो आशा तथा निराशा के बीच की अवस्था है तथा उसके साथ ही फल प्राप्ति निश्चित हो जाती है।

'लल बु लूसूस-म्यति कल गनेयम ज़ि ज़ोगमस तती' अर्थ, 'मेरी जिज्ञासा तीव्र हो गई और दर्शन के लिए ताक में बैठकर मैंने वहीं पर डेरा डाल दिया' (वा ४७)।

पांचवी अवस्था **'फलागम'** जिस में लक्ष्य प्राप्ति, तथा आनंद रस का संचार होता है।

'सदेह जीवन मुक्ति प्रा'वृ्म' अर्थ 'इसी शरीर में मैंने जीवन मुक्ति पाई' (वा ६५)।

छटी अवस्था- 'पराग' विस्तार तथा जन हित कार्य या अपने अनुभवानंद द्वारा दूसरों का मार्ग प्रशस्त करना। यह एक स्वछंद अवस्था है।

'ओर् ति पानय योर् ति पानय, पानय पानस छुन् मेलान' ।

प्रथम अच़्यस ऩ् मूलय दा'नी, सुय हा मालि च़्य आशच़र ज़ान' (वा ५६)। अर्थात, परमात्मा स्वयं ही जीव है और स्वयं ही ईश्वर, आश्चर्य की बात है कि स्वयं स्वयं से नहीं मिलता है यह तो पूर्ण है। इसमें बढाने घटाने की कोई भी संभावना नहीं, है फिर भी कैसे यह दो बन गए हैं। यही विरोधाभास तो हैरान करने वाली बात है।

इस पुस्तक की कुछ विशेषताएं-

१. सारे वाखों को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहला भाग १६२ वाखों का नाटकीय वर्गीकरण दर्शाता है। दूसरे भाग में वे वाख हैं जो ललेश्वरी की भाषा से मेल नहीं खाते किंतु उनकी शैली के साथ निकटता रखते है और लोकप्रिय भी हैं।

२. शब्द कोष-ललवाख के प्रत्येक शब्द का देवनागरी में समानांतर अर्थ अथवा पयार्य शब्द दिए गए हैं। वाख की प्रत्येक पंक्ति को छाया दी गई है। इसी के नीचे दूसरी पंक्ति में शब्दशः अर्थ दिया गया है। जिससे वाक्यार्थ भी समझ में आ सकता है।

३. प्रत्येक वाख के अत में अन्य लेखकों की पुस्तकों में दिखाई गई वाख संख्या दी गई है।

४. अपने अनुभव के बल पर ही वाखों के अंत पर टिप्पणी तथा शब्दार्थ एवं व्याख्या दी गई है। कहीं पर वाख के मुहावरों को रेखांकित किया गया है।

यह कृति ललेश्वरी के बारे में एक नवीन प्रयोग है जिस का आनंद विशेषकर कश्मीरी भाषा जानने वाले सारे कश्मीर निवासियों को, तथा सामान्य तौर पर पूरे संसार को प्राप्त होगा, ऐसी कामना करता हूं। .... पुष्करनाथ रैणा

पहला भाग

इस भाग में आरंभ से लेकर फल की प्राप्ति तक की पांच नाटकीय अवस्थाएं तथा पराग नाम की छटी अवस्था भी दी गई है। इसमें ललेश्वरी की अध्यात्मिक यात्रा के आरंभ से पूर्णता प्राप्त होने तक के भिन्न भिन्न पडाओं का समावेश किया गया है जो क्रमशः इस प्रकार हैं।

१.	आरंभ	जिज्ञासा	- वाख १ से ८ तक।
२.	प्रयत्न	गुरुमिलन	- वाख ६ से ३२ तक।
३.	प्रापत्याशा	प्राप्ति की संभावना	- वाख ३३ से ४६ तक।
४.	नियत	आश	- वाख ४७ से ६० तक।
५.	फलागम	सिद्धि	- वाख ६१ से १३८ तक।
६.	पराग	विसतार	- वाख १३६ से १६२ तक।

१ – आरम्भ

वख १ से ८ तक।

प्रारंभ में स्वाध्याय आदि द्वारा ललेश्वरी के अंतर में भगवान प्राप्ति की भूख तथा जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

आमि पन् स'दरस नावि छस लमन ।
कति बोज़ि दय म्योन म्यति दियि तार ।
आम्यन टाक्यन पोन्य ज़न शमन ।
जुव छुम ब्रमन गर् गछ़हा ।। १।।

। क-१। ग-५०। च-६६। ग्रि-१०६। पा-४। शि-७१।

आमि	पन्	स'दरस	नावि	छस	लमन
कच्चे	धागे से	समुद्र में	नाव को	रही हूं	खेंच
कति	बोज़ि	दय म्योन	म्यति	दियि	तार
काश	सुनें	प्रभु मेरे	मुझे भी	करें	पार(भवसागर से)
आम्यन	टाक्यन	पोन्य	ज़न	शमन	
कच्चे	पर्वों को	पानी	जैसे	घलाता है	
जुव	छुम	ब्रमन	गर्	गछ़हा	
मेरी अंतरात्मा	है	मचल रही	(कि) घर	जाऊं	

अर्थात, संसार रूपी समुद्र से पार जाने के लिए जीवन रूपी नाव को श्वासोश्वास रूपी कच्चे धागे से खींच रही हूँ। काश! मेरे प्रभु मेरी विनती तथा पुकार सुनकर मुझे भी भवसागर से पार उतार देते। इसके लिए मेरी जान मचल रही है और निजधाम में जाने की यह ललक मेरे कलेजे को ऐसे ही घलाती है जैसे कच्चे पर्वों को पानी पिघला देता है।

' आमि पन् '- 'कभी भी टूटने वाल श्वासोश्वास' से। ' शमन ' - 'कमज़ोर करना या घल जाना' अर्थात घबराना।

आयस कमि दिशि तू कमि वते ।
गछू कमि दिशि कवू ज़ानू वथ ।
अनतिह दाय लगि मे तते ।
छुम छ्यनिस फ्वकस कोंछ़ ति नो सथ ।। २।।

क-८ ग- ५३। शि -६। च-८। ग्रि-४१। पा-१६।

आयस	कमि	दिशि	तू	कमि	वते
आई में	किस	दिशा	और	किस	पथ से
गछू	कमि	वति	कवू	ज़ानू	वथ
जाऊं	किस	रासते	कैसे	जानूं	पथ भी
अनति	दाय	लगि	मे	तते	
अंतिम	ज्ञान	काम आयेगा	मुझे	वहां (निज धाम पर)	
छुम	छ्यनिस	फ्वकस	कोंछ़	ति नो	सथ
है मेरे	खाली (असार)	श्वास पर	कोई	नहीं	विश्वास

अर्थात, ललेश्वरी शंका प्रकट करती हैं कि उसे मालूम नहीं कि वह कहां से, किस पथ से, तथा किस दिशा से आई है, और (अपने वास्तविक धाम में) किस दिशा से जाना है, तथा जाने का रास्ता भी ज्ञात नहीं। इस अस्थायी सांस पर कोई विश्वास नहीं है कि कब चली जाएगी। इसलिए संसार में आकर वास्तविक (अपने आत्म स्वरूप को पहचानने का) ज्ञान ही अंत में काम आएगा।

पाठ भेद - १. शि - कांह ति नो सथ। २. ग - क्वसूह सनूह सथ। पा - 'दिश' के बदले 'वति' तथा 'लगिमे' के स्थान पर 'लगिमय' का प्रयोग किया है।

आयस वते गयस न् वते ।
स्यमंज स्वथि लूसतुम दोह ।
चंदस वुछुम त् हार न् अथे ।
नाव् तारस दिम् क्या बो'ह ।। ३।।

क-५। ग-५४। चि-६। ग्रि-६८ , तथा नोट-पृ-१८। शि-७। पा-१६।

आयस	वते	गयस	न्	वते
आई मैं	ठीक रास्ते से (किंतु)	गई	नहीं	उस रासते से
स्यमंज़ (सुमन)	स्वथि	लूसतुम	दोह	
बीच	बांध पर (ही)	डूब गया	दिन	
चंदस	वुछुम	हार	न्	अथे
जेब को	टटोला	कौडी	नहीं	मिली
नाव्	तारस	दिम्	क्या	बो'ह
नाव की	उतराई	दूं	क्या	(अब) मैं

अर्थात, मैं जिस रास्ते (परमात्मा) से आई उस रास्ते (स्वात्म ज्ञान प्राप्ति) से वापस नहीं गई। सागर (भवसागर) के किनारे पर चलते चलते इसके बीच में ही दिन डूबा और शाम (अंतकाल का आभास) हो गई। जब नाव की उतराई (हरि नाम) देने के लिए जेब टटोलने लगी तो कुछ नहीं पाया। अब परेशान हूं कि पार जाने की उतराई क्या दूं। सारांश यह कि भवसागर से पार उतरने के लिए आत्मज्ञान रूपी उतराई को प्राप्त करना ही जीवन की सार्थकता है। 'सुमन' शब्द का लोक पाठ- 'स्यमंज़' अर्थात 'बीच में' है जिसका अर्थ भी वाख के अर्थ के साथ मेल खाता है। (ग्रि पृष्ठ १२० नोवल्ज़-१८,१८८५ ई) । नुंद ३५१, ललेश्वरी के शब्दों को फेर बदल के साथ लिखा गया है। जैसे आयस के स्थान पर 'आयास' तथा लूसतुम के स्थान पर 'ल'जिम राथ' बो'ह के स्थान पर 'दिमस क्यात' आदि ललवाख से भिन्नता दर्शाता है।

अछ़्यन आय त् गछुन गछ़े ।
पकुन गछ़े द्यन क्यो राथ ।
योरय आयि त् तूर्य गछुन गछ़े ।
केंह न त्, केंह नत् केंह, नत् क्याह़ ।। ४।।

क-७। ग-५१। चि-४। ग्रि-१६। शि-६७। ग-५१।

अछ़्यन	आय	त्	गछुन	गछ़े	
अविछन	आते रहे	और	जाना भी	अवश्य है	
पकुन	गछ़े	द्यन	क्यहो	राथ	
चलते	ही रहना चाहिऐ	दिन	और	रात	
योरय	आयि	त्	तूर्य	गछुन	गछ़े
जहां से	आये हैं	और	वहीं (तो)	जाना	चाहिए
केंह न	त् केंह	नत् केंह	नत्	क्याह	
(यदि) कुछ नहीं	तो कुछ	न कुछ (अवश्य है)	वरना	क्या (यहां आना व्यर्थ है)	

अर्थात, जीव कब से जन्मता तथा मरता रहा है। यह ज्ञात नहीं ? किंतु यह क्रम रात दिन चलता रहता है। जहां (प्रभु) से आये हैं अवश्य वहां अपने स्रोत में ही जाना चाहिए है। यदि माना जाए कि ऐसा कुछ नहीं है फिर भी कुछ न कुछ रहस्य तो अवश्य ही है। नही तो यह सारा तथ्य क्या है? यह जाने बिना यहां रहना व्यर्थ है।

क्याह कर् पा'न्च़न द'हन त् काहन ।
व्वखशुन यथ ल्यजि क'रिथ यिम गय ।
सा'रिय समहन यथ रज़ि लमहन ।
अद् क्याज़ि राविहे काहन गाव # ।। ५।।

क-६। ग्रि-६५। शि-१३। पा-६०।

क्याह	कर्	पा'न्च़न	द'हन	त्	काहन
कैसे	करों (निपट लूं)	पांच	दस	और	ग्यारह से
व्वखशुन	यथ	ल्यजि	क'रिथ	यिम	गय
टटोलके	इस	हांडी को	करके	जो	गए
सा'रिय	समहन	यथ	रज़ि	लमहन	
सारे	मिलके	इस	रस्सी को	खेंचते	
अद्	क्याज़ि	राविहे	काहन	गाव	
फिर	क्यों	खो जाती	ग्यारह (की)	गाय	

अर्थात, पांच मनोवृत्तियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार), दस इंद्रियों (पांच ज्ञान तथा पांच कर्म इंद्रियां) तथा ग्यारह (१० इंद्रियां+मन) को क्या करूं जो अलग २ मेरी काया रूपी हांडी को उभाड गए। यदि यह सारे केंद्रीभूत होकर रस्सी (साधन) को पकडकर काम करते तो मनुष्य की गाय रूपी आत्मा क्यों संसार में भटक कर खो जाती। भाव यह है कि अपनी सारी इंद्रियों को भटकने से रोक कर खोया हुआ पदार्थ (आत्म भाव) प्राप्त हो सकता है।

मुहावरा- आहन मालि काहन गाव - किसी कार्य को मिलकर न करना।

काहन गाव रावुन्य - ग्यारह भाईयों की एक गाय खो गई। हर एक भाई गाय को ढूंडने निकला और गाय न मिलने पर प्रत्येक भाई यही सोचता रहा कि दूसरे भाई को मिल ही गई होगी। अंत में सारे खाली हाथ घर लौटे और इस प्रकार गाय खो गई।

गाटुलाह अख वुछुम ब्वछि सूत्य मरन ।
पन ज़न हरन पोहनि वाव् लाह ।
न्यशबो'द अख वुछुम वाज़स मारन ।
तन् लल बो' प्रारन छ्यन्यम ना प्राह ।। ६ ।।

क-६ । ग- ६२। ग्रि-८३। पा-२।

गाटुलाह	अख	वुछुम	ब्वछि	सूत्य	मरन
बद्धिमान	एक (को)	देखा	भूख	से	मरते हुए
पन	ज़न	हरन	पोहनि	वाव् लाह	
पत्ते	जैसे	गिर रहे हूं	पोष मास	की हवा से	
न्यशबो'द	अख	वुछुम	वाज़स	मारन	
बुद्धिहीन	एक (व्यक्ति) को	देखा	रसोईये को	पीटते हुए	
तन्	लल बो'	प्रारन	छ्यन्यम ना	प्राह	
तभी से	लल मैं	प्रतीक्षा में हूं	मिटे मेरा	भ्रम	

अर्थात, मैंने एक बुद्धिमान को भूख से मरते देखा जैसे शरद ऋतु की हवा से पत्ते गिरते हों, अर्थात वह अति निर्बल था। (उस की बुद्धिमानी से वह भूखों मरने से नहीं बच सका)। एक बुद्धिहीन द्वारा रसोइये को पीटते हुए देखा (बावर्ची द्वारा अधिक खाना न देने पर पीटते देखा)। यह सब कार्य उल्टे हो रहे थे। यह सब देख कर तभी से मैं इस प्रतीक्षा में हूं कि कब मेरी यह दुविधा मिटे (कि ऐसा क्यों होता है ?)।

भाव -यह संसार अपनी ही चाल से चलता है। किसी का इस पर कोई बस नहीं है। बुद्धिवान भूखा मरता है और बुद्धिहीन मारता है, किंतु ऐसा क्यों हो रहा है यह मनुष्य की समझ से परे है।

नाथ ना पान ना परज़ोनुम ।
सदा'य बूदुम ईकुय दीह ।
च़् बो बो च़् म्युल ना ज़ोनुम ।
च़् कुस बो क्वस् छु संदीह ।। ७।।

क-१३०। ग-५७। च-२६। शि-३१। पा-२०।

नाथ	ना	पान	ना	परज़ोनुम
प्रभु (को)	ना ही	स्वयं को	भी नहीं	पहचाना
सदाय	बूदुम	ईकुय	दीह	
सदा ही	जाना	अकेले	(अपन) देह को	
च़् बो	बो च़्	म्युल	ना	ज़ोनुम
तुम मैं हो	मैं तुम हो	मिलाप	नहीं	जाना ही इसका
च़् कुस	बो क्वस्	छु	संदीह	
तू कौन	मैं कौन	होता है	संदेह (इसी कारण)	

अर्थात, मैंने न प्रभु को ही, न अपने आप को ही पहचाना। सदा केवल अपने ही शरीर को सब कुछ माना। तुम मैं हो और मैं तुम हूं, इनका मिलाप न कर सकी, इसी कारण संदेह उत्पन्न हुआ कि तुम कौन हो और मैं कौन हूं ?

बूदुम- बुद्धि में आया। ' परज़ोनुम ' को ' पर जोनुम ' (पा-२०) अर्थात 'दूसरा जानना' पर का पृथक शब्द मान कर अर्थ बदल दिया गया है। जो ठीक नहीं है।

परन परन ज़्यव ताल फ'जिम ।
च़्यह युग्य क्रय त'जिम न ज़ाह ।
सुमरन फिरन न्यठ त्‌ ओंगूज ग'जिम ।
मनूच दुय मालि च़'जिम न ज़ाह ॥ ८ ॥

क-४४। शि-११६।

परन	परन	ज़्यव	ताल	फ'जिम
पढते	पढते	ज़बान (तथा)	तालु	घिस गए (मेरे)
च़्यह	युग्य	क्रय	तजिम नू	ज़ाह
तेरे	योग्य	क्रिया	करनी आई नहीं	कभी
सुमरन	फिरन	न्यठ तू	ओंगूज	ग'जिम
माला	फिरते	अंगूठा और	अंगुली	घिस गए
मनूच	दुय	मालि	च़'जिम न	ज़ाह
मन का	द्वैत	(अरे) बाबा	मिटा नहीं	कभी

अर्थात, पोथियां पढते ज़ीब और तालू घिस गए, पक गए, परंतु मुझे तेरे योग्य क्रिया करनी ही नहीं आई। माला फिरते अंगुली और अंगूठा घिस गए, किंतु मन से द्वैत भाव दूर नहीं हुआ।

भावार्थ, केवल पोथियां पढने तथा माला फेरने से कुछ प्राप्त नहीं होता जब तक न कि प्रभु को पाने की सच्ची क्रिया की जाए अर्थात द्वैत भाव का त्याग किया जाना वांछित है। दुय - द्वैत, दुविधा, द्य - घ्रणा।

२ - प्रयत्न

वाख ६ से ४३

जिज्ञासा बढने से ललेश्वरी में भगवान को पाने का प्रयत्न आरंभ हुआ तथा अनेक साधनों से भी कुछ भी शांति नहीं मिली। कुछ समय पश्चात उनको गुरुदीक्षा मिली तथा निरंतर अभ्यास करती रहीं। इस पाठ में प्रयत्न के वाखों में ललेश्वरी की भाव अभिव्यक्ति प्रस्तुत है।

कथा बूज़्म कथा क'र्‌म ।
कथायि क'र्‌म छ'र्‌य सथ ।
शास्त्रक्य कथा बूज़्म ।
कथायि बा'स्‌म सत्‌च वथ ॥ ६ ॥

क-२३५।

कथा	बूज़्म	कथा	क'र्‌म
कथा	सुनी (और)	कथा	सुनाई भी
कथायि	कर्‌म	छ'र्‌य	सथ
कथाओं ने	किया (मुझे)	खाली (मात्र)	आश्वासित
शास्त्रक्य	कथा	बूज़्म	
शास्त्र की	कथा	सुनी	
कथायि	बा'स्‌म	सत्‌च	वथ
उस कथा में	अनुमान हो गया	सत्यता के	रास्ते का

अर्थात्, मैंने कथा सुनी भी और सुनाई भी। इनसे मुझे केवल आश्वासन ही मिला, किंतु शास्त्र की कथा सुनकर सच्चाई के रास्ते का पता पाया। अर्थात, कथा या बातें वहीं सार्थक हैं जिन के सुनने से सच्चा रास्ता मिल जाए जैसे शास्त्र की कथा। इस से परे जितनी कथाएं है सब व्यर्थ ही हैं।

तल् छुय ज़्युस तय प्यठ् छुख नच़न ।
वनत् मालि मन क्यथ्ह पच़न छुय ।
सोरुय स्वंबरिथ ये'त्य छुय म्वच़न ।
वनत् मालि[1] अन किथ् रोच़न छुय ।।१०।।

क-३। शि-११४।

तल् छुय	ज़्युस	तय	प्यठ्	छुख	नच़न
नीचे तेरे है	गहरा गढा	और	इसके ऊपर	तू है	नाच रहा
वनत्	मालि[1]	मन	क्यथ्ह	पच़न	छुय
बताओ	प्यारे	मन	आपका	क्यों	ऐसा करना मानता
सोरुय	स्वंबरिथ	ये'त्य	छुय	म्वच़न	
(क्योंकि) सब कुछ	समेट कर	यहां ही	है	शेष रहता	
वनत्	मालि	अन	किथ्	रोच़न	छुय
बताओ	आपको	अन्न खाने में	क्यों	रुचि	है

अर्थात, अरे प्यारे मनुष्य! तू जिस जगह नाच रहा है ठीक उसी के नीचे एक गहरा गढा है उसकी छत किसी भी समय टूटेगी और तू उसमें गिर जाएगा। फिर भी उसी के ऊपर सब कुछ संचय (जमा) करता रहता है जो यहीं पर रह जाता है । अर्थात मरते समय कुछ भी साथ नहीं जाता यह सत्य जान कर भी तुझे अन्न खाना कैसे अच्छा लगता है (मौत सामने हो तो डर से भूख समाप्त हो जाती है।)

भावार्थ - ललेश्वरी की यथार्थ चेतावनी है कि मनुष्य मृत्यु रूपी गहरी खाई पर जीवन रूपी छत के ऊपर मज़े से नाच कर अर्थात, रह कर सारी संपत्ति जमा करता है, जो मरते समय साथ नहीं जाती है। इस बात को जानकर भी संसार की भूख बढती ही जाती है। अर्थात जीवन अस्थाई है फिर भोगों के प्रति रुचि नहीं होनी चाहिए?

१-मालि-प्यार का संबोधन जैसे प्यारे, अरे बाबा आदि। पचन-उधार देना, मानना। रोच़न-पसंद आना, मन को भाना, रुचि रखना। ज़्युस-गहरा गढा जिस से निकलना अति कठिन हो। म्वच़न- पलि रोजुन- शेष रहना।

शिलायि हृंज़्य व्वतमा ब'ज़्म ।
स्वम्बरिथ ट्यो'क पोन्य आसन पठ ।
मनस अंदर व्यचा़र को'रुम ।
वुछुम तू ड्यूंठुम शिल् कनि वठ ।। ११।।

क-२५१ ।

शिलायि	हृंज़्य	व्वतमा	ब'ज़्म
शिला (पूजन)	की	पवित्रता	बुद्धि में आई
स्वम्बरिथ	ट्यो'क	पोन्य	आसन पठ
संकलित करके	तिलक	पानी	बिछौना
मनस	अंदर	व्यचार	को'रुम
मन के	अंदर (जब)	विचार	किया
वुछुम तू	ड्यूंठुम	शिल्	कनि वठ
देखा और	पाया	शिला का ही	पत्थर का मुसल

भावार्थ - पत्थर की मूर्ति की पूजा का महत्व मेरी बुद्धि में आया और तिलक, पानी, आसन आदि पूजा, सामग्री जुटाई। अपने मन के अंदर गहन विचार करने पर देखा वह केवल पत्थर ही था इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

अर्थात, शिला पूजन कृत्रिम पूजा है। इस का कोई प्रयोग नहीं, न ही कोई लाभ है।

ब'ज़्म - बुद्धि द्वारा समझी।

ल'लिथ ल'लिथ वदय बो'दा'य ।
च़्यता मुहुच प्ययिय माय ।
रोज़िय नो पत् लोह लंगर्च छ़ाय ।
निज़ स्वरूफ क्या मो'ठुय हाय ।। १२ ।।

क-२। ग्रि-६७। शि-१०६। पा-१४ ।

ल'लिथ	ललिथ	वदय	बो'दा'य
ज़ार ज़ार	बिलख बिलख कर	रोऊंगी मैं	बुद्धि को
च़्यता	मुहुच	प्ययिय	माय
रे चित्त	मोह के साथ	हो गया है तुझे	लगाव
रोज़िय	नो पत्	लोह लंगर्च	छ़ाय
रहे गी	नहीं बाद में	कुटुम्ब की	परछाई (भी)
निज़[1]	स्वरूफ	क्या मो'ठुय	हाय
अपना	(मूल) स्वरूप	क्यों तू भूल गया	अफसोस

अर्थात, अरी मेरी बुद्धि! मैं तेरी दासी हो गई हूँ। इस लिए तेरे को बिलख बिलखकर में रोऊंगी। अरे मेरे चित्त! तुझे मोह के साथ प्रेम हो गया है। यह संसार अंत में तेरे साथ नहीं रहेगा, ऐसा जानकर भी अपना स्वरूप भूल गई, यही तो शोक की बात है।

ललिथ - ल्यलवान। नितान्त विलाप करना। लोहलंगर - डेरा, कुटुम्ब, गृहस्थ।

१-(क-२) में निज़ शब्द के स्थान पर 'तिजि़' शब्द का प्रयोग किया है जो भावानुकूल नहीं है।

विशेष - स्वरूप तेजस्वी ही होता है उस के साथ तेज विशेषण नहीं लगता।

अगले वाक्य में पथप्रदर्शक की कमी का भाव दृष्टिगोचर होता है।

हचिवि हारंजि प्यचि़व कान गोम ।
अबख छान प्योम यथ राज़दाने ।
मंज़बाग बाज़रस कुलुफ़् रुस वान गोम ।
तीर्थ् रुस पान गोम कुस मालि ज़ाने ।। १३।।

क-४। ग- ५६। शि-११२। पा १७।

हचिवि	हारंजि	प्यचि़व	कान	गोम
लकडी के	धनुष पर	घास का	तीर जैसा	हो गया मेरा (प्रयास)
अबख	छान	प्योम	यथ	राज़दाने
अनुभवहीन	बढ़ई	मिला	इस	राजधानी (शरीर) को
मंज़बाग	बाज़रस	कुलुफ़् रुस	वान	गोम
बीच	बाज़ार में	ताले बिना	दुकान जैसी	हो गई
तीर्थ् रुस	पान	गोम	कुस	मालि ज़ाने
तीर्थ के बिना	मेरा शरीर क्या	हो गया	कोई	क्या जाने

अर्थात, (अपने को पाने का) मेरा सारा प्रयास वैसा ही निरर्थक सिद्ध हुआ जैसे लकडी के धनुष पर घास का तीर। मुझे संभालने वाला अनुभवहीन (कच्चा) बढ़ई, अर्थात भगोडा मन ही मिला। अर्थात, कोई अनुभवी पथ प्रदर्शक मुझको नहीं मिला। मेरी वही दशा हो गई जो बीच बाज़ार में ताले के बिना दुकान की होती है, जिसमें से माल चोरी होने का डर व्याप्त होता है, अभिप्राय यह कि बिना स्वात्म ज्ञान के (मैं बिना तीर्थ के जैसे हो गई) अनियन्त्रित विषय वासनाओं ने मुझे घेर लिया है, अथवा कोई साध्य भी नहीं मिला। मेरी इस विकट दशा को मेरे बिना दूसरा कौन जान सकता है?

मुहावरा - अबख - अनुभवहीन। तीर्थ - स्वात्म ज्ञान।

मंदछि हां'कल कर छ्यन्यम ।
ये'लि ह्यडुन गेलुन असुन प्राव् ।
आरुक जाम् करसना द्ज़्यम ।
ये'लि अंद्रिम खार'युक रोज़्यम वार् । १४ ।।

क-४३। क। शि-१२८।

मंदछि	हां'कल	कर	छ्यन्यम	
शरमाने की	ज़ंजीर	कब	टूटेगी मेरी	
यलि	ह्यडुन	गेलुन	असुन	प्राव्
जब (मुझे)	निंद्या	ग्लानि (व)	हंसी (सहन करने की शक्ति)	प्राप्त होगी
आरुक	जाम्	कर सना	द्ज़्यम	
रसम रीति का	जामा	कब	जलेगा (मेरा)	
यलि	अंद्रिम	खार'युक	रोज़्यम	वार्
जब	अंदर का	घोडा (मन)	रहेगा	सकुशल (शांत)

अर्थात, लज्जित होने की मेरी ज़जीर कब टूटेगी ? जब ग्लानी, निंदा, हंसी को सहन कर सकूंगी, तथा रीति रिवाज रूपी वस्त्रों को कब जला दूं अर्थात त्याग दूं ? यह तब ही संभव है जब मेरा मन रूपी घोडा मेरे नियंत्रण में रहेगा।

भावार्थ, मन शांत और काबू में हो तो शर्म, ग्लानि, निंद्या, रीति, कीर्ति-अपकीर्ति आदि का कुछ भी प्रभाव मन पर नहीं पडता है। इस वाख में ललेश्वरी अपने हृदय की स्वच्छंद अवस्था की कामना करती दिखाई देती है।

आंचार हा'न्ज़न हुंद गोम कनन ।
नदुर छुव् तृ ह्यियिव मा ।
ति बूज़ त्रुक्यव तिम रूद्य वनन ।
चेनुन छुव तृ चीनिव मा ।। १५।।

क-१६८। चि-५२।

आंचार	हा'न्ज़न	हुंद	गोम	कनन
आंचार (निवासी)	नाविकों	के (बोल)	दिए (मुझे)	सुनाई
नदुर	छुव्	तृ	ह्यियिव	मा
कमलडंडी	हैं (बेचने के लिए)	तो	खरीदोगे	क्या
ति	बूज़	त्रुक्यव	तिम	रूद्य वनन
वही बात	सुनी	बुद्धिमानों ने	वे	रहे (चले गए) वनों में
चेनुन	छुव	तृ	चीनिव	मा
(यदि) महसूस करना	है	तो	जानना है	क्या

अर्थात, आंचार झील निवासी नाविकों के बोल सुनाई दिए कि नदरू अर्थात कमलडंडी (जो टिकने वाला एवं दृढ नहीं है, अर्थात संसार) लेलो। बुद्धिमानों ने यह सुनकर ('मा' का अर्थ 'मत लेलो' समझकर) वनों की राह ली, या विरागी होगए। भाव यह कि वह जो कह गए उस चेतावनी को समझना है तो समझो।

कमलडंडी अर्थात नदुर का शाब्दिक अर्थ है 'न टिकने वाला'। लाक्षणिाक अर्थ के रूप में इसकी उपमा नश्वर संसार के साथ दी जाती है। नदुर शब्द की उत्पत्ति भी न+दो'र - 'नहीं दृढ है जो' के कारण हुई हो सकती है। नदुर अत्यंत कोमल होता है।

आंचा'र्य बिचा'र्य व्यच़ार वो'नुन ।
प्राण त् रुहुन ह्यियव मा ।
प्राणस ब'ज़िथ मज़ा चूहुन ।
नदुर छुव् त् ह्यियव मा। ।। १६ ।।

क-१६६। चि-५३।

आंचा'र्य	बिचा'र्य	व्यच़ार	वो'नुन
आंचार वासी	बेचारे ने	सोचने वाली बात	कही
प्राण	त्	रुहुन	ह्यियव मा
(कि) प्रान (लहसुन की प्रजाति)	और	लहसुन	खरीदोगे क्या
प्राणस	ब'ज़िथ	मज़ा	चूहुन
प्राणों को	तडका लगाकर	मज़ा	चूसना (चाहते हो इसलिए)
नदुर	छुव्	त्	ह्यियव मा
कमल डंडी	हैं (बेचने के लिए)	तो	खरीदो मत

भावार्थ, ललेश्वरी कह रही हैं कि आंचार वासी ने पते की बात कही कि लहसुन अर्थात (प्राणों और आत्मा का) स्वाद पाने के लिए तडका मत लगाकर खाओ। अर्थात, संसारिक भोग के मज़े में अपनी आत्मा को ' नदुर '(कमल डंडी), रूपी 'नश्वर संसार' से हटा कर प्राणों को परमात्मा की ओर लगाओ।

(प्रान तथा लहसुन दो वनस्पतियां हैं जिनका तामसिक प्रभाव माना गया है। कश्मीर में मुसलमान इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते हैं)। चौथी पंक्ति में ' मा ' शब्द का अर्थ ललेश्वरी के अनुसार ' मत खरीदो ' व्यक्त होता है।

लाचा'र्य बिचा'र्य प्रवाद को'रुम ।
नदुर छुव् तृ ह्यायिव मा ।
फीरिथ दुबार् जान क्या वो'नुम ।
प्रान तृ रुहुन ह्यायिव मा ।।१७।।

क-१५६। शि-७३। ग्रि-८६।

लाचा'र्य	बिचा'र्य	प्रवाद	को'रुम	
लाचार	बेचारे (नदुरवाले) ने	संबोधित	किया (मुझको)	
नदुर	छुव तृ	ह्यायिव	मा	
नदुर (कमलडंडी)	है (बिकाव) तो	खरीदोगे	क्या	
फीरिथ	दुबार्	जान	क्या	वो'नुम
वापसी	पुनः	अच्छी	बात कही	मैं ने
प्राण	तृ	रुहुन	ह्यायिव	मा
(कि) प्रान (प्राण)	तथा	रुहन (रूह) को	खरीदोगे	क्या

अर्थात, नदुर वाले ने पुकारा कि नदुर ' न+दो'र ' - जो मज़बूत न हो, लेलो। मैं ने भी उत्तर दिया कि प्राण रुहन अर्थात आत्मभाव लेलो। अर्थात आप न टिकने वाला संसार (नदुर) बेचते हो और हम अध्यात्म भाव (रूह एवं प्राण) ग्रहण करने के लिए आपको पुकार रहें हैं, इसे लेलो।

ह्यायिव मा (खरीदोगे क्या) का दूसरा अर्थ भी है-मत खरीदो अर्थात प्राण तथा रुहुन (लहसन) जो कामोत्तेजक पदार्थ हैं, इनका प्रयोग नहीं करो।

ललेश्वरी के आरंभिक वाखों में गुरु दीक्षा के पश्चात अपने अस्तित्व में परिर्वतन की दशा का वर्णन मिलता है अगले वाखों में देखें-

ग्वर्‌य मोल तय ग्वर्‌य मा'जी ।
ग्वर्‌य दिवान न्यत्रन गाश ।
ये'म्य छ'रिस म'रिस वस्त्र ला'गी ।
छुय पुण्यस भागी पापस नाश ।। १८।।

बी-५।

ग्वर्‌य	मोल	तय	ग्वर्‌य	मा'जी
गुरु ही	पिता	तथा	गुरु ही	माता (है)
गो'र्‌य	दिवान	न्यत्रन	गाश	
गुरु ही	देता है	नेत्रों को	प्रकाश (स्वआत्म)	
ये'म्य	छ़रिस	मरिस	वस्त्र	ला'गी
जिसने	वासना शून्य	शरीर को	(गुरु वाक्य) वस्त्र	पहनाये
छुय	पुण्यस	भागी	पापस	नाश
वह है	पुण्य का	भागी (तथा)	उसके पापों	का नाश (है)

अर्थात, अपना गुरु ही माता व पिता है जो आंखों को (स्वआत्म) प्रकाश देता है। एवं ज्ञान चक्षु प्रदान करता है। जिसने वासना शून्य शरीर को गुरुवाक्य रूपी वस्त्र पहनाए, उसी का पुण्य अर्जित होकर उसके पापों का नाश होता है।

गुरु प्राप्त होने के बाद ललेश्वरी अपने अस्तित्व में परिर्वतन की दशा का भावप्रदर्शन कैसे करती हैं अगले पदों में देखते हैं।

केंच़न दितिथम गुलाल् य'च़्य ।
केंच़न ज़ोनुथ न दिनस वार ।
केंच़न छ़्निथ ना'ल्य ब्रह्मह'च़्य ।
भगवान् चानि ग'च़ नमसकार ।। १६।।

क-१५०। शि-१४३। ग्रि-ललवाक्याणि पृ १२५ पर नोल्ज १२०।

केंच़न	दितिथम	गुलाल्	य'च़्य
किन्हीं को	दिए	(फूल) बेटे	अनेक
केंच़न	ज़ोनुथ	न	दिनस वार
किन्हीं को	समझा	नहीं	देना उचित्त
केंच़न	छ़्निथ	ना'ल्य	ब्रह्मह'च़्य *
किन्हीं को	डाल दीं	गले में	बह्म हत्याएं (बेटियां)
भगवान्	चानि	ग'च़	नमस्कार
हे प्रभू	आपकी	लीला को	नमस्कार

अर्थात, हे भगवान तुम ने कितने लोगों को पुत्र दिए तथा कईयों को कुछ भी न दिया। कितनों को केवल पुत्रियां प्रदान कीं, आप की इस इच्छा या लीला को हमारा नमस्कार।

ललेश्वरी का भाव यह है कि उसकी अभिलाशा पूर्ति प्रभु इच्छा पर निर्भर है।

* ब्रह्मह'च़्य- कन्या को 'बह्म-हत्या' कहा गया है क्योंकि कन्या को विद्या देना, किशोर अवस्था में उसके आचरण की रक्षा करना, उसको नारी संबंधी गुप्त जानकारी तथा घर ग्रहस्ती की शिक्षा देना, बराबर का सुशील वर देखना आदि माता-पिता का दायत्व है। यदि इनमें से किसी बात की कमी रह जाए तो ब्रह्म हत्या का सा पाप लगता है।

ग्वरन वो'ननम कुनुय वचुन ।
न्य'ब्र् दो'पनम अंदर अचुन ।
सुय म्य ललि गव वाख त् वचुन ।
तवय ह्यो'तुम नंगय नचुन ।। २०।।

क-२१। पा-२७। ग-३। ग्रि-६४।

ग्वरन	वो'ननम	कुनुय	वचुन
गुरु ने	कहा (दिया) मुझे	एक ही	वचन (शब्द, गुरुमंत्र)
न्य'ब्र्	दो'पनम	अंदर	अचुन
बाहर से	कहा मुझे	(अपने) भीतर	प्रविष्ट (करने के लिए)
सुय	म्य ललि	गव	वाख त् वचुन
वही (शब्द)	मुझ लल के लिए	हुआ	अभिजित सिद्ध
तवय	ह्यो'तुम	नंगय	नचुन
इस कारण	लगी मैं	नंगे (वासना शून्य होकर)	झूमने (आनंद से)

अर्थ, गुरु ने मुझे एक ही वचन (गुरुमंत्र) कहा कि बाहर से अपने अंदर चली जाओ। वही वचन मेरे लिए लक्ष्य सिद्धि का हेतु बना, जिस से मैंने काम क्रोध आदि वासना रूपी संसारी वस्त्रों का आवारण उतारा और मैं इनके भार से स्वतंत्र हो कर आनंद से झूमने लगी।

लोकोक्ति-'वाख त वचुन' - सच, साकार होना ।

यिह क्याह आ'सिथ यि क्युथ रंग गोम ।
बेरंग क'रिथ गोम लग् कमि शाठय ।
तालव राज़दानि अबख छान प्योम ।
जान गोम ज़ान्यम पान पनुनुय ।। २१ ।।

क-१६१। ग्रि-८५। शि-१७६।

यिह	क्याह	आ'सिथ	यि	क्युथ	रंग गोम
यह	क्या	थी मैं (और)	यह	कैसा	रंग हुआ मेरा
बेरंग	क'रिथ	गोम	लग्	कमि	शाठय
बेरंग	किया	मुझे (अब)	लगूं	किस	किनारे
तालव	राज़दानि	अबख	छान	प्योम	
छत	राजधानी को	अनुभव हीन	बढई	मिला	
जान	गोम	ज़ान्यम	पान	पनुनुय	
अच्छा	हुआ	जानता है	आप	मेरा अपना आप	

अर्थात, मैं क्या थी और अब यह मेरा कैसा रंग हो गया। यह मेरा क्या हाल हो गया। उसने (गुरु ने) मुझे बेरंग कर दिया। अब ज्ञात नहीं कि ऐसी दशा में किस किनारे लगूं। मैं अपने को चतुर समझती थी, किंतु मेरे अंदर को संभालने वाला अनुभव हीन बढई अथवा कारीगर (मन) मिल गया है। चलो अच्छा ही हुआ कि मैं अपने नासमझ मन को जान जाऊंगी। अपने मन को जानने का अब अवसर तो मिलेगा। मेरा अपना आप ही जानेगा (मन की नासमझी को)।

'ज़ान्यम' के स्थान पर 'ज़ोनुम' (ग ६०) समीचीन नहीं है। मुहावरा - तालव राज़दान्य - स्वयं को बुद्धिमान समझने वाली महिला।

यि क्याह आसिथ यि क्युथ रंग गोम ।
चंग गोम च'टिथ हुदहुदन्यय दगय ।
सारिनूय पदन कुनुय वखुन प्योम ।
ललि म्य त्राग गोम लगू कमि शाठय ।। २२ ।।

क-१६०। ग-६६ । ग्रि-८४। शि-८७।

यि क्याह	आसिथ	यि क्युथ	रंग	गोम
यह क्या	थी मैं	यह कैसा	रंग (हाल)	मेरा हुआ
चंग गोम	च'टिथ	हुदहुदन्यय	दगय	
चंग (वाद्ययंत्र) ने	काट दियाा मुझे	कील के	चोट करने से	
सारिनूय	पदन	कुनुय	वखुन	प्योम
सब	पदोंका	एक से प्रकार का	बोल	मिला
ललि म्यह	त्राग	गोम	लगू कमि	शाठय
मुझ लल को	पानी का तालाब	जैसा बन गया (अब)	अटकों किस	किनारे

अर्थात, यह मैं क्या थी और अब यह कैसी मेरी दशा हो गई। इस चंग के कील की ध्वनि ने मुझे तोडकर रखा। अर्थात एक ही शब्द गूंजने लगा और सब पदों के स्थान पर एक ही शब्द (वर्णात्मक) मिल गया। इस से मेरे मानस में घबराहट का सा अनुभव हो गया। इस घबराहट से मानो मेरे मानस में सहसा एक त्राग (संस्कृत तडाग - अर्थात पानी का बडा जलाशय या तालाब) जैसा बन गया और मैं इस में बहने लगी। अब कोई पता नहीं किस किनारे लग जाऊंगी।

मेरे अनुभव के अनुसार ऐसी घबराहट की दशा गुरु मिलने के बाद होती है एवं मन पर नियंत्रण की प्रक्रिया आरंभ होती है।

अपनी निजी जानकारी एवं ज्ञान को तिलांजली देकर विचार में शून्य स्थिति आती है तथा दुविधा खडी हो जाती है, कलेजा घबराता है कि अब क्या होगा। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रेमी की पांच अवस्थाएं होती हैं जिन में साधक या प्रेमी की पहली अवस्था के अंत पर ऐसी दशा होती है। (रंग गछुन - हाल होना)

विशेष- ' चंग़् ' कश्मीर का एक दुर्लभ वाद्ययंत्र है जिसको दोनों होंटों के बीच कस कर पकडा जाता है। इसके बीच लगी कील (हुद हुद) के सिरे को हाथ से हिला कर बजाया जाता है। जिससे एक ही प्रकार का मधुर शब्द निकलता है। यह शब्द तो एक ही प्रकार का बजता है, किंतु होंठों की सुकडन तथा फैलाव से ध्वनि में तीव्रता तथा गंभीरता आती है। कील का एक सिरा चोंचनुमा होता है जिसको संभवतः हुदहुद कहते हैं।

नाबद्य बा'रस अट् गंड ड्यो'ल गोम ।
दीहकाड़ हो'ल गोम ह्यक्ह कह्यो' ।
ग्वर् सुन्द वनुन रावन त्यो'ल प्योम ।
पहलि रुस ख्यो'ल गोम ह्यक्ह कह्यो' ।। २३।।

क-२३। ग-५८। शि-३०। ग्रि-१०८। पा-२४।

नाबद्य	बा'रस	अट् गंड	ड्यो'ल	गोम
नबात के	बोझ की	रस्सी की गांठ	ढीली	पड गई मेरी
दीहकाड़	हो'ल	गोम	ह्यक्ह	कह्यो'
सीधा शरीर	टेढा	हो गया मेरा	उठा सकूं	किस तरह
ग्वर्	सुन्द	वनुन	रावन त्यो'ल	प्योम
गुरु	का	वाक्य	खोजाने के दुख	जैसा होगया
पहलि रुस	ख्यो'ल	गोम	ह्यक्ह	कह्यो'
गडरिऐ के बिना	(जैसा) रेवड	हो गया	संभालूं	कैसे

अर्थात, मेरे द्वारा उठाए गए मिश्री के बोझ की रस्सी ढीली पड गई और बोझा नीचे खिसकने से शरीर झुक गया है। अब बोझा उठाना कठिन हो गया है। जब से गुरु का वचन सुना, ऐसा लग रहा है कि मेरी कोई वस्तु खोगई हो, जिससे मैं दुखी हो रही हूं। गडरिए के बिना भेडों (इंद्रियों का समूह तथा वासनाएं) के रेवड की तरह भिखर गई हों, अब इनको एवं अपने को कैसे संभालूं।

भावार्थ - मन के कारण इंद्रियां काम करती हैं। जब मन गुरु को दिया तो ललेश्वरी को लग रहा है कि उसका कुछ खो गया है। इंद्रियां नेता के बिना ढीली पड कर बिखर गई हैं जैसे गडेरिये कि बिना भेडें इधर उधर बिखर जाती हैं। यह कार्य निभाना वैसा ही कठिन है जैसे नबात का बोझ पीठ पर ढीला पड जाए (नीचे खिसककर चुभने लगे) और शरीर झुक जाए अर्थात इंद्रियनिरोध अति दुष्कर तथा पीडा दायक है।

अट् गंड - रस्सी की वह गांठ जिसके सहारे पीठ के साथ बोझ कस कर बांधा जाता है। जैसे अट्हुर - कश्मीरी पंडित महिलाओं का एक आभूषण।

ग्रिर्यसन १०८ दीहकाड को 'द्यन कार' अर्थात दिन का काम का अर्थ यहां असंगत शब्द है।

न प्यायस त् न ज़ायस ।
न ख्ययम हंद त् न शोन्ठ ।
शन छस पथ तय ।
सतन छस ब्रोंठ ।। २४।।

क-१८०। ग-२६/२।

न	प्यायस	त्	न	ज़ायस
न	मैं मां बनी	और	न मैंने	जन्मा कोई
न	ख्ययम	हंद	त् न	शोन्ठ
न ही	खाई (मैं ने)	हंद (वनस्पति)	तथा न ही	सोंठ
शन	छस	पथ	तय	
छः के	हूं मै	बाद	और	
सतन	छस	ब्रोंठ		
सात के	हूं मैं	पहले या आगे		

श्री गोपीनाथ (वाख २६२) के अनुसार वाख की तीसरी पंक्ति ऐसे दी गई है 'न छस शन पथ, न छस सतन ब्रोंठ' इस का अर्थ बनता है कि 'मैं न छः के बाद हूं न सात से पहले हूं अर्थात माता पिता की अकेली संतान हूं'। कौल द्वारा दिए पद का अर्थ बनता है कि 'ललेश्वरी कहती हैं कि मेरा न गर्भाधान हुआ न प्रसूती और न ही हंद तथा सोंठ खायी। (हंद-कश्मीरी पालक जेसी औषधि ा जिसके पांच पत्ते होते हैं)। मैं ६ के पश्चात और ७ से पहले स्थान पर हूँ। मुहावरा- ज़्यो'न प्रसुन- गर्भ धारणा तथा प्रसूती। संभावित भावार्थ - मैं ब्रह्मचारिणी हूं और अभी षठचक्र में हूं तथा सातवें से पार नहीं गई हूँ। 'तीन प्रकार के उपायों में यहां आनव योग की चर्चा हुई है। आनवउपाय में दो प्रकार की क्रिया है एक बाह्य दूसरी ग्राह्य। ग्राह्य में बुद्धि (समझने की शक्ति) प्राण (जीवन संचार) देह (स्थूल तत्व) तथा ध्वनि (श्वासोश्वास की) (तंत्रसार, ४३ -- बलजीनाथ पंडित पृष्ठ १०८ पंक्ति १३) पांचवां बाह्य जिसमें छः योग क्रियाएं है। इनको पार करके शाक्त तथा शांभव योग है। विस्तार के लिए १३६ वाख को देखें।

रुत तय क्रुत सोरुय पज़्यम ।
कनन न् बोज़ुन अ'छन न् बाव ।
ओरुक दपुन ये'लि व्वंद् वुज़्यम ।
रत्नदीफ प्रज़ल्यम वरज़्न्य वाव् ।। २५।।

क-४२। शि-१२६।

रुत	तय	क्रुत	सोरुय	पज़्यम
अच्छा	और	बुरा	सब कुछ	मिलेगा मुझे
कनन	न् बोज़ुन	अ'छन	न्	बाव
(पर) कानों (से)	अनसुना करना	आंखों में	नहीं	कोई भाव (हो)
ओरुक	दपुन	ये'लि	व्वंद्	वुज़्यम
उधर का (स्वात्मा)	कहा (शब्द)	जब	हृदय में	उत्पन्न होगा
रत्नदीफ	प्रज़ल्यम	वरज़्नि	वाव्	
अंतरद्वीप	प्रज्चलित होगा	जंजावात के	वायु में भी	

अर्थात, अच्छे बुरे का सामना तो मुझे करना ही है। ऐसा होने पर मैंने इन बातों का अनसुना करके मेरी आंखों में प्रतिक्रिया वश कोई विकार नहीं आया। जब प्रभु की ओर से ही शब्द एवं अनाहत शब्द प्रगट होगा तो भयानक जंजावात में भी मेरा दीप प्रज्चलित होगा अर्थात, मेरे अंदर का प्रकाश प्रगट होगा तो कोई भी कठिनाई मेरा कुछ बिगाड नहीं सकती।

मुहावरा-कनन न बोज़ुन-मानो कानों से सुना ही नहीं, अनसुना करना, अवज्ञा। निरंतर अभ्यास से परमीश्वर की कृपा से अपने अंदर शब्द तथा प्रकाश उत्पन्न होता है। किसी ज़ोर ज़बरदस्ती से ऐसा कभी नहीं हो सकता है।

रोज़्नि आयस[1] गछुन गछ़्यम ।
पकुन गछ़्यम वाव़् लूकपाल ।
केंह्नस प्यठ्य नचुन गछ़्यम ।
अचुन गछ़्यम सूक्षम प्रका'र्य ।। २६ ।।

क-२४६। ग-४/२।

रोज़्नि	आयस	गछुन	गछ़्यम
रहने को यहां	आई (किंतु)	जाना ही	चाहिए (है मुझे)
पकुन	गछ़्यम	वाव़्	लूकपाल
चलना	चाहिए है	वायु	प्रभारी (श्वासोश्वास, प्राण)
केंह्नस	प्यठ्य	नचुन	गछ़्यम
‑व्यर्थ	पर ही	नाचना	चाहिए (है मुझे)
अचुन	गछ़्यम	सूक्षम	प्रका'र्य
अंदर जाना	चाहिए है	सूक्षम	प्रकार (विधि) से

अर्थात, जब आए हैं तो जाना ही चाहिऐ। सांस है तो यह भी चली जाएगी। यदि सूक्षम रास्ता न ले लूं तो शून्य पर नाचना जैसा होगा और यहां आना व्यर्थ हो जाएगा। अर्थात, यहां संसार में आकर परमार्थ प्राप्ति सर्वोपरि लक्ष्य होना चाहिए। इस के बिना कुछ साथ जाता नहीं है। १ पाठ-रोज़नि आयस न,(ग-भाग २-वा ४) लूकपाल तथा प्रका'र्य की ध्वनि अलग हैं। (यह ललेश्वरी की वाख शैली की दृष्टि से ४ से निमन्न कोटि का वाख है)।

लल अपने गुरु महाराज के साथ वार्तालाप में अपनी शंकाओं का समाधान चाहती थीं और साथ ही अपनी उपलब्धि की उन से पुष्टि कराना चाहती थीं, इसलिए उन से विनती करते हुए पूछा :-

हे ग्वरा परमीश्वरा ।
बावतम ़च्यय छुय अंतर व्यो'द ।
द्वशवय व्वपदन कंद पुरा ।
हूह कव् तुरुन त् हाह कव् तो'त ।। २७।।

क-६५। चि-८६। ग्रि-५६। शि-५२। पा-६७।

हे ग्वरा	परमीश्वरा	बावतम	
हे गुरु	परमेश्वर	बताओ मुझे	(क्योंकि)
़च्यय	छुय	अंतर	व्यो'द
आप को	है	(इन के बीच) अंतर	(का) ज्ञान
द्वशवय	व्वपदन	कंद	पुरा
दोनों	उत्पन्न होते हैं	देह	नाभिसे
हूह कव्	तुरुन त्	हाह कव्	तो'त
श्वास क्यों	ठंडा तथा	उश्वास क्यों	गर्म (होता है)

अर्थात, ललीश्वरी अपने गुरु से प्रश्न करती हैं कि एक ही शरीर में नाभिस्थान से दोनों प्राण उत्पन्न होते हैं फिर सांस लेते समय ठंडा तथा छोडते समय गर्म क्यों होता है? आप ही बताएं क्योंकि आपको इनका अंतर विदित है।

इसके उत्तर में गुरु ने कहा,

ना'बिस्थान् छ'य प्रकरथ ज़लव्नी ।
हिडिस ताम ये'ति प्रान वत्गो'त ।
ब्रह्मांडस प्यठ् सूत्य नदि वहवनी ।
हह तव् तुरुन त् हाह तव् तो'त ।। २८।।

क-९६। च-४५। ग्रि-५७। बी-१५०। शि-८१। पा-६८।

ना'बिस्थान्	छय	प्रकरथ	ज़लव्नी	
नाभि (देश) में	है	प्रकृति की	जठर अनल (अग्नि)	
हिडिस	ताम	ये'ति	प्रान	वत् गो'त
कंठ देश	तक	जहां है	श्वासोश्वास का	आना जाना
ब्रह्मांडस	प्यठ्	छय	सूत्य नदि	वहवनी
ब्रह्मांड	में	है	शीतल नदी	बहती
हह	तव्	तुरुन त्	हाह तव्	तो'त
श्वास	इसी लिए	ठंडा है तथा	उश्वास	गर्म है

अर्थात, नाभि में जठरानल अग्नि है। कंठ तक सांस का आना जाना होता है। उससे सांस गर्म होकर बाहर निकलती है और ब्रह्मांड में प्राण वायु की शीतल नदी बहती है इसी लिए सांस लेते समय ठंडी होती है।

विशेष - शरीर में मेरु से तीन नाडियां उतर कर नाभि में मिल जाती हैं। इन तीनों नाडियों में इडा के ऊपरी सिरे पर चंदम्रा तथा पिंगला के निचले छोर पर सूर्य है। अर्थात, सूर्य का स्थान नीचे के देश में तथा ब्रह्मांड में चंद्रमा का स्थान है। सुषमना जिस के मध्य में चित्रा नाडी है, इन दोनों के बीच में चलती है। इडा नाडी का प्रभाव शीतल होता है और पिंगला का गर्म होता है।

लोक कथा में कहा जाता है और संभव भी है कि ललेश्वरी घाट से पानी लाते समय कुछ देर प्रभु का स्मरण किया करती थीं। एक दिन देर से घर आने के कारण सोम पंडित ने अपनी मां के बहकावे में आकर क्रुद्ध होकर पानी लेकर आती हुई ललेश्वरी के कंधे पर रखे घडे पर पत्थर मारा और घडे को तोड दिया, घडा तो टूटा किंतु पानी जमकर कंधे पर ही रह गया। घर पहुंचकर ललेश्वरी ने सारे बर्तन पानी से भर दिए तथा बचा हुआ पानी खिडकी से बाहर फेंक दिया। वहां तत्काल ही एक त्राग या तालाब अस्तित्व में आया। जिसका नाम आज भी 'ललत्राग' ही है। ललेश्वरी को निर्दोष पाकर सोम पंडित (परिमू-पृ ३ पंक्ति २४) को ललेश्वरी के साथ दुर्व्यवहार करने का ऐहसास हो चुका था और तब उसे ललेश्वरी के साथ मिलकर रहने की इच्छा प्रबल हुई। उसने तालाब के एक किनारे पर आकर ललेश्वरी से कहा कि 'तालाब को पार करके आओ मेरे पास', तो ललेश्वरी ने उत्तर दिया 'आप ही इस तालाब को पार करके मेरे पास आइए तो' । वह नहीं माना। ललेश्वरी ने पुनः पुकारा ' यदि आप प्रयत्न द्वारा तालाब को पारकरेंगे तो आप भी मेरे साथ भवसागर को पार करेंगे'। वह डूबने से डरा। कुछ समय पश्चात वह फिर स्यद मोल के पास मध्यस्था हेतु गया और स्यदमोल से कहा कि पत्नि जैसा सुख तथा भाई जैसा बंधु कोई नहीं है। ललेश्वरी भी वहां उपस्थित थी।

ललेश्वरी के पति कहते हैं -

सिरियस ह्युव न् प्रकाश कुने ।
गंगि ह्युव न तिर्थ कांह ।
बा'यिस ह्युव न बांधव कुने ।
ज़नि ह्युव न् स्वख कांह ।। २६।।

क-१४०। ग्रि- पृ १२६ पर नोल्लज़ - २०१।

सिरियस	ह्युव	न	प्रकाश	कुने
सूर्य	जैसा	नहीं	प्रकाश	और कहीं
गंगि	ह्युव	न	तिर्थ	कांह
गंगा	जैसा	नहीं	तिर्थ	और कोई
बा'यिस	ह्युव	न	बांधव	कुने
भाई	जैसा	नहीं	बांधव	कोई
ज़नि	ह्युव	न्	स्वख	कांह
पत्नि	जैसा	नहीं	सुखदाई	और कोई

अर्थात, सूर्य के समान प्रकाशवान, गंगा जैसा तीर्थ, भाई जैसा बांधव और कोई नहीं इसी प्रकार पत्नि के समान और कोई सुख नहीं है।

उस के तर्क को काटते हुए स्यदमोल बोले कि :-

अ'छन ह्युव न् प्रकाश कुने ।
क्वठ्यन ह्युव न् तिर्थ कांह ।
चंदस ह्युव न् बांधव कुने ।
खनि ह्युव न् स्वख कांह ।। ३०।।

क-१४०। ग्रि-पृ १२६ पर नोव्लज़ - २०१।

अ'छन	ह्युव	न	प्रकाश	कुने
नेत्रों	जैसा	नहीं	प्रकाशवान	और कोई
क्वठ्यन	ह्युव	न	तिर्थ	कांह
गुठनों	जैसा	नहीं	तिर्थ	और कोई
चंदस	ह्युव	न	बांधव	कुने
जेब (धन)	जैसा	नहीं	बांधव	कोई
खनि	ह्युव	न	स्वख	कांह
ज़ादर	जैसा	नहीं	सुखदाई	और कोई

अर्थात, जब आंखें हैं तो सब कुछ प्रकाशित देखा जा सकता है। इसलिए आंखें ही प्रकाश हैं। अपनी टांगें ही महान तीर्थ है क्योंकि अपनी टांगें ही हमें तीर्थ पर ले जा सकती हैं। पैसा ही बडा रिशतेदार है क्यों कि वही बुरे समय पर काम आता है और वैसे ही चादर आदि शरीर को ढकने के वस्त्र के समान कोई सुखदाई नहीं है। जिसे ओढ कर हम आराम करते हैं।

(खनि - केसर के फूल के बाहरी तीन पत्तों को खनि अर्थात ढांपने वाला या चादर कहते हैं।)

यह सुन कर ललेश्वरी दोनों के तर्क को काटती हुई बोलीं :-

मायि ह्युव न् प्रकाश कुने ।
लयि ह्युव न तिर्थ कांह ।
दयस ह्युव न बांधव कुने ।
भयस ह्युव न् स्वख कांह ।। ३१ ।।

क-१४०। ग्रि-पृ १२६ पर नोल्ज़ - २०१।

मायि	ह्युव	न्	प्रकाश	कुने
प्रेम	जैसा	नहीं	प्रकाश	कहीं भी
लयि	ह्युव	न्	तिर्थ	कांह
लीन होने	जैसा	नहीं	तिर्थ	और कोई
दयस	ह्युव	न्	बांधव	कुने
परमात्मा	जैसा	नहीं	बांधव	कहीं भी
भयस	ह्युव	न्	स्वख	कांह
भय	जैसा	नहीं	सुखदाई	और कोई

अर्थात, प्रेम जैसा प्रकाश कोई प्रकाश नहीं क्योंकि प्रेम से सब जगह परमात्मा रूपी प्रकाश है। अपने अंतर में लीन होना ही तीर्थ है, अर्थात अपने आराध्य के साथ लय होने के कारण जिज्ञासु तुरंत अंदर झांक कर अपने प्रभु के पास पहुंच जाता है। इसलिए वही तीर्थ हुआ अर्थात लीन होना ही तीर्थ है। परमात्मा के समान कोई रिश्तेदार नहीं है, जिसको हम उस समय याद करते हैं, जब हमें सब छोड देते है। और भय (मृत्यु तथा संसार सागर में डूबने का डर) के समान और कोई सुख नहीं। क्योंकि जब बुरा काम करने के बदले सज़ा मिलेगी तो इस भय के कारण पाप नहीं होगा इसलिए भय ही सुख है। परमात्मा का डर रखना भी यहां अर्थ देता है।

लतन हुन्द माज़ लारयोम वतन ।
अ'की हा'वनम अकिची वथ ।
यिम यिम बोज़न तिम कोन् मतन ।
ललि बूज़ शतन कुनी कथ ।। ३२।।

क-८७। ग-३८। शि-११६।

लतन	हुन्द	माज़	लारयोम	वतन
तलवों	का	मांस (चलने से)	चिपट गया	सडकों (पर)
अ'की	**हा'वनम**	**अकिची**	**वथ**	
एक ही ने	दिखाया	एक ही	मार्ग	
यिम यिम	**बोज़न**	**तिम**	**कोन्**	**मतन**
जो जो	(यह) सुनेंगे	वे	क्यों न	मतवाले होंगे
ललि	**बूज़**	**शतन**	**कुनी**	**कथ**
लल ने	सुनी (अपना ली)	सौ बातों के बदले	(का सार) एक ही	बात (को)

अर्थात, मैं ने जी तोड परिश्रम किया। एक ही (गुरु) ने एक ही रास्ता दिखाया। यह सुनकर लोग इस बात पर मतवाले और चिंतित क्यों नहीं होंगे और स्वाभाविक भी है कि ललेश्वरी ने सेंकडों बातों को सुनकर भी केवल एक ही बात स्वीकार कर ली।

विशेष - लोग एक को छोड कर दूसरे, तीसरे के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करते और प्रवचन आदि सुनते रहते हैं तथा इसी में अपना कल्यान समझते हैं। जैसे कोई राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, गणपति, नव शक्तियों, आदि की पूजा करते तथा रामायाण, महाभारत, गीताजी आदि ग्रंथ पढते हैं, तथा ऐसा करने से ही अपना कल्याण समझते

हैं। किंतु वे किसी एक बात पर टिकते नहीं हैं। इस से उनका मन भटक जाता है। ललेश्वरी ने ऐसा नहीं किया। उसने एक ही गुरु का दामन थामकर एक ही शब्द पर विश्वास किया। इसी पर लोग परेशान और विस्मित हुए कि एक ही का दामन थामने से लल क्या कर सकती है। ललेश्वरी कहती हैं कि होने दो परेशान और पागल ऐसा सोचने वालों को। लल जैसी जिज्ञासु जन एक का ही दामन थाम कर चलते तथा एक ही बात पर विश्वास करके लक्ष्य प्राप्त करते हैं।

मुहावरा-'लतन हुंद माज़ वतन लारुन' - अनथक या जीतोड परिश्रम करना।

३ प्राप्त्याशा

फल प्राप्ति की आशा

वाख ३३ से ४६ तक

इस अवस्था में गुरु दीक्षा के पश्चात, उसी के अनुरूप गहन अभ्यास द्वारा ललेश्वरी के हृदय में किंचित फल प्राप्ति की आशा का संचार होने लगता है। यहां ललेश्वरी के सारे भटकाव समाप्त होते हैं और असीम ज्ञान की प्रप्ति होकर हृदय में विस्तार आता है। अपने अनुभवों को व्यक्त करती हुई लल कहती हैं -

अव्यसता'य पोथ्यन छिय हो मालि परन ।
यिथ् तोत् परन राम पंजरस ।
गीता परन हीथा लबन ।
परम गीता परन छस ॥ ३३॥

क-४५ । चि-५१। शि-१२६। पा-६१।

अव्यसता'य	पोथ्यन	छिय हो	मालि	परन
नासमझ लोग	ग्रंथों को	हैं	मेरे प्यारे	पढते
यिथ्	तोत्	परन	राम	पंजरस
जैसे	तोता	पढता है	'राम राम'	पिंजरे में
गीता	परन	हीथा	लबन	
उन्हे गीता	पढकर	एक बहाना	मिलता है	
परम	गीता	परन	छस	
परम	गीता (ओमकार ध्वनि)	पढती	हूं मैं (तो)	

अर्थात, अविचारी और अविस्तारी पंडित अर्थ जाने बिना ही पोथियां पढते हैं। और रट ऐसी लगाते हैं जैसे तोता रामनाम को अर्थ जाने बिना ही रटता है, जिसका उसे कोई लाभ नहीं होता। गीता पढकर ऐसे लोगों को दिखावा करने का एक बहाना मिल जाता है। वास्तविकता का उन्हें कोई ज्ञान नहीं होता है। मैं (लल) ने तो ऐसा नहीं किया, अपितु मैं ने परम गीता अर्थात ओमकार का अर्थ जानकर इसे आत्मसात कर लिया है।

परमगीता - गीत या गाना शब्द से ओमकार ध्वनि का संकेत मिलता है।

विशेष - 'परपर करान ज़ल दव मंदान, बड्योख तिमनूय अहम भाव'। अर्थात पढते तो हैं किंतु वैसे मानो पानी रिडकते घी की आशा करते है। इससे उन में अहंकार का भाव बढ जाता है। यह पंक्तियां (पा ६१) में नहीं दी गई है।

कामस सूतिय प्रय नो ब'र्म ।
क्रूधस द्युतुम पवनुन फेश ।
लूभस मूहस च़रण च़'टिम ।
त्र'शना च़'जिम गयस ख्वश ।। ३४।।

क-२२६। ग-८५। शि-१०७।

कामस	सूतिय	प्रय	नो	ब'र्म
काम के	साथ	प्रीति	नहीं	रखी मैंने
क्रूधस	द्युतुम	पवनुन	फेश	
क्रोध को	दी	वायु (श्वास) की	रगड	
लूभस	मूहस	च़रण	च़'टिम	
लोभ के	मोह के	पैर	काटे मैं ने	
त्र'शना	च़'जिम	गयस	ख्वश	
लालच	मिटा	हुई मैं	प्रसन्न	

अर्थात, मैं ने काम के साथ लगाव न रखा, क्रोध का मार्जन किया, लोभ तथा मोह के चरण काट लिए। इन के लिए मेरी तृष्णा ही समाप्त हुई। तब मैं प्रसन्न होकर आनंदित हुई। काम क्रोध लोभ तथा मोह जैसे विकारों को मैंने वश में कर लिय।

इस वाख में काम क्रोध लोभ जैसी भावनाओं का सुंदर मानवीकरण झलकता है। जैसे काम के साथ प्रेम न रखना, लोभ तथा मोह के चरण काटना तथा क्रोध को वायु से मार्जन करना आदि। (क्रोध के समय सांस तेज़ हो जाती है। वाख की तीसरी पंक्तिका यही आशय है। अनुभव किया गया है कि क्रोध आते समय यदि १३ सेकंड के लिए सांस रोक लेने और छोडने की ओर ध्यान दिया जाए तो क्रोध धीमा हो जाता है किंतु क्रोध रोकने की इच्छा होना अनिवार्य है)।

ह्यथ क'रिथ राज फेरिना ।
दिथ क'रिथ त्रपति ना मन ।
लूभ व्यना ज़ीव मरि ना ।
ज़ीवंत मरि ता'य सुय छुय ज्ञान ।। ३५।।

क-४८। चि-६३। ग्रि-१२। शि-६३। पा-८६।

ह्यथ	करिथ	राज	फेरिना
(या) ले	कर	राज भी (मन)	मुडता नहीं (विषयों से)
दिथ	क'रिथ	त्रपति	ना मन
(राज) दे	कर भी	तृप्त होता	नहीं मन
लूभ	व्यना	ज़ीव	मरि ना
लोभ के	बिना	जेव (तो)	मरेगा नहीं
ज़ीवंत	मरि	ता'य	सुय छुय ज्ञान
जीते जी	मर जाए	तो	वही ज्ञान है (अमरत्त्व)

अर्थात, यह मन राज को पाकर भी विषयों से मुडता नहीं, या राज देकर भी तृप्त नहीं होता। यह मन लोभ से पीछे नहीं हटता। लोभ न करने से मनुष्य मरता तो नहीं। इस लिए लोभवश नहीं होना ठीक है। सारांश यह कि ज़िंदा मरना ही ज्ञान है। अर्थात मन को लालच देकर मोडा नहीं जा सकता है। अपितु ऐसा करने से मनुष्य अधिक विषयासक्त हो जाता है।

विशेष - जीवंत मरि तय - जीवंत् मृताय (संस्कृत) - जीते जी मरना।

ज़िंदा मरना - योगिक अभ्यास में निर्विकार रूप से ध्यान में लीन होकर शरीर का निश्चेष्ठ हो जाना।

कुस बब तय क्वसो मा'जी ।
कमी ला'जी बाजी वठ ।
का'ल्य गछ़ख कोंह न् बब कोंह न मा'जी ।
ज़ा'निथ कव् ला'जिथ बा'जी वठ ।। ३६ ।।

क-१७२। चि-५६। शि-१६४।

कुस	बब	तय	क्वसो	मा'जी
कौन	पिता	और	कौन	माता है
कमी	ला'जी	बाजी वठ		
किसने	लगाई	सांझे दारी	(इनके साथ)	
का'ल्य	गछ़ख	कोंह न्	बब	कोंह न मा'जी
समय पर	(मर) जाएगा	कोई न	बाप है	(और) न कोई मां
ज़ा'निथ	कव्	ला'जिथ	बा'जी वठ	
जानबूझ कर	क्यों तू ने	लगाई	सांझे दारी	(इन के साथ)

अर्थात, इस संसार में आकर कोई किसी की मां कोई किसी का पिता नहीं होता हैं। मरने के बाद यह सब रिशते समाप्त हो जाते हैं। इस सत्य को जानकर भी तुम ने क्यों इस संबंध को स्थाई मान लिया। इस कारण हमें पिता पुत्र के मोह में नहीं फंसना चाहिए।

(इस वाख में 'बाजी वठ' दोबार आया है जो ललवाख की विशेषता नहीं है। किंतु ठोस प्रमाणाभाव में इसे नकारा भी नहीं जासकता।)

केंच़न द्युतथम ओरय आलव ।
केंच़व रचेयि नालय व्यथ ।
केंच़न मस चथ अ'छ लजि तालव ।
केंच़न प'पिथ गय हालव ख्यथ ।। ३७।।

क-१५१। ग-६३। चि-६१। ग्रि - पृ १२५ पर नोव्लज़ १०२। शि-१४४।

केंच़न	द्युतथम	ओरय	आलव		
कुछ को	दिया तूने	उधर से ही	बुलावा		
केंच़व	रचेयि	नालय	व्यथ		
कुछ ने तो	पकडी	पूरी	वितस्ता ही (संध्या स्नान हेतु)		
केंच़न	मस	चथ	अ'छ	लजि	तालव
कईयों की	जाम	पीकर	आंखें	टिक गईं	ऊपर की ओर
केंच़न	प'पिथ	गय	हालव	ख्यथ	
कईयों को	पककर भी	गए	टिड्डी	खाकर	

अर्थात, प्रभू ने कुछ को स्वयं ही बुलाया तो कईयों ने प्रभू को पाने के लिए पानी में पर्याप्त स्नान संध्याएं की। कुछ ने तो प्रभू के चिंतन में मस्त होकर दृष्टि ऊपर टिका दी, तो कई की फसल पक कर भी टिड्डयों द्वारा नष्ट की गई।

लक्ष्यार्थ - मनुष्य ने शरीर पाकर भी प्रभु को न पाकर जीवन व्यर्थ कर दिया। अंतिम पद का अर्थ यह भी है कि कुछ का तो प्रभू के निकट पहुंच कर भी पतन हो गया।

भावार्थ -कितना भी परिश्रम करो, संध्या स्नान करो, किंतु ईश्वर अनुग्रह ही सर्वोपरि है। अर्थात जिसपर प्रभू की कृपा हो वही परम सत्य को प्राप्त होता है।

तन् मन् ग'यस बो' तस कुनुय ।
बूज़ुम सतुक गंट् वज़न ।
तथ जायि धारनायि धारना दि्चूम ।
आकाश त् प्रकाश को'रुम सर् ।। ३८ ।।

क-१२७। शि-१२१।

तन्	मन्	ग'यस	बो'	तस	कुनुय
तन से	मन से	गई	मैं	उस की	ओर
बूज़ुम	सतुक	गंट्	वज़ान		
सुनी मैंने	सत की	घंटी	बजते		
तथ जायि	धारनायि	धारना	दि्चूम		
उस स्थान पर	धारना	धारण	की (फिर)		
आकाश	त्	प्रकाश	को'रुम	सर्	
आकाश	तथा	प्रकाश (का)	किया मैंने	अनुभव	

अर्थात, मैं तन, मन, धन से उस प्रभु में तल्लीन हो गई तो मैं ने सत्य का नाद बजते सुना। उसी स्थान पर धारना की तो आकाश तथा प्रकाश को पा लिया।

यहां नाडी के पहले स्थान अर्थात स्वादिष्ठान से सहस्रार तक जाने का अनुभव प्रस्तुत किया गया है।

' सर् - वातुन ', अनुभव करना, प्रमाणित करना।

प्रथ्य तिर्थन गछ़न सन्यास ।
ग्वारनि स्वदर्शन म्युल ।
चित्ता प'रिथ मव न्यशपथ आस ।
डेंशख दूरे द्रमुन न्यूल ॥ ३६॥

क-१०४। ग-७०। चि-३७। शि ३३। ग्रि-३६। पा-६२।

प्रथ्य	तिर्थन	गछ़न	सन्यास	
हर	तीर्थ पर	जाते हैं	सन्यासी	
ग्वारनि	स्वदर्शन	म्युल		
खोजने (के लिऐ)	प्रभु	मिलन		
चित्ता	प'रिथ	मव	न्यश पथ	आस
अरे मेरे चित्त	पढकर भी	मत	निशपथ	हो
डेंशख	दूरे	द्रमुन	न्यूल	
दिखाई देता है (जैसे)	दूर से	घास	अति हरा	

अर्थात, सन्यासी लोग हर तीर्थ पर जाकर प्रभु मिलन की आशा करते हैं। अरे मेरे चित्त! पढ सुनकर भी निशपथ (बे राह) मत हो। जैसे सबज़ घास दूर से अधिक हरी दिखाई देती है, वैसे ही तुम तीर्थ पर जाकर भगवान से मिलने की आशा करते हो जो वहां जाकर भी पूरी नहीं होती है। ललेश्वरी कहती हैं कि दूर जाकर प्रभु को ढूंढना वृथा परिश्रम है वह तो अपने पास ही है।

मनस्य मान भवसरस ।
छ्युर कूपा नेरयस नार् छु'व्ख ।
ल्यक् ल्यख य्वद तुलि कूट्य ।
तुलि तुल तय तुल ना केंह ।। ४०।।

क-४१। चि-७३। शि-१०६। ग्रि-२३। बी-१३/२।

मनस्य	मान	भवसरस		
मन का	मान (अभिमान)	संसार सागर		
छ्युर	कूपा	नेरयस	नार्	छु'व्ख
अनियंत्रित होकर	क्रोध से	निकले गा	आग की	लपट
ल्यक्	ल्यख	य्वद	तुलि	कूट्य
गाली	गलोच (करके)	लडेगा	उठाएगा	लाठियां
तुलि	तुल	तय	तोल ना	कुने
तोलने पर	वज़न	और	भार नहीं	कहीं (कुछ)

अर्थात, जिस प्रकार धरती के अंदर छिपी ज्वाला भडकने पर विनाश का कारण बनती है। इसी प्रकार मनुष्य के मन के अंदर क्रोध रूपी ज्वाला छिपी रहती है संसार में मन रूपी सागर अपने अंदर मान अर्थात अह्कार रूपी आग छिपाए हुए है। (तिरस्कृत होने पर) क्रोध आने से उबाल आता है और अपशब्दों के कारण झगडा होता है एवं लाठियां उठती हैं, जिन से तबाही होती है। किंतु इन अपशब्दों को जब समझदारी से तोला जाए तो इन का कोई तोल अर्थात कोई वज़न या महत्व ही नहीं होता है।

अर्थात, अपशब्द सुनने या तिरस्कृत होने पर मन पर अंकुश रखकर क्रोध नहीं करना चाहिए। मुहावरा -' कूट्य तुल्न्य'- अनियंत्रित क्रोध का प्रदर्शन।

ललेश्वरी स्वयं के बारे में कहती हैं-

युसहो मालि ह्यड्यम गेल्यम मसखरी कर्‌यम ।
सुय हो मालि मनस खर्‌यम न ज़ांह ।
शिव पनुन यलि अनुग्रह कर्‌यम ।
लूक् ह्यडुन म्य कर्‌यम क्याह ।।४१।।

क-२१६।

युस हो मालि	ह्यड्यम	गेल्यम	मसखरी	कर्‌यम
जो ऐ मित्र	मेरी निंद्या	व्यंग्य	मखोल	करेगा
सुय हो मालि	मनस	खर्‌यम	न	ज़ांह
वह मेरे	मन द्वारा	घृणित	नहीं होगा	कभी भी
शिव	पनुन	यलि	अनुग्रह	कर्‌यम
शिव	अपने	जब	अनुग्रह	करेंगे
लूक्	ह्यडुन	म्य	कर्‌यम	क्याह
लोक	निंदा	मेरा	बिगाडे गी	क्या

अर्थात, लोग भले ही मेरी निंद्या या व्यंग्य करके हंसेंगे, मेरे मन में उसके लिए कोई दुर्भावना नहीं होगी। यदि शिव मुझ पर अनुग्रह करेंगे तो यह बातें अर्थात निंदा, व्यंग आदि मेरा कुछ भी बिगाड नहीं सकतीं या मेरे मन में कोई विकार नहीं ला सकती हैं।

त्रिक शास्त्र में शिव का अनुग्रह ही सर्वोपरी है, शेष बातों का कोई महत्व नहीं है।

ललि म्य दो'पुख लूख हांड करनय ।
तवय च़'जिम मन्‌च शेंख ।
माघ नोवुम नार च़ोलुम ।
क्रयि ह्‌ंज़ का'स़ुम मनस शेंख ।। ४२।।

क-१७७। बी-११०। शि-१८।

ललि म्य	दो'पुख	लूख	हांड	करनय
मुझ लल से	कहा गया	कि लोग	तेरी निंदा	करेंगे
तवय	च़'जिम	मन्‌च	शेंख	
इसी कारण	मिट गई	मेरे मन की	शंकाएं	
माघ	नोवुम	नार	च़ोलुम	
माघ मास	में नहाया	अग्नि को	सहन किया (गर्मी में)	
क्रयि	ह्‌ंज़	का'स़ुम	मनस	शेंख
कर्म करने	की भी	त्याग दी	मन से	शंका

अर्थात, मुझ लल से कहा गया कि लोग तेरी निंदा करेंगे। मगर मेरे मन की शंका तो इसी निंदा से दूर हुई। मैं ने ठंड और गर्मी अर्थात बुरा भला सब सहन किया तथा कर्म के साथ लिप्त होने की शंका भी मन से समाप्त हुई अर्थात मेरे में अकर्तापन का भाव स्थापित हो गया।

लल बो द्रायस लोलरे ।
छ़ान्डान लूसूतुम द्यन क्योह रात ।
वुछुम पंडिथ पन्‌ने घरे ।
सुय म्य रो'टुमस न्यछतुर तू साथ ।। ४३।।

क-६७। ग-३०। ग्री-३ ।

लल बो	द्रायस	लोलरे		
लल मैं	निकली	प्रेम भाव से		
छ़ान्डान	लूसूतम	द्यन	क्यो	रात
ढूंढते ढूंढते	बीते	दिन (कई)	और	रातें
वुछुम	पंडिथ	पन्‌ने	घरे	
देखा	परब्रह्म को	अपने ही	घर में	
सुय म्य	रो'टुमस	न्यछतुर	तू साथ	
वही (समय) मेरे लिऐ	निश्चित हुआ	नक्षत्र	तथा महूर्त	

अर्थात, प्रेम में लीन कई दिन रात मैं उसे (परब्रह्म को) जगह जगह ढूंढने निकली। जिस घडी अपने ही घर में उसे पाया तो वही समय मेरे लिए शुभ महूर्त होकर मैं उसी (उपलब्धि) का अनुसरन करने लगी।

मुहावरा - 'न्यछतुर त साथ' - कार्यक्रम का पक्का होना। इस वाख की सरलता में अथाह गांभीर्य है।

लोल्कि व्वखल् वां'लिज पिशिम ।
क्वकल च़'जिम त् रूज़्स रसय ।
बुज़्म त् ज़ा'जिम पानस च़्शिम ।
कव ज़ान् तव सूत्य मर् किन् लस् ।। ४४।।

क-७५। बी-३६/२। शि-१४२।

लोल्कि	व्वखल्	वां'लिज	पिशिम	
प्रभु प्रेम की	ओखली में	हृदय को (अपने)	मेंने पीसा	
क्वकल	च़'जिम	त्	रूज़्स	रसय
कुवासना	मिटी	और	रही में	शांत
बुज़्म त्	ज़ा'जिम	पानस	च़्शिम	
भून कर और	जला कर	स्वयं ही	चूस ली	
कव	ज़ान्	तव सूत्य	मर् किन्	लस्
क्या	जानूं	उस से	मरूं या	बचूंगी मैं

अर्थात, प्रभु प्रेम की ओखली में अपने हृदयको पीसा। ऐसा करके मन से बुरे विचार समाप्त हुए और मुझे शांति मिली। इसे भुनकर स्वयं ही इसे चूस लिया, अब मुझे ज्ञात नहीं कि इससे मरूंगी या जियूंगी।

भावार्थ, वासनाओं का त्याग करके अपने आराध्य के साथ प्रेम रखना तथा इसी प्रभु प्रेम में ही व्यस्त रहना आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए श्रेयस्कर है। जिज्ञासु साधक के लिए अनिवार्य है कि वह उठते बैठते खाते पीते चलते सोते जागते व संसारी काम करते समय भी अपने आराध्य का ही ध्यान करें। यह क्रिया सरल नहीं इसके लिए जिज्ञासु मन चाहिए।

शिव वा केशव वा ज़िन वा ।
कमलज़ नाथ नाम दा'रिन युह ।
म्य अबलि का'स्यतन भव् रुज़ ।
सु वा सु वा सु वा सु ।। ४५ ।।

क-७१। ग-७२। ग्री-८। शि-६१। पा-१२।

शिव	वा	केशव	वा	ज़िन वा
शिव	या	केशव	या	महावीर
कमलज़	नाथ	नाम	दा'रिन	युह
ब्रह्मा	नारायण	नाम (कोई)	धारण करके हो	यह
म्य	अबलि	का'स्यतन	भव्	रुज़
मुझ	अबला के	नाश करे	भव	रोग
सु	वा	सु	वा सु वा	सु
वह	या	वह हो	या चाहे	वह हो

अर्थात, ललेश्वरी कहती हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, महावीर इन में कोई भी नाम हो, मुझ अबला का संसारी रोग नाश करें। मेरे लिए इन में कोई अंतर नहीं है।

ललेश्वरी ने वास्तव में ईश्वरी शक्तियों को ईश्वर से भिन्न नहीं माना है। इसके विपरीत आज भी शिव, शक्ति, विष्णु आदि शक्तियों को लोग सामान्यतया अलग समझते है।

'भव् रुज़' - संसारी रोग। ज़िन। जैन अवतार महावीर।

स्वर्गस फीरूस ब'रगस ब'रगस ।
त्वर्गस ख'सिथ मा'रिम छ़ोह ।
अंद नो लो'बमो चा'निस वर्गस ।
बु क्वसू लल तय म्य क्या नाव ।। ४६ ।।

बी-५१।

स्वर्गस	फीरूस	ब'रगस	ब'रगस	
स्वर्ग में	घूमी	पत्ते	पत्ते में	(कण-कण में)
त्वर्गस	ख'सिथ	मा'रिम	छोह	
घोडे	पर चढ	की खूब मेंने	उछल कूद	
अंद	नो	लो'बमो	चा'निस	वरगस
अंत	न	पाया	तेरी	ऊंचाई का
बु	क्वसू लल	तय	म्य क्या	नाव
मैं	कौन लल	और	मेरा क्या	नाम है

अर्थात, मैंने घोडे पर चढकर (तेज़ी से) स्वर्ग के प्रत्येक स्थान का भ्रमण किय। तेरा अंत नहीं पाया। इस बात को जानकर मैं अपना अता पता भूल गई।

भावार्थ, हर जगह पर तू ही तू व्याप्त है। मेरा नाम कहीं भी नहीं है, अथार्त मेरा 'मैं' तो नाम मात्र ही है।

मुहावरा - 'छ़ोह मारून्य'- उछल कूद करते घूमना।
(बी एन सोपोरी द्वारा पहली बार सामने लाने के कारण यहां इस वाख को सम्मिलित किया गया है। हालांकि इस वाख में ललवाख जैसी विशिष्टता नहीं है)।

४ नियत

फल प्राप्ति की संभावना

वाख ४७ से ६० तक

इस अवस्था में व्यवधानों के साथ साथ किंचित फल प्राप्ति की संभावना निश्चित हो जाती है। ललेश्वरी का विश्वास अब परिपक्व हो जाता है। अब मिलन की प्रतीक्षा का ही सहारा लेकर वह ताक में है, जो किसी भी समय होने की सम्भावना है। कहीं कहीं रुकावटें भी आती है। किंतु पक्का विश्वास होने के कारण वह अडिग रहती हैं। और ऐसे में तो प्रतीक्षा करनी ही पडती हैं कि कभी भी दर्शन हो सकते हैं।

अगले कुछ वाखों में ऐसी मनोदशा की अभिव्यक्ति देखें -

लल बो लूछ्स छान्डन त् ग्वारन ।
हल म्य को'रमस रस्नि शिति ।
वुछुन ह्यो'तमस ता'ड्य डींठमस बरन ।
म्यति कल गनेयम ज़ि ज़ोगमस तती ।। ४७।।

क-७४। ग्रि-४८। चि-३६। पा-३२।

लल बो	लूछ्स	छान्डन	त्	ग्वारन
लल मैं	थक गई	ढूंडते (उसे)	और	तलाश करते
हल् म्य	क्रिमस	रस्नि	शिति	
यत्न मैने	किए	जीह्वा से पुकारा	सेंकडों बार	
वुछुन	ह्यो'तमस	ता'ड्य	डींठमस	बरन
देखना	चाहा तो	ताले	लगे देखे	दरवाज़ों पर
म्यति	कल	गनेयम ज़ि	ज़ोगमस	तती
मेरी भी	लगन	तीव्र हुई और	सतर्क(ताक में)	वहीं पर बैठी

अर्थात, मैं लल उसे ढूंढते ढूंढते थक गई किंतु मैं ने भी गहन यत्न के लिए कमर कस ली। उसका नाम जीह्वा से सैंकडों बार पुकारा। जब उसे देखने की बारी आई तो पाया कि उसके दरवाज़ों में ताले लगे थे। मेरी भी जिज्ञासा तीव्र हो गई और दर्शन के लिए ताक में बैठकर मैंने वहीं दरवाज़े पर डेरा जमा लिया।

(ग्रि-४८ रस्-निशि ति), शुद्ध रूप-'रस्नि शिति' अर्थात जीह्वा से सैंकडों बार।

विशेष, १-अभ्यास में साधक जब आत्मा से मिलने के निकट पहुंचता है तो यह मिलन आसान नहीं होता है। किंतु बार बार एक ही स्थान पर टिके रहना पडता है (केवल प्रतीक्षा, प्रतीक्षा, जबतक अनुग्रह न हो जाए) कि कब मिलन हो क्योंकि इस मिलन को सहन करना आसान नहीं। अत्यंत जिज्ञासा में रहना पडता है।

अकुय ओमकार युस नाबि दरे ।
कुम्बय ब्रहमांडस सुम गरे ।
अख सुय मंथ्र च़्यतस करे ।
तस सास मंथ्र क्याह करे ॥ ४८॥

क-७३। चि-१। ग्रि-३४। शि-६६। पा-२८।

अकुय	ओमकार	युस	नाबि	दरे
एक ही	ओमकार	जो	नाभि में	धारण (स्थापित) करे गा
कुम्बय	ब्रहमांडस	सुम	गरे	
कुंभक द्वारा	ब्रह्मांड के साथ	पुल	बनाएगा	(ब्रह्मांड से मिलाए)
अख	सुय	मंथ्र	च़्यतस	करे
एक	वही	मंत्र	स्मरन	करेगा
तस	सास	मंथ्र	क्याह	करे
उसे	हज़ार	मंत्र	क्या	करेंगें

अर्थात, जो कोई प्राणायाम के पूरक में सांस को कुछ देर रोककर एक ही मंत्र ओमकार का नाभि में धारण करके अर्थात ध्यान करके शनैः शनैः ब्रह्मांड के साथ संयुक्त या सम करेगा और इसका अभ्यास करता रहेगा', ऐसे व्यक्ति को किसी और मंत्र साधना की आवश्यकता नहीं है।

कुंभ - घडा। कुंभक - सांस रोकना -। ओम के बारे में (माण्डोक्योपनिषद १ - द्वितीय अवली श्लोक १५ ईशानादि ९ उपनिषद में कहा गया है; 'ओमित्येतदक्षरमिदम् सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतभवद्निव्यदिति सर्वोमकार एव। यंच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योड कार एव'। अर्थ, 'ओम यह अक्षर सब कुछ है। यह जो कुछ भूत भविष्यत वर्तमाण है उसी की व्याख्या है। इस लिए यह सब ओमकार ही है। इस के सिवा जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु हैं वह भी ओम ही है।

'सम करे' -समान करे। अथवा कुम्भ आकाश को महा आकाश के साथ मिलाए।

ओमकार येलि लयि ओ'नुम ।
वुही कोरुम पनुन पान ।
शिवो'त त्रा'विथ सथ मार्ग रो'टुम ।
त्यलि लल बो वा'चूस प्रकाशस्थान ।। ४६।।

क-६४। ग-२२। शि-७२। ग्रि-८२। बी-६।

ओमकार	यलि	लये	ओ'नुम	
ओमकार	को जब	लय	किया मैंने	
वुही	कोरुम	पनुन	पान	
तपा	लिया मेंने	अपने	आप को	
शिवो'त	त्रा'विथ	सथ मार्ग	रो'टुम	
छः राहा	त्याग कर	सत्मार्ग	अपना लिया	
त्यलि	लल	बो	वा'चूस	प्रकाशस्थान
तब ही	लल	मैं	पहुंच गई	प्रकाशके स्थान पर

अर्थात, जब मैं ने एक ही ओमकार के साथ प्रेम का नाता जोडा और अपने आप को तपाकर इसी में लीन हो गई तो मैं ने छः रास्तों को पार कर सतमार्ग को पा लिया। उसी से मैं लल प्रकाशस्थान अर्थात परमात्मा के निकट पहुंच गई।

विशेष-त्रिक् के आणव उपाय के बाह्य योग में समय और स्थान के आयामों पर ध्यान अभ्यास किया जाता है। वे हैं समय की तीन राहें - वर्ण, मंत्र तथा पद, तथा स्थान के तीन अंग जैसे काल, तत्व तथा भवन (तंत्रसार, ४७)। इन को पार करके आणव समावेश का आस्वादन होता है। आणव उपाय में इन बाह्य अभ्यास के छः रास्तों को षड़-अध्व कहते है-'त्रिक् योग' पृष्ठ११३ 'प्रनसीप्लज़ आफ कश्मीर शैविज़म' - बलजीनथ पंडित। वुही-वुहुन-आग का सुलगना।

ओ'मृय अकुय अछुर पो'रुम ।
सुय हा मालि रो'टुम व्वन्दस मंज़ ।
सुय हा मालि कनि प्यठ गो'रुम तृ चो'रुम ।
आ'सृस सास तृ सां'पनृस स्वन ।। ५०।।

क-१८३। ग-१८।

ओ'मृय	अकुय	अछुर	पो'रुम	
ओम	एक ही	अक्षर	मैंने पढा (साधा)	
सुय हा	मालि	रो'टुम	व्वन्दस	मंज़
वही तो	हे सखा	रखा मैंने	अपने हृदय	में
सुय	हा मालि	कनि	प्यठ गो'रुम	तृ चो'रुम
वही तो	हे सखा	पत्थर (स्लेट)	पर सुंदरता से	लिखती रही
आ'सृस	सास	तृ	सां'पनृस	स्वन
थी मैं तब	भस्म	और	हो गई मैं	सेना

अर्थात, मैंने एक ही अक्षर ओम पढकर उसे अपने हृदय में धारण किया और उसे सुंदरता से स्लेट पर सजाकर लिखती भी रही। ऐसा करने से ही मैं राख या भस्म से सोना बन गई। अर्थात मेरा लक्ष्य पूरा हुआ।

सारांश यह कि केवल ओंकार का नितांत अनुसरन करने से मैं परिपक्व होगई और मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त हुई।

ओमकार शरीर कीवल ज़ोनुम ।
शब्द स्पर्श रूप रस गन्द सूत्य ह्यथ ।
आत्म स्वरूप सु पानय ओसुम ।
परम् तत दोरुम शेरस प्यठ ।। ५१।।

क-२५३। ग-८१।

ओमकार	शरीर	कीवल	ज़ोनुम	
ओमकार	शरीर को	केवल	जाना मैं ने	
शब्द	स्पर्श, रूप	रस, गन्द	सूत्य	ह्यथ
शब्द	स्पर्श, रूप	रस, गन्ध	लेकर	साथ (समेत)
आत्म	स्वरूप	सु	पानय	ओसुम
आत्मा	स्वरूप	वह (ओमकार ही)	स्वयं	था मेरा
परम्	तत	दोरुम	शेरस	प्यठ
परम	तत्व को	मैं ने धारण किया	शीष	पर

अर्थात, प्रकृति के पांच महाभूतों, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी एवं उनकी विशेषताओं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध समेत इन से बने अपने शरीर को मैंने केवल ओमकार रूप ही जान लिया। मैंने जान लिया कि यही ओमकार मेरा आत्मस्वरूप भी है। मैंने इसी परम तत्व या ओमकार को शिरोधार्य अर्थात ब्रह्मांड में धारण किया।

पो'त ज़ूनि व'थिथ मो'त बोलनोवुम ।
दग लल्ना'व्म दय् सं्ज़ि प्रहे ।
ल'ल्य ल'ल्य करान लाल वुज़ुनोवुम ।
मीलिथ तस श्रूच्योम देहे ।। ५२।।

क-८८। ग्रि-१०५। पा-३५। शि-१०५।

पो'त ज़ूनि	व'थिथ	मो'त	बोलनोवुम	
प्रातः काल	जाग कर	मन से नाम	बोलने लगी	
दग	लल्ना'व्म	दय्	सं्ज़ि	प्रहे
पीडा	सह ली	प्रभु	के	प्यार की
ल'ल्य	ल'ल्य	करान	लाल्	वुज़ुनोवुम
मैं (लल)	लल हूं	करते (कहते)	प्रियतम को	जगाया
मीलिथ	तस	श्रूच्योम	देहे	
मिलकर	उस से	पवित्र हुआ मेरा	देह	

अर्थात, मैं प्रातः काल जाग कर मन से नाम-स्मरण करने लगी, तथा प्रभु के प्यार की खातिर पीडा सह ली 'मैं लल हूं' 'मैं लल हूं', ऐसा कहते प्रियतम को जगाया और तब उन से मिलकर (लीन होकर) मेरा सारा देह अर्थात अस्तित्वि शुद्ध तथा पवित्र हो गया।

अंदरी आयस चं़दर्य गारन ।
गारान आयस हियन हिह ।
च़्ये नारान च़्ये नारान ।
च़्ये नारान यिम कम विह ॥ ५३॥

क-१२८। ग-१५। चि-१२। ग्रि-१०६। शि-६५। पा-६४।

अ'न्दरी	आयस	च़'दर्य	गरान
अंतरतः ही	से आई में	चंद्रमा	ढूंडती
गारान	आयस	हियन	हिह
ढूंडती	रही	इन	जैसों को
च़्ये	नारान	च़्ये	नारान
तुम ही	नारायण हो	तुम ही	नारायण हो
च़्ये	नारान	यिम	कम विह
तुम ही	नारायण हो	यह कैसा	बहुरूपिया-पन (है आपका)

इस वाख की तीसरी पंक्ति के स्थान पर सामान्य लोक पाठ इस प्रकार है -

च़्ये	नारान	च़्य	अथ्	दारान
तुम ही	पालक नारायण हो	आप ही	हाथ फैला कर	मांगने वाले हो
च़्ये	मारान	यिम	कम	विह
तुम ही	काल हो	यह	क्या	रूप हैं तेरे

अर्थ, मैंने अपने गहन अभ्यास से सहस्रार में चंद्रमा (शिव) को देखा और इसके समान का जोडा तलाश करने लगी, किंतु नही मिला। अपितु आप ही को सर्वत्र पाया। फिर कहने लगी कि हे परमात्मा ! आप ही सर्वत्र व्याप्त हो फिर आपकी यह उत्पत्ति, पालन और संहार का नाटक क्यों है। यह सब कैसा व्यवहार है।

अंदर आ'सिथ न्यबर छ़ोंडुम ।
पवनन रगन क'रनम सथ ।
ध्यान् किन्य दय ज़गि कीवल ज़ोनुम ।
रंग गव संगस मीलिथ क्यथ ।। ५४।।

क-१५३। चि-१४। शि-१६१।

अंदर	आ'सिथ	न्यबर	छ़ोंडुम	
अंदर	होकर	बाहर	ढूंडा मैंने (उसे)	
पवनन	रगन	क'रनम	सथ	
प्राणायाम से	नाडियों में	प्रदान हुई	दृढता (विश्वास	की)
ध्यान् किन्य	दय	ज़गि	कीवल	ज़ोनुम
ध्यान द्वारा	प्रभु	जगमें	केवल सर्वमय है	जान लिया
रंग	गव	संगस	मीलिथ	क्यथ
रंग	हुआ	साथ	मिल	उसके

अर्थात, मेरे अंदर मौजूद होकर मैं ने उसे (शिव को) बाहर ढूंढा। फिर प्राणायाम द्वारा कुंडिलिनि जाग गई और मैं आत्मविश्वस्त होगई। ध्यान द्वारा सारे जगत को प्रभू रूप ही जान लिया। इस कारण मैं भी प्रभू के रंग में ही रंग गई, अर्थात उनके साथ एक हो गई।

गायत्रेय अज़पा छ्ल् अकि ता'जिम ।
सूहम सतचीं क'रमस थफ ।
अहमस लो'त पा'ठ्य ज़ठ्र्य वा'जिम ।
ग्वर् कथ पा'जिम चा'जिम चख ।। ५५ ।।

क-२४१।

गायत्रेय	अज़पा	छ्ल्	अकि	ता'जिम
गायत्री का	अजपाजप	प्रविधि	एक से	किया पाठ
सूहम	सतची	क'रमस	थफ	
सूहम	की सत्यता से	लिया मैंने	पकड	
अहमस	लो'त	पा'ठ्य	ज़ठ्र्य	वा'जिम
अहं का	धीरे	से	उलझाव	दूर किया
ग्वर्	कथ	पा'जिम	चा'जिम	चख
गुरु	शब्द का	पालन करके	सह लिया	क्रोध को

अर्थात, ललेश्वरी कहती हैं कि मैंने गायत्री का अजपाजाप पाठ एक विशेष विधि से सोहम शब्द द्वारा किया। अहंकार को शनैः शनैः समाप्त किया तथा गुरु की आज्ञा का पालन कर क्रोध को सह लिया।

'चा'जिम चख' का अर्थ है क्रोध को सहन किया। तो अर्थ बनता है कि कभी गुरु ने ललेश्वरी पर क्रोध किया होगा उसको सहन किया। 'च'जिम' (क नोट.२) शब्द को लेकर अर्थ बनता है कि क्रोध समाप्त होगया। किंतु वज़न के अनुसार चा'जम ठीक है।

सोहमसो गायत्री छंद के २४ वर्णों में सम्मिलित है। सोहमसो का जाप ही गायत्री छंद का अजपाजप पाठ है।

ओर् ति पानय योर् ति पानय ।
पानय पानस छुन् मेलन ।
प्रथम अच़्यस न् मूलय दा'नी ।
सुय हा मालि च़्य आशच़र ज़ान ।। ५६ ।।

क-१८४। ग-३३। चि-१६।

ओर्	ति	पानय	योर्	ति पानय
उधर से	भी	स्वयं ही	इधर से	भी स्वयं ही
पानय	पानस	छुन्	मेलन	
स्वयं ही	स्वयं से	नहीं	मिलता है	
प्रथम	अच़्यस	न्	मूलय	दा'नी
एक तो	घुस सकता	नहीं	मूल में इस के	एक ज़रा भी
सुय	हा मालि	च़्य	आशच़र	ज़ान
वही	हे प्यारे	तुम	आश्चर्य	जानो

अर्थात, परमात्मा स्वयं ही जीव है और स्वयं ही ईश्वर है। यह आश्चर्य की बात है कि स्वयं ही स्वयं से नहीं मिलता है। यह तो पूर्ण है। इसमें बढाने घटाने (या द्वैत) की कोई भी जगह नहीं है। फिर भी किस तरह दो बन गए हैं। यही तो हैरान करने वाली बात है।

त्रिकशास्त्र के अनुसार परमशिव ही एक से अनेक होकर सृष्टि की रचना करते हैं। इसलिए स्वयं ही जीव तथा स्वयं ही ईश्वर है। (मालिनीविजयवार्तिकाः १-८३ -स्पेसिफिक प्रिंसप्लज़ ऑफ कश्मीर शैविज़म पृष्ठ ११४) 'वह शिव किसी आवर्ण के बिना अपनी वास्तविकता छिपाए है वह आश्चर्यजनक तोर से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में प्रकट है'।

कव् छुख दिवान अनिने बछ् ।
त्रुखय छुख त् अंदर्य अछ़ ।
शिव छुय अ'ती तय कुन मो गछ़ ।
सहज़् कथ् म्यानि क'रितव पछ़ ।। ५७।।

क-५०। शि-१२२।

कव्	छुख	दिवान	अनिने	बछ्
क्यों	है	मारता तू	अंधे की तरह	हाथ
त्रुखय	छुख	त्	अंदर्य	अछ़
समझदार यदि	है तू	फिर	अपने अंदर	घुस जा
शिव	छुय	अ'ती तय	कुन मो	गछ़
शिव तो	है	वहां ही और	कहीं मत	जा
सहज़्	कथ्	म्यानि	क'रितव	पछ़
सरल (अध्यात्मिक)	बातों पर	मेरी	कीजिए	विश्वास

अर्थात, हे मनुष्य! तू अंधे की तरह इधर उधर क्यों हाथ मार रहा है। यदि समझदार हो तो इधर उधर मत भटक। अपने भीतर चला जा और देख शिव वहां ही है। कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं है। मेरे इस सरल तथा सीधे आध्यात्मिक सत्य पर विश्वास कीजिए। भाव यह है कि शिव को पाने के लिए बाहर जाकर ढूंडने की कोई आवश्यकता नहीं है। विश्वास करके जान लेना चाहिए कि वह तो अपने शरीर में ही स्थित है। और अपने अंदर झांककर ही निसंदेह उसे पाया जासकता है।

कंद्यव करख कंदि कंदे ।
कंद्यव करख कंदि व्यलास ।
भूग्य मीठ्य दितिथ यथ कंदे ।
अथ कंदि रोज़ि न् सूर न् त् सास ।। ५८।।

क-३१। चि-६२। शि-१३१।

कंद्यव	करख	कंदि	कंदे
हे शरीर धारी	यदि करेगा	शरीर	शरीर (की बात केवल तू)
कंद्यव	करख	कंदि	व्यलास
रे मनुष्य	करो गे	शरीर द्वारा	विलास
भूग्य	मीठ्य	दितिथ	यथ कंदे
कई भोग	मीठे	दिए तूने	इस शरीर को
अथ कंदि	रोज़ि	न् सूर न्	त् सास
इस शरीर का	शेष रहेगी	न राख न	और (रहेगा) भस्म

अर्थात, हे मनुष्य! यद्यपि तू अपने शरीर के बारे में ही सोच कर इसको पुष्ट करके इसे सुंदर वेशभूषा पहनाए गा अथवा विलास करेगा तथा मीठे भोग खिलाए गा फिर भी इस शरीर का अंत ही होगा और इस की कहीं राख या भस्म भी शेष न रहेगा।

विशेष - यदि विलास के स्थान पर 'व्लास' शब्द है तो अर्थ बनता है- बहु मूल्य वस्त्र-वो'लुत।

सु मन् गारुन मंज़ यथ कंदे ।
यथ कंदि दपान स्वरूप नाव ।
लूभ मूह च़लिय शूब ययिय कंदे ।
येथ्य कंदि तीज़ तय सोर प्रकाश ।। ५६ ।।

क-३२। चि-६३। शि-१३२।

सु	मन्	गारुन	मंज़	यथ	कंदे
उसे	मन से	ढूंढ ले	अंदर	इस	शरीर के
यथ	कंदि	दपान	स्वरूप	नाव	
इसी	शरीर को	कहा जाता है	स्वरूप	नाम	
लूभ	मूह	च़लिय	शूब	यियिय	कंदे
लोभ	मोह	मिटेगा तो	शोभा	पाएगा तेरा	शरीर
ये'थ्य	कंदि	तीज़	तय	सोर	प्रकाश
इसी	शरीर (में है)	तेज	तथा	वास्तविक	प्रकाश

अर्थात, प्रभु को अपने शरीर के अंदर मन से तलाश करो। इसी में वह स्थित है। उसको खोजकर तेरा शरीर धमकेगा और इसी शरीर के कारण तेज तथा सूर्य प्रकाश (वास्तविक प्रकाश) का साक्षात्कार होगा।

भावार्थ - अपने शरीर की महानता देखें - इसी मनुष्य शरीर में ही प्रभु मिल सकता है। शरीर के बिना ऐसा नहीं होसकता है।

'सोर' - सूर्य, सारा, सच्चा, असली।

कंद्यव ग्रह कंद्यव वनवास ।
युथुयय छुख तू त्युथुय आस ।
मनस दा'र रठ सां'पनख सुवास ।
क्याह छुय मलुन सूर तय सास ।। ६०।।

ग-६५। चि-२७।

कंद्यव	ग्रह	कंद्यव	वनवास		
मनुष्य	ग्रहस्थ (में रहे)	मनुष्य	वन में रहे		
युथुयय	छुख	तू	त्युथुय	आस	
जैसा	है तू	तो	वैसा	ही रह	
मनस	दा'र	रठ	सां'पनख	सुवास	
मन में अपने	धैर्य	रखो	हो जाएगा	आत्म वासी	
क्याह	छुय	मलुन	सूर	तय	सास
क्यों	है तुम्हें	मलना	भस्म	और	राख

अर्थात, शरीरधारी घर में रहे या वनवास में, कोई अंतर नहीं है। केवल मन को नियंत्रण में रखने से अपने ही में वास (अपने अंदर ही रहना) होता है। तो फिर राख तथा भस्म मलकर उसे (परमात्मा को) ढूंढने की कोई आवश्यकता नहीं है। अर्थात मन में धैर्य रखकर अपने अंतर में ही वास करके उस प्रभु को पा सकते हो।

कंद्यव गेह त्यज़ि कंद्यव वनवास ।
व्यफुल मन ना रटिथ तॖ वास ।
द्यन रात गंज़रिथ पनुन श्वास ।
युथुय छुख तॖ त्युथुय आस ।। ६१।।

क-१०६। शि-११। पा-७६। ग्रि-५५।

कंद्यव	गेह	त्यज़ि	कंद्यव	वनवास
रे मनुष्य	घर	छोड कर	शरीर (का करो)	वनवास
व्यफुल	मन	ना रटिथ	तॖ	वास
व्यर्थ है	मन को	न पकड कर	फिर	वनवास लेना
द्यन	रात	गंज़रिथ	पनुन	श्वास
दिन	रात	गिनते रहो	अपना	श्वासोश्वास
युथुय	छुख	तॖ	त्युथुय	आस
जो वास्तविक	रूप है तेरा	तो	वही	हो जा (जाएगा)

अर्थात, ललेश्वरी पुनः कहती हैं कि मन को वश में किए बिना मनुष्य घर में रहे या वनवास में कोई अंतर नहीं है। अच्छा है कि दिन रात अपने श्वासों की ओर ध्यान दे या गिनें तो ऐसा करने से मन पर नियंत्रण होगा, फिर अपनी वास्तविकता को पहचाना जा सकता है।

सारांश यह कि जो मनुष्य अपने मन को वश करने में विफल हुआ है उसका वनसास करना व्यर्थ है। इसलिए श्वासोश्वास द्वारा मन को नियंत्रण में लाकर अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होसकता है।

क्वश पोश तेल द्‌ फ ज़ल ना गछ़े ।
सदभाव्‌ ग्वर्‌ कथ युस मनि ह्यये ।
शंभुहस स्वरि नित्य पनने यछ़े ।
सय दपिज़े सहज़्‌ क्रय न ज़्यये ॥ ६२॥

क-६७। शि-१४। ग्रि-४५।

क्वश	पोश	तेल	द्‌ फ	ज़ल	ना	गछ़े
कुशा	फूल	तिल	द्वीप	जल	नहीं	चाहिए
सदभाव्‌	ग्वर्‌	कथ	युस	मनि	ह्यये	
सदभावना से	गुरु	शब्द	जो	मन में	धारण करेगा	
शंभुहस	स्वरि	नित्य	पनने	यछ़े		
शिव का	स्मरण करे	हर समय	अपनी	श्रद्धा से		
सय	दपिज़े	सहज़्‌	क्रय	न	ज़्यये	
वही	कहलाती	सहज़्‌	क्रिया (और)	नहीं	जन्मेगा(पुनः)	

अर्थात, कुशा, फूल, तिल, द्वीप तथा जल का पूजा में प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपितु गुरु की बात को श्रद्धा के साथ मन में धारण कर, तथा श्रद्धा से परमशिव का नित्य स्मरण करना ही सहज क्रिया है। ऐसी क्रिया से पुनर्जन्म नहीं होगा।

नोट -वाख ६७ में कौल ने नोट में कहा है कि ' ग्रियर्सन ने इस वाख का खींच खांच कर अर्थ दिया है' जो तर्कसंगत नहीं है। तथा 'न ज़्यये' शब्द का व्यर्थ में लोप किया है' जो अशुद्ध है क्योंकि दूसरे पद 'मनि ह्यये' तथा चौथे पद 'न ज़्यये' का तोल ठीक है।

सहज क्रिया - जिस में कोई आडंबर न होकर मन से स्वभाविक स्मरण होता रहे।

ललेश्वरी, गीताजी में कहे ' पत्रम पुष्पं फलं तोयं' अर्पण से भी आगे निकल गई हैं।

कायस अन्दर रूदुम अचि़थ ।
न्यायस थ'वनम चो़पा'र्य शाय ।
पाय केंह लो'बुम नो माय छस क'रिथ ।
ज़ायस न् आयस लो'गुम नाव ।। ६३।।

क-२३६। ग-८८।

कायस	अन्दर	रूदुम	अचि़थ
काया के	अंदर	प्रवेश कर के मेरी	बैठा है
न्यायस	थ'वनम	चो़पा'र्य	शाय
विवाद के लिए	रखी मेरे	चारों ओर	जगह
पाय केंह	लो'बुम नो	माय छस	क'रिथ
उपाय कुछ	सूझा नहीं	एकी भाव से हूं (चुपी)	साधे
ज़ायस	न् आयस	लो'गुम	नाव
पैदा होकर	आते ही	लग गया मेरा	नाम

अर्थात, मेरी काया में प्रभु घुस कर बैठे हैं । उसने मेरे चारों ओर संसार का जंजाल खडा किया है। जन्म लेते ही मेरा (संसारी) नाम रखा गया जो मेरा वास्तविक नाम नहीं है। संसार की मान्यता स्वीकारने के सिवा मेरे पास कोई और रास्ता भी नहीं है। इसी लिए मैं लाचार, एकाग्र होकर चुपी साधे हूं।

भावार्थ - प्रत्येक पंचभूत शरीर के अंदर प्रभु बैठे हैं और पैदा होते ही काया का नाम भी रखा जाता है। इस से शरीर ही सच लगता है और अंदर बैठा प्रभु गौण हो जाता है। अपितु हमारा सारा कार्य उसी की शक्ति से संपन्न हो रहा है। फिर भी हम इस तथ्य को भूल कर शरीर को ही ' मैं और मेरा ' मानते जाते हैं।

ग्वरस प्र्छोम सासि लटे ।
यस न् केंह वनन तस क्या नाव ।
प्र्छ़न प्र्छ़न थ'च्स त् लूस्स ।
केंहनस निशे क्याहतान्य द्राव ।। ६४।।

क-२४। पा-२६। ग-२। शि-११७।

ग्वरस	प्र्छ़ाम	सासि	लटे	
गुरु से	पूछा	सहस्त्र	बार	
यस न्	केंह	वनन	तस क्या	नाव
जिसको नहीं	कुछ	कहते	उसका क्या है	नाम
प्र्छ़न	प्र्छ़न	थ'च्स	त्	लूस्स
पूछते	पूछते	थक गई में	और	टूट गई
केंहनस	निशे	क्याहताम	द्राव	
इस 'कुछनहीं'	में से ही	कुछ (किंतु)	निकला ही	

अर्थात, ललेश्वरी ने अनाम अवस्था के बारे में अपने गुरु से प्रश्न किया कि हे प्रभु! जिसका नाम ही नहीं उसका कुछ नाम तो कहिए। कहती हैं कि ऐसा पूछते पूछते वह थक गई किंतु उनके गुरु मौन ही रहे अंत में तब उन (गुरु) की खामोशी से ही उस 'कुछ नहीं' (अनाम पद) को मैं समझ गई।

भाव यह है कि अनाम पद को समझा जा सकता है न कि समझाया जा सकता है।

ज़न्म प्रा'विथ कर्म सोवुम ।
धर्म पोलुम सो'य छम सथ ।
न्यत्रन अन्दर प्रेयम दोरुम ।
चोरुम त् मोनुम यिहोय अख ।। ६५।।

क-२५४।

ज़न्म	प्रा'विथ	कर्म	सोवुम
जन्म	लेकर	कर्म को	सुलाया मैं ने (लिप्त नहीं हुई)
धर्म	पोलुम	सो'य	छम सथ
धर्म	पर अडिग रही	उसी का	है मुझे (अपितु) सहारा
न्यत्रन	अन्दर	प्रेयम	दोरुम
नेत्रों के	अंदर	प्रेम	धारण किया में ने
चोरुम	त्	मोनुम	यिहोय अख
छांटा मैंने	फिर	माना	यही एक (प्रेमका साधन)

अर्थात, जन्म लेकर कर्मों के बंधन में नहीं फंसी मैं, किंतु स्वधर्म पर अडिग रही। वही तो परिपूर्ण सहारा है तथा उसी का तो विश्वास है। अपने नेत्रों को मैंने प्रेम से भर दिया और चुन कर केवल प्रेम को ही साधन मान कर चली।

कर्म का सोना - यहां ललेश्वरी जी का अकर्तृ भाव अर्थ है।

ज़न्म प्रा'विथ व्य'बव ना छ़ोंडुम ।
लूबन बूगन ब'रूम न प्रय ।
सो'मूय आहार स्यठा ज़ोनुम ।
च़ोलुम द्वःख दाद पोलुम दय ।। ६६ ।।

क-२५। शि-१४०। पा-११।

ज़न्म	प्रा'विथ	व्य'बव	ना	छ़ोंडुम
जन्म	पाकर	ऐश्वर्य भोग	नहीं	ढूंढा
लूभन	भूगन	ब'रूम	न	प्रय
लूभ तथा	भोगों के प्रति	दिखाई	नहीं	रुचि
सो'मूय	आहार	स्यठा	ज़ोनुम	
स्म	आहार	पर्याप्त	समझा मैंने	
च़ोलुम	द्वःख	दाद	पोलुम	दय
सहन किया मैंने	दुख (एवं)	दर्द (को और)	अपनाया	प्रभु को

अर्थात, संसार में जन्म लेकर मैंने ऐश्वर्य का अनुगमन नहीं किया। भोगों तथा लोभ को तुच्छ समझा। सम आहार ही पर्याप्त मान लिया तथा दुःख दर्द को सहन किया एवं प्रभु के नाम का ही सहारा लेती रही।

पारिमू-११ ने 'द्वख दाद' के स्थान पर 'द्वख वाव' लिखा है, अर्थात कठिनाइयों का सामना करना। किंतु दुख के साथ 'दाद' अर्थात दर्द ही लगता है 'वाव' शब्द नहीं।

चल् च्यता व्वंदस भयि मो बर ।
चोन चिन्थ करान पान् अनाद ।
च्यह कव् ज़न्न्य क्ष्वद हरि, कर ।
कीवल तसुंदुय तारुक नाद ।। ६७।।

क-२६। पा-२२। चि-४३। ग्रि-७२। शि-१०१।

चल्	च्यता	व्वंदस	भयि	मो बर
अरे चंचल	चित	अपने अंदर	भय	मत रख
चोन	चिन्थ	करान	पान्	अनाद
तेरी	चिंता	कर रहा है	स्वयं	अनादि (प्रभु)
च्यह	कव्	ज़न्न्य	क्ष्वद	हरि
तेरी	कैसे	जन्मों की	भूख	मिटे गी
कर	कीवल	तसुंदुय	तारुक	नाद
करो	केवल	उसी के द्वारा	तारने की	पुकार

अर्थात, ललेश्वरी अपने चंचल चित्त से कहती हैं - अरे चंचल चित्त ! अपने अंदर कोई भय मत रख ।तेरी चिंता तो स्वयं अनाद (जिस का आदि ही न हो, अर्थात परमीश्वर) रख रहा है। तेरी जन्मों की (पार जाने की) भूख कैसे मिटेगी। केवल उसी के द्वारा तार देने की पुकार कर। अर्थात उसी प्रभु को ही पुकार वही तुझे भवसागर से पार करे गा।

'तार' - नदी से पार जाने का विशिष्ठ स्थान।

त्यमब्र प्ययस कव् नो चा'ज्न ।
मस रस कव् ओहना'जन गोस ।
शान्तन ह्ंज़ क्रय तुलमुल वा'ज्न ।
अन्दरिम गाह ये'लि न्यबर प्योस ।। ६८।।

क-१८८। पा-८६।

त्यमब्र	प्ययस	कव्	नो	चा'ज्न
चिंगारी (जब)	पडी	क्यों	नहीं	सहन की उसने
मस	रस	कव्	ओहना'जन	गोस
मस्ती का	रस	क्यों	अवांछित राहों	में गया (व्यर्थ)
शान्तन	ह्ंज़	क्रय	तुलमुल	वाज्न
शांति पाने	की	क्रिया	तुलमुल	पहुंचाई (अर्पण की) उसने
अन्दरिम	गाह	ये'लि	न्यबर	प्योस
अंदर का	प्रकाश	जब	बाहर	फूट पडा उसका

अर्थात, जब अपने अंतर में स्वप्रकाश का भास हो गया तुझे तो ऐसी मसती को सहन क्यों नहीं किया तथा इस का आनंद रस क्यों अवांछित राह में व्यर्थ चला गया। फिर शांति पाने की दूसरी क्रियायें करता रहा। जब अंतरप्रकाश (बाहर) प्रस्फुटित हुआ तो शांति पाने की दूसरी क्रियाएं तुलमुल पहुंचा दीं (त्याज्य हो गईं)।

भावार्थ, प्रकाश का भास जब हो जाए तो गंभीर होकर शांति पाने की दूसरी क्रियाएं शक्ति के स्रोत में लय करनी चाहिए अर्थात त्याग देनी चाहिए नहीं तो भटकने का भय रहता है।

दीह्चि लरे दारि बर त्रो'परिम ।
प्राण् चूर रो'टुम त् द्युतमस दम ।
हृदयिचि कूठरि अंदर गों'डुम ।
ओम् के चोबुक् तुलमस बम ।। ६६।।

क-१४१। ग-७। शि-२४। ग्रि-१०१। पा-३१।

दीह्चि	लरे	दारि बर	त्रो'परिम
शरीर रूपी	मकान के	दरवाज़े तथा खिडकियां	मैंने बंद की
प्राण् चूर	रो'टुम	त् द्युतमस	दम
प्राणों के चोर (मन)	को पकडा मैंने	और दिया उसका	दम घोंट
हृदयिचि	कूठरि	अंदर	गों'डुम
हृदय की	कोठरी के	अंदर	उसे बांधा मैंने
ओम् के	चोबुक्	तुलमस	बम
ओम के	चाबुक से	ताबड तोड (उसे)	पीटती गई

अर्थात, ललेश्वरी कहतीं है कि 'मैंने अभ्यास के समय शरीर रूपी घर के दरवाज़े तथा खिडकियां (नव द्वार) बंद किए और प्राण चोर अर्थात मन का दम घोट दिया (सांस को रोककर) तथा हृदय की कोठरी में बंद करके ओम शब्द रूपी चाबुक से उसे पीटा और बार बार ओमकार का उच्चारण कराया'।

भावार्थ - नवद्वार को बंद करके तेज़ गति से मन में ओम का उच्चारण करती रही ताकि मन बटके नहीं और एकाग्र हो जाए।

परुन स्वलब त् पालुन द्वरलभ ।
सहज़ गारुन सिखिम त् क्रूठ ।
अभ्यास्‌कि गनिरय शास्त्र मो'ठुम ।
च़ीतन आनंद निश्चय गोम ।। ७०।।

क-४६। श्रि-१२७। पा-६०।

परुन	स्वलब	त्	पालुन	दुर्लभ
पढना (तो)	सुलब (है)	और	पालना	दुलर्भ
सहज़	गारुन	सिखिम	त्	क्रूठ
स्वात्मा को	खोजना	सूक्षम	तथा	कठिन है
अभ्यास्‌कि	गनिरय	शास्त्र	मो'ठुम	
अभ्यास की	गहनता से	शास्त्र भी	भूल गई (जब)	
च़ीतन	आनंद	निश्चय	गोम	
चैतन्य	आनंद का	अनुभव	हो गय मुझे	

अर्थात, पढना तो आसान है किंतु इसका पालन करना दुलर्भ है। स्वात्मा अथवा परम शिव को खोजना अति सूक्षम तथा कठिन है। मैं अभ्यास की गहनता से शास्त्र भी भूल गई, तो मुझे चैतन्य आनंद निश्चित अर्थात पूर्ण रूप से अनुभव हो गया। अर्थात गहन अभ्यास से ही लक्ष्य प्राप्ति होती है।

पवन त् प्राण सो'म्य ड'यूंठुम ।
मीलिथ रूदुम शेर खोर ताम ।
दीह यलि मो'ठुम अद् क्या मो'तुम ।
न कुनि पवन त् न कुनि प्राण ।। ७१।।

क-२२८। ग-७५।

पवन	त्	प्राण	सो'म्य	ड्यूंठुम
पवन	और	प्राण	को समान	पाया
मीलिथ	रूदुम	शेर	खोर	ताम
मिल कर	रहा मेरे	ब्रह्मांड (से)	पैरों	तक
दीह	यलि	मो'ठुम	अद् क्या	मो'तुम
दीह	को जब	मैं भूली	फिर क्या	शेष रहा
न' कुनि	पवन	त् न	कुनि	प्राण
न कहीं (रहा)	पवन	और न	(रहा) कहीं	प्राण

अर्थात, अपने प्राण पवन, सर से पैर तक सारे शरीर में समान रूप से मिलकर रहे। तब तक तो देह का विचार (अस्तित्व) रहा। किंतु जब शरीर को ही भूल गई फिर न तो सांस लेने का ध्यान रहा और न ही प्राण शक्ति का ज्ञान रहा।

विषेश - अभ्यासी साधक जानते हैं कि दो सांसों के मध्य में गहरे ध्यान में ऐसी स्थिति आती है जब सांस शून्य गति पर आता है। देह अध्यास को मिटाने का वर्णन इस वाख में हैं।

प्राणस सूतिय लय यलि क'र्म ।
ध्यानस था'वनम न् रोज़नस शाय।
कायस अंदर सोरुय वुछुम ।
पायस पोवुम क'डमस ग्राय ।। ७२।।

क-२४४। ग-७६।

प्राणस	सूतिय	लय यलि	क'र्म
प्राणों के	साथ	लय जब	की मैंने
ध्यानस	था'वनम	न् रोज़नस	शाय
ध्यान को	रखी मेरी	न रहने की	जगह
कायस	अंदर	सोरुय	वुछुम
काया के	अंदर	सब कुछ	देखा
पायस	पोवुम	क'डमस	ग्राय
होश में	लाया इसे (और)	की इसकी (मन की)	धुलाई

अर्थात, अपने मन को प्राणों के साथ इतना लीन किया कि ध्यान के लिए स्थान ही नहीं रहा (गहन अभ्यास के पश्चात)। मैंने सारा कुछ अपने शरीर के अंदर ही देखा। इसी वास्तविकता को समझा कर इसे अर्थात मन को पवित्र किया।

'ध्यान तो मन करता है। जब मन ही प्राणों के साथ लय हो गया तो ध्यान कैसे हो? यह पद मन की शून्यता की ओर इंगित है।'

लय - नितांत लीन होना, साथ में रहना, कश्मीरी में 'हा'ल' आदि होना।

मनस स़ूतिय मनय़ गों'डुम ।
च्य़तस र'ट्म च़्वपा'र्य वग ।
प्रकृ'च़ स़ूतिय प्वरुश नो वो'लुम ।
सऱह म्यह को'रुम ल'बॢम वथ ।। ७३।।

क-२३४। ग-८४। शि-१००।

मनस	स़ूतिय	मनय़	गों'डुम
मन	से ही	मन को	बांधा मैं ने
च्य़तस	र'ट्म	च़्वपा'र्य	वग
चित्त की	थाम ली	चारों ओर से	लगाम
प्रकृ'च़	स़ूतिय	प्वरुश	नो वो'लुम
प्रकृति	से	पुरुष को	नहीं ढका मैंने
सऱह	म्यह	को'रुम	ल'बॢम वथ
आजमा के	मैं ने	वश किया	पालिया रास्ता

अर्थात, मैंने मन से मन को बांध लिया। प्रकृति से पुरुष को अलग रखा। चित्त को चारों ओर से लगाम लगाई अर्थात थाम लिया। ऐसा अनुभव करके मैंने गंतव्य का रास्ता पा लिया।

यहां पर पुरुष आत्मा से और प्रकृति शरीर से अर्थ है।

यिमय श्यह च़्य तिमय श्यह म्य ।
श्याम गला ! तो'य व्यन त्वतस ।
युहुय ब्यन अभेदा च़्य त् म्य ।
च़्हह श्यन स्वा'मी बो शयि मुश़्स ।। ७४।।

क-१२६। ग-५६। चि-५४। ग्रि-१३। शि-८८।

यिमय श्यह	च़्य	तिमय	श्यह	म्य
जो छः	तेरे पास	वही	छः	मेरे पास
श्याम गला	तो'य	व्यन	त्वतस	
हे नील कंठ	आप	अलग हैं	तत्वों से	
युहुय	ब्यन	अभेदा	च़्य त्	म्य
यही	भेद	हे अभेद	आप में और	मुझ में
च़्हह	शन	स्वा'मी	बो शयि	मुश़्स
आप हो	छः के	स्वामी	मैं छः को	भूल गई

अर्थात हे प्रभु! जो छः आप के पास हैं वही छः मेरे पास हैं, किंतु तुम इन तत्वों से अलग हो, हे अभेद! यही भिन्नता आप और मुझ में है कि आप छः के स्वामी हो और मैं इन को भूल कर इनके आधीन हुई हूं। कारण यह कि मैं और आप समान होकर भी मैं तो इन को भूल गई हूं और आप नित्य इन को भूलते नहीं (भेदाभेद स्थिति)।

व्याख्या - आप की छः शक्तियां जैसे १-माया शक्ति २- सर्वकर्तृत्व ३- सर्वज्ञत्व ४ पूर्णत्व ५-नित्यत्व ६-व्यापकत्व हैं। (सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधाः स्वतंत्रता नित्यमलुप्तशक्तिः। अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षाडाहुरांगानि महेश्वरस्य)। अभेद अर्थात आप मेरे से भिन्न नहीं हैं किंतु मैं आप का ही बिंब हूं अपितु द्वैत में आने से मैं सीमाओं अर्थात मर्यादा से बंध गई हूँ। मेरी छः कुंचिका (सीमाएं) हैं (षृट्कुञ्चिका—limitation of creativity, knowledge, attachment , time, place, individuality 'Kashmir Shavism The secret supreme' by Swami Laxman ji, page 3) छः कुंचिका- कश्मीर शिवमत के ३६ तत्वों में छटा समूह।

ख्वसय शेल पीठस तू पटस ।
स्वय शेल छय प्रथिवून दीश ।
स्वय शेल शूबवूनिस ग्रटस ।
शिव छुय क्रूठ तय चेन व्यपदीशं ।। ७५ ।।

क-७८। चि-६८। ग्रि-५२। शि-५३।

ख्वसय	शेल	पीठस	तू	पटस
जो	पत्थर	बैठने के लिए	तथा	पथ (सडक) पर है
स्वय	शेल	छय	प्रथिवून	दीश
वही	पत्थर	है	हर मंडल में	देश (के)
स्वय	शेल	शूबवूनिस	ग्रटस	
वही	शिला	सुंदर	चक्की में लगी है	
शिव	छुय	क्रूठ तय	चेन	व्यपदीश
शिव (के पाना)	है	दुष्कर तो	ज्ञात कर (यह)	उपदेश

अर्थात, जिस प्रकार पत्थर सडक, सुंदर चक्की आदि के रूप में हर दिशा में दिखाई देता है उसी प्रकार शिव हर पदार्थ में व्याप्त है। यही उपदेश लेकर यर्थाथ को जान ले क्योंकि इस बात को समझे बिना शिव को पाना कठिन है। ऐसा समझे बिना ज़रा सी देर में मन में भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

रव मत् थलि थलि ता'प्यतन ।
ता'प्यतन व्वतम व्वतम दीश ।
वरुन मत् लूक् गर् अ'च़्यतन ।
शिव छुय क्रूठ तय चे़न व्वपदीश ।।७६।।

क-७६। चि-८५। ग्रि-५३। शि-५४।

रव	मत्	थलि	थलि	ता'प्यतन
सूर्य	ना करे	हर	स्थान को	रोशन
ता'प्यतन	व्वतम	व्वतम	दीश	
तापे (केवल)	उत्तम	उत्तम	देशों को ही	
वरुन	मत्	लूक्	गर्	अ'च़्यतन
पानी	भले ना ही	लोगों के	घरों में	घुसे
शिव छुय	क्रूठ	तय	चे़न	व्वपदीश
शिव है	दुष्कर (पाना)	और	जान ले (यह)	उपदेश

अर्थात, सूर्य हर स्थान को भले न तापे। केवल उत्तम स्थानों पर ही अपनी आभा बिखेर दे। भले ही पानी भी लोगों के घरों में न जाए। यह दोनों बातें संभव है। किंतु (शिव में ऐसी बात नहीं) शिव इतना व्याप्त है कि उस को पहचानना इतना सरल नहीं है। इस लिए इस उपदेश को समझ ले और ग्रहण कर।

यहय मातृ रूप्य पय दिये ।
यहय बा'रिया रूप्य करि व्यशीश ।
यहय माया रूप्य अनति ज़ुव ह्यये ।
शिव छुय क्रूठ तय चे़न व्यपदीश ।। ७७।।

क-८१। चि-६७। ग्रि-५४। शि-५०।

यहय	मातृ	रूप्य	पय	दिये
यही (नारी)	माता	रूप होकर	जीवन	देती है
यहय	बा'रिया	रूप्य	करि	व्यशीश
यही	पत्नि	रूप होकर	कराती है	विशेष विलास
यहय	माया	रूप्य	अनति	ज़ुव ह्यये
यही (नारी)	माया	रूप से	अंत में	प्राण लेती है
शिव	छुय	क्रूठ तय	चे़न	व्यपदीश
शिव (लीली) को	है (समझना)	कठिन तो	समझो यही	उपदेश

अर्थात, यही नारी मां बनकर बालक को जन्म देकर पालती है, पत्नि रूप में सुख देती है और अंत में माया अर्थात मृत्यु (मृत्यु भी स्त्रीलिंग है) रूप होकर मनुष्य का प्राण हर लेती है। अर्थात, जिस प्रकार (शक्ति रूप) नारी के कई रूप हैं, इसी प्रकार शिव भी संसार की उत्पत्ति करता है, पालन तथा नाश करता है। यह सच्चाई मानकर उपदेश को समझ लो कि शिव ही भिन्न रूपों में यह सारी लीला कर रहे हैं। नहीं तो शिव की लीला को समझना कठिन है।

भावार्थ - शिव ही हर जगह भिन्न रूप धारण करके संसार में लीला कर रहे हैं। इसी सत्य को समझ लेना ही उपदेश है।

'पय' - रस, मां के पेट में जो रस पदार्थ भ्रूण को मिलता है, तथा मां बच्चे को जो दूध पिलाती है। पय - जो रस पेड पौधों में जीवन बन कर चलता है।

ज़ानृहा ना'ड्य दल मनृ र'ठिथ ।
च़'ठिथ व'टिथ क'टिथ क्लेश ।
ज़ानृहा अदृ असतृ रसायन ग'टिथ ।
शिव छुय क्रूठ तय च़ेन व्यपदीश ।।७८।।

क-८०। ग्रि-८०। शि-७६। पा-२६।

ज़ानृहा	ना'ड्य	दल	मनृ	र'ठिथ
जान सकती	नाडियों (के)	समूह का	मन से	नियंत्रन
च़'ठिथ	व'टिथ	क'टिथ	कलीश	
काटकर (परदे)	इकट्ठा कर	समाप्त कर	क्लेश	
ज़ानृहा	अदृ	असतृ	रसायन	ग'टिथ
मैं जान सकती थी	तब	धीरे धीरे	रसायन को	घोटना (पीना)
शिव	छुय	क्रूठ	तय च़ेन	व्यपदीश
शिव प्राप्ति	है	कठिन	तो मनन कर	यह उपदेश

अर्थात, मैं नाडियों के दल (इडा, सुषमना तथा पिंगला) को मन द्वारा पकड सकती या काबू में ला सकती और इस से सर्व क्लेशों को समेटकर काट कर कम या समाप्त कर सकती। तब ही मैं इस (आत्मज्ञान) रसायन को धीरे धीरे तैयार करके पीना जान सकती थी। इसलिए इसी उपदेश का मनन कर नहीं तो शिव को पाना कठिन है।

अपने को पाने की बात कितनी सरल लगती है, किंतु अपने को पाने की प्रक्रिया कितनी कठिन है। रसायन - सहस्रार में पाया जाने वाला अमृत।

ज़ननि ज़ायायि र्‌त्य ता'य कृती ।
क'रिथ व्वदरस बहु कलीश ।
फीरिथ द्वार बज़नि वा'त्य त'ती ।
शिव छुय क्रूठ तय चे़न व्वपदीश ।। ७६ ।।

क-७७। चि-३२। ग्रि-५१। शि-८०।

ज़ननि	ज़ायायि	र्‌त्य	ता'य	कृती
मां से	पैदा हुए थे	अच्छे	और	भले
क'रिथ	व्वदरस	बहु	क्लेश	
करके	उदर में सहन	बहुत	पीडा	
फीरिथ	द्वार	बज़नि	वा'त्य	त'ती
पुनः वापस	द्वार को (से)	भरने (निकलने)	पहुंचे	वहीं
शिव	छुय	क्रूठ तय	चे़न	व्वपदीश
शिवत्व को पाना	है	कठिन और	समझो	इस उपदेश को

अर्थात, यह आशचर्य की बात है कि मनुष्य मां के पेट को कष्ट देकर स्वयं भी कष्ट सहकर अच्छा भला जन्मा था और (संसारी वैभव में फंसकर) पुनः उदर ही में आकर जन्मने के लिए आता है। यह उपदेश अर्थात, चेतावनी को मानकर यर्थाथ का ज्ञान प्राप्त कर नहीं तो शिवत्व को पाना अति दुष्कर है। अर्थात, जन्म मरण चक्र से नहीं छूटेगा।

भावार्थ - मनुष्य बार बार जन्म मरण के चक्कर में फंसता है। ऐसा कर्म नहीं करता जिससे इस चक्र से छूट सके। इस से छूटने के लिए बताए उपदेश द्वारा शिव का सानिध्य प्राप्त करना है। नहीं तो शिवत्व को पाना अति दुष्कर है।

यस न् कें्ह कान तय छो'नुय यस तरुय ।
सु कुस शूरवीर ख्वदस नेरे ।
अं'दरी नय गलि तस वेहनुय ब्योलुय ।
शैय नय आसि तय क्रय कति व्यपे ।। ८०।।

बी-७१/२ ।

यस	न् कें्ह	कान तय	छो'नुय	यस	तरुय
जिस के	नहीं कुछ	तीर और	खाली है	जिसका	तरकश
सु	कुस	शूरवीर	ख्वदस	नेरे	
वह (ऐसा)	कौन	शूरवीर	युद्ध करने	निकले गा	
अं'दरी	नय	गलि	तस	वेहनुय	ब्योलुय
अंदर से	नहीं	मिटेगा	उसके	विष का	बीज
शैय	नय	आसि तय	क्रय	कति	व्यपे
लक्ष्य	न्हीं	होगा तो	क्रिया (का फल)	कहां	सार्थक होगा

अर्थात, जिस के पास तीर नहीं है और तरकश भी खाली है वह योद्धा क्या युद्ध करेगा। उसके पास कोई लक्ष्य नहीं है और मन से विष का बीज भी समाप्त नहीं हुआ हो। उसकी कोई क्रिया भी सार्थक नहीं होगी। सारांश यह कि जिसके मन से द्वैत रूपी विष का अभाव न हुआ वह साधक लक्ष्यहीन होकर निरर्थक व्यापार करता है। लक्ष्य निर्धारण करके, इस लिए पूरी तैयारी तथा दृढ़ता के साथ मन से द्वैतभाव को समाप्त करके एक वीर की तरह आगे बढना श्रेयस्कर है।

येम्य लूभ मनमथ मद चूर मोरुन ।
वत् नाश्य मारिथ त् लोगुन दास ।
तमी सहज़् ईश्वर गोरुन ।
तमिय सोरुय व्योन्दुन स्वास ।। ८१।।

क-३६। ग-१०। ग्रि-४३। चि-४१। पा-८३।

ये'म्य	लूभ	मनमथ	मद	चूर	मोरुन
जिसने	लोभ	काम	अहंकार	चोर को	मारा
वत् ना'श्य	मारिथ	त्	लोगुन	दास	
पथ नाशक को	मारकर	और	बना स्वयं	दास	
त'मी	सहज़्	ईश्वर	गोरुन		
उसी ने	सहज ही	ईश्वर को	ढूंडा		
त'मिय	सोरुय	व्यो'न्दुन	सास		
उसी ने	सब कुछ	माना	राख		

अर्थात, जिस ने रास्ते से भटकाने वाले विषयों अर्थात काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि (पथनाशक चोरों) को वश में करके स्वयं शरणागत हुआ, उसी ने सहज ही ईश्वर को सफलता से ढूंढ लिया। ऐसी स्थिति को प्राप्त करके वह शेष सर्वस्व को राख के बराबर समझता है।

ब्रह्मांड में पहुंचकर वहां के अनुभव का वर्णन अगले वाख में देखें -

ललि ग्वर ब्रह'मांड प्यठ कुन वुछुम ।
शशकल व'छ़्म पादन ताम ।
ज्ञानकि अमृत् प्रक्रथ ब'रम ।
लूभ्य मोरुम अंदवंद ताम ॥ ८२॥

क-१७६। ग-४५।

ललि	ग्वर ब्रह'मांड	प्यठ कुन	वुछुम
लल ने	गुरु को ब्रह्मांड	के ऊपर की ओर	देखा (मैंने)
शशकल	व'छ़्म	पादन	ताम
अमृत	देखा (उतरते)	पांव (उनके)	तक
ज्ञानकि	अमृत्	प्रक्रथ	ब'रम
ज्ञान रूपी	अमृत से	प्रकृति को	मैंने भर लिया
लूभ्य	मोरुम	अंद वंद	ताम
लोभ को	मारा (समाप्त किया)	मैंने अंत	तक (मूल से)

अर्थात, मैंने (लल) अपने ब्रमांड में गुरु को देखा और शशकल का संचार अर्थात इडा नाडी के सिरे तक सहस्रार में पहुंच कर चंद्रमा से अमृत प्राप्त किया जो सारे शरीर में संचारित हो गया। समस्त प्रकृति (शरीर) को ज्ञान रूपी अमृत से भर दिया। आदि से अंत तक लोभ को त्याग कर समाप्त किया।

शशकल-जब एकाग्रता से जाग्रत तथा निद्रा अवस्था के बीच सुरत या विचार सहस्रार में नींद की कौशिका को क्रियाशील करता है तो शरीर आनंद को प्राप्त होता है। इसी प्रकार निरंतर अभ्यास द्वारा जब सुरत या ख्याल एक विंदु पर केंद्रित होकर सहस्रार या मस्तिष्क में आनंद अमृत रिसाने वाली कोशिका को छूता है तो एक तरल पदार्थ रिसकर सारे शरीर की शेष कोशिकाओं तथा स्नायों में सरकन के साथ तत्काल आनंद तथा स्फूर्ति का संचार करता है। संभवतः जागरूक अवस्था में इसी रिसाव के कारण आनंद का अनुभव कराने वाली क्रिया को शशकल कहते हैं। सारांश यह कि जहां साधक और साध्य का मिलाप होता है वहीं शशकल है।

लोल्कि नार् ललि ल्वलि लल्नोवुम ।
मरनय म्वयस त् रूज़्स न् ज़रय ।
रंग् रचि़ह ज़ाच्य क्या न् रंग होवुम ।
बो' दपुन चो़'लुम त् क्याह सनाह करे ।। ८३।।

क-१४६। ग-२७।

लोल्कि'	नार्	ललि	ल्वलि	लल्नोवुम
प्रेम की	आग से	जब	गोदी में	उसे झुलाया मैंने
मरनय	म्वयस त्	रूज़्स	न्	ज़रय
मरने से पहले	मर गई मैं और	रह गई	न (शेष)	ज़रा भी
रंग् रचि़ह	ज़ाच्य	क्या न्	रंग	होवुम
रंगारंग	संसार ने	क्या नहीं	रंग	दिखाए मुझे (किंतु)
बो	दपुन	चो़'लुम त्	क्याह	सनाह करे
' मैं '	बोलना	मिट गया और	(अब) क्या	संसार करेगा

अर्थात, उस प्रीतम को प्रेम पूर्ण मन में झुलायाा तो मैं जीतेजी मर गई अर्थात पूर्ण रूप से मिट गई। रंगारंग संसार ने मुझे अनेक रंग (परिवर्तन) दिखाए थे। जब मेरा ' मैं ' ही मिट गया तो यह संसार अब मेरा क्या बिगाडेगा।

'लोल्कि' पाठ भेद, क - लोलुक नार। ग - लोल्कि नार्-प्रेमाग्नि। दोनों पाठ व्यवहारिक हैं।

वाख स्यद छ़ोह दिथ म्वखस बीठ्‌म ।
स्वखस डींठ्‌म रोज़नस शाय ।
द्वखस अंदर न्यंद्‌र मीठ्‌म ।
ब्वद्ध यलि ज़ीठ्‌म मीठ्‌म कथ ।। ८४।।

क-२५०। ग-८३।

वाख स्यद	छ़ोह	दिथ	म्वखस	बीठ्‌म
वाक सिद्धि	उछल	कर	मुख पर (जीहवा पर)	मेरे आ बैठी
स्वखस	डींठ्‌म	रोज़नस	शाय	
सुख को	मिल गई	रहने को	जगह	
द्वखस	अंदर	न्यंद्‌र	मीठ्‌म	
दुख	में	नींद	मीठी हो गई मेरी	
ब्वद्ध	यलि	ज़ीठ्‌म	मीठ्‌म	कथ
बुद्धि ने	जब	विस्तार पाया	तो मीठी हुई मेरी	वाणी

अर्थात, ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम के कारण वाक्‌सिद्धि मेरे मुख में आकर जीह्‌वा पर स्थित हुई। मैंने अंतर में सुख का अनुभव किया। यहां तक कि मैं दुख में भी आराम से सोगई तथा मेरी बुद्धि का विस्तार होने से वाणी भी मीठी हो गई। अर्थात मीठी वाणी (वाख) बोलने लगी। भाव यह है कि वाक्‌सिद्धि के कारण ललके वाख मीठे हो गए।

स'च़सस न् सातस प'च़सस न् रुमस ।
सुह मस म्य ललि चव पनुनुय वाख ।
अं'दरिम गट्काह र'टिथ त् वोलुम ।
च़टिथ त् द्युतमस त'ती चाख ।। ८५।।

क-६२। ग्रि-१०४। शि-६३।

स'च़सस न्	सातस	प'च़सस	न्	रुमस
सुस्त पडी ना	एक पल भी	पीछा छोडा	न (एक)	क्षण भी
सुह मस	म्य ललि	चव	पनुनुय	वाख
वह मसती रस	मुझ लल ने	पिया	अपना ही	अनुभव
अं'दरिम	गट्काह	र'टिथ त्	वोलुम	
अंदर के	अंधेरे (मन को)	पकड कर	उतारा मैंने	
च़टिथ त्	द्युतमस	त'ती	चाख	
काटकर और	दिया उसे	ततकाल	चीर	

अर्थात, मैं प्रभु की आराधना में थोडी देर के लिए भी मंद नहीं पडी। पल भर भी उसका पीछा नहीं छोडा। अपने ही वाख से मुझ पर मस्ती छा गई। इसी की सहायता से मन के अंदर का अविद्या रूपी काला पर्दा काट कर उतारा और तत्काल ही उसे चीर डाला। इस वाख में सत्य को परखने के लिए मन को नियंत्रित करके अभ्यास में हुए आनंद रस के अनुभव की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है।

मुहावरा - 'च़टिथ वालुन' - भयानक मारपीट करना।

'स'च़' - वृथा प्रयत्न। 'वाख' - वनुन। 'गट्काह'-अविद्या रूपी अंधेरा। ग्रियर्सन ने 'रुम' को बाल का अर्थ दिया जो यहां पर समीचीन नहीं। शिबनजी ने स'च़ को सूच़न अर्थात सूई का अर्थ दिया है जो तर्कसंगत नहीं है।

हा च़्यता कव् छुय लो'गमुत परमस ।
कव गोय अपज़िस पज़्युक ब्रोंथ ।
व्यशि बो'ज़ वश को'रनख पर धर्मस ।
यिन् गछ़न् ज़्यन् मरन् क्रोंत ॥ ८६॥

क-१४। शि-११३। पा-१५।

हा च़्यता	कव्	छुय	लो'गमुत	परमस
अरे चित्त	क्यों	है	लगा तुझे	किसी और का प्रेम रस
कव्	गोय	अपज़िस	पज़्युक	ब्रोंथ
क्यों	हुआ तुझे	झूठ में	सत्य का	भ्रम
व्यशि	बो'ज़	वश	को'रनख	पर धर्मस
विषयासक्त	बुद्धि ने	वश में	किया तुझे	दूसरे धर्म के
यिन्	गछ़न्	ज़्यन्	मरन्	क्रोंत
आने (आवा)	जाने (गमन)	जीने (तथा)	मरने से	दुखी हो रहा है (इसी कारण)

इस वाख के दो अर्थ हैं १. अपने धर्म पर दृढ़ता से टिके रहने के लिऐ ललेश्वरी समाज को चेतावनी के रूप में कहती हैं -

१. रे मन! विषय वासनाओं की तृप्ति के लिए तू दूसरे के धर्म को क्यों अपना रहा है। तुझे झूठ में सत्य का धोखा कैसे हुआ? परधर्म को अपनाकर तुम तो अपने आवागवन को पक्का बना कर दुखी हो रहे हो।

२. दूसरा अर्थ- तेरा धर्म तो आत्मस्वरूप से मिलना है न कि विषय वासनाओं का संग करके तृप्ति हेतु दूसरा धर्म अपनाना। ऐसा करने से तुम जीवन मरण के चक्र में फंस जाओगे।

यही चेतावनी श्रीमदभगवद्गीता में भी दी गई है कि दूसरे के अच्छे धर्म को अपनाने से अपने ही धर्म में मरना श्रेष्ठ है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम। गीताजी (१८.४७)

अर्थात अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है क्योंकि स्वभाव से नियत किए हुए स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता।। तथा:-

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। गीताजी (३.३५)

अर्थात अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

ऐसा लगता है कि सैयिदों के धर्म परिवर्तन कराने के प्रयत्न के संदर्भ में चेतावनी के तोर पर ललेश्वरी ने कश्मीरियों को इस दोहरे अर्थ वाले वाख द्वारा उपदेश दिया है।

गाल गं'ड्यन्यम बो'ल प'ड्यन्यम ।
द'प्यन्यम तिय यस यिह रुव्वे ।
सहज़ कुसमव पूज़ क'र्यन्यम ।
बो'ह अमला'ञ तू कस क्याह म्वचे ।। ८७।।

क-३८। चि-४४। ग्रि-२१। शि-६७। पा-७।

गाल	गं'ड्यन्यम	बोल	प'ड्यन्यम
गालियां	दे कोई मुझे	बोल (स्तुति वचन)	पढे मुझे
द'प्यन्यम	तिय	यस	यिह रुव्वे
कहें	वही	जिस की	जो पसंद हो
सहज़	कुसमव	पूज़	कर्यन्यम
कोई सहज	कुसमों से	मेरी पूजा	करे
बो'ह	अमला'न्य	तू कस क्या	म्वचे
मैं तो हूं	अमलिन	किसी को क्या (ऐसा करके)	संचित होगा

अर्थात, यदि कोई गालियां देकर मेरा अपमान करे, या मीठे बोल से स्तुति करे, जिसे जो भी कुछ कहने की इच्छा हो वैसा ही कहे या कोई सुंदर फूलों से मेरी पूजा करे, मेरे मन में इन बातों से कोई विकार नहीं आता। ऐसा करने वाले के कोष में भी कुछ भी संचित नहीं होता है।

'अमला'न्य' - जिसके हृदय में कोई (वासना, वैर, घ्रणा आदि) मल न हो अर्थात निर्मल मन वाली।

हस् बोल प'ड्यन्यम सासा ।
म्य मनि वासा खीद ना ह्यये ।
बो'ह यिद सहज़ शंकर् ब'ख्च़ आसा ।
मकरिस सासा मल क्या प्यये ।। ८८ ।।

क-३६। शि-१०। चि-३। पा-६। ग्रि-१८।

हस्[1]	बोल	प'ड्यन्यम	सासा
हंसी (मेरी उडाने के लिए)	बोल	सुनाए	सहस्त्र
म्य मनि	वासा	खीद ना	ह्यये
मेरे मनमें	वस	खेद नहीं	होता
बो' यिद	सहज़	शंकर् ब'ख्च़	आसा
मैं यदि	सहज भाव से	शंकर की भक्तिन	हूँ
मकरस सासा[2]	मल	क्या	प्यये
दर्पण भस्म से	मैला	नहीं	होगा

अर्थात, ललेश्री कह रही हैं कि कोई मुझे हंसी मज़ाक के हज़ारों बोल सुनाए। मेरे मन को कोई खेद नहीं होता है। यदि मैं शंकर भक्त हूं तो दर्पण की भांति मेरा मन दुख रूपी भस्म से मैला नहीं होगा।

१. ग्रि - असबो'ल, क - हास, पा - अ'स्, मूल शब्द का रूप कुछ भी हो किंतु अर्थ हंसी करना ही निकलता है। २. सास - अंगारों से उडा हुआ श्वेत भस्म जो चिपक जाता है। 'सूर - राख - जलकर शांत हुई अग्नि का अवशेष को राख कहा जाता है।

च़्य दीव् गरतस त् धरती स्रज़ख ।
च्य़य दीव् दितिथ क्रन्ज़न प्राण ।
च़्य दीव् ठनि रुसतुय वज़ख ।
कुस ज़ानि दीव् चोन परिमाण ।। ८६।।

क-१३२। शि-१४६।

च़्य	दीव्	गरतस त्	धरती	स्रज़ख
आप हे	देव (शिव)	आकाश एवं	धरती के	स्रजन हार हो
च्य़य	दीव्	दितिथ	क्रन्ज़न	प्राण
आपने ही	हे देव	दिए (प्रधान किऐ)	अस्थिपंजरों को	प्राण
च़्य	दीव्	ठनि	रुसतुय	वज़ख
आप ही	हे देव	चोट किए	बिना ही	तालाक्य हो
कुस	ज़ानि	दीव्	चोन	परिमाण
कौन	जाने	हे देव	आपका	परिमाण

अर्थात, हे देव, शिव! आप आकाश धरती के सृजक (स्रष्टा) हो। आप ने अस्थिपंजरों (जीवों के शरीरों) में प्राणों का संचार किया है, आप ही हे प्रभु! चोट किये बिना ही बजते हो। अर्थात आप शब्द रूप ब्रह्म हो, आप का विस्तार कौन जान सकता है?

विशेष - ' च़्य दीव् ठनि रुसतुय वज़ख ' अर्थात, मनुष्य के अंदर जो बिना चोट किए होने वाली सुश्रव्यता है (शब्द ब्रह्म)। ऐसी ध्वनि[1] बादल गरजने, गंगरू, शंख, मुरली आदि से उत्पन होती है ।

१.देखें लेखक द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'जीवनी स्वामी गोविंद कौल' की टिप्पणी। कुलयात शैख में 'दरथ, पज़ख, छांप तथा अंतिम पंक्ति - कुस छुय प्वन्य त कुस छुय पाफ भिन्न हैं। इस कारण ललेश्वरी का ही वाख सिद्ध होता है। तथा ललेश्वरी का भक्त होने के कारण ललवाखों के वर्ग पर अपना श्रुक बना दिया।

मनस ग्राय च़ंज पज़िकुय अन ख्योम ।
तव्कुय बल गोम कर्मस क्रय ।
आगुर वा'तिथ अमरय्थ ज़ल चोम ।
शिव लय मन गोम ब'रमस प्रय ।। ६० ।।

क-२४५।

मनस	ग्राय	च़ंज	पज़िकुय	अन ख्योम
मन का	डोलना	थम गया	सत्य का	अन्न खाया मैंने
तव्कुय	बल	गोम	कर्मस	क्रय
उसी के	बल से	बना मेरा	कर्म	बे माया दाना
आगुर	वा'तिथ	अमरय्थ	ज़ल	चोम
स्रोत पर	पहुंच कर	अमृत	पान	किया मैंने
शिव	लय	मन गोम	ब'रमस	प्रय
शिव में	लय	मन हो गया	किया उससे	प्रेम

अर्थात सत्य का अन्न खाकर मेरे मन की चंचलता समाप्त हो गई और मन की स्थिरता के बल से मेरा कर्म अकर्म बन गया। अर्थात अकर्तृत्व भाव आगया। मैंने स्रोत अर्थात प्रभु के निकट पहुंच कर अमृत पान किया और सघन प्रेम के कारण मेरा मन शिव में लीन हो गया।

क्रय का अर्थ है निर्बीज ।अनाज के वे दाने जिनका अंकुर नहीं निकल सकता है। उदाहरण: गणक (कमप्यूटर) में एक चकरी (सी डी) होती है। जिसमें विशाल तथ्य सामग्री (डाटा) रहती है। इसी प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क की एक कोषिका में हर कर्म का लेखाजोखा एक रसायन के रूप में रहता है। बार बार इसी कर्म का ध्यान रहने से यदि यह स्थाई तोर अंकित हुआ तो समय आने पर अंकुरित होकर तदानुसार अशुभ तथा शुभ फल का विस्तार करता है। इसी को कर्म का अंकुर कहा जाता है। तो 'कर्मस क्रय' का अर्थ भी यही है कि ललेश्वरी की बुद्धि में स्थिरता के कारण कर्म का अंकुर नहीं रहा। जो पुनजर्न्म का कारण बन जाता है।

५ फलागम

फल की प्राप्ति

वाख ६१ से १३८तक

इस अवस्था में ललेश्वरी प्रियतम को प्राप्त करने की आशा को फल में बदल कर आत्म साक्षात्कार की ओर अग्रसर होती हैं। यह परा अवस्था है जहां साधक और साध्य का मिलाप हो जाता है और फिर किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती है। अर्थात साधक ललेश्वरी अपने साध्य शिव के साथ लय हो जाती है। तब साधन भी शेष नहीं रहता है। तीनों परम शिव में लय हो जाते है।

पूरक कुम्भक रेचक को'रुम ।
पवनस त्रा'वूम पे'ठ्य किन्य वथ ।
अनाहतस भस्म को'रुम ।
केंह नो मोतुम स्वय छम कथ ।। ६१।।

क-२३६। ग-७८।

पूरक	कुम्भक	रेचक	को'रुम
पूरक	कुम्भक	रेचक	किया (प्राणायाम) मैंने
पवनस	त्रा'वूम	पे'ठ्य	किन्य वथ
प्राण वायु को	छोडा (ओर) मैंने	ऊपर	की और (दिया) रास्ता
अनाहतस	भस्म	को'रुम	
अनाहत को	भस्म	किया मैंने	
केंह नो	मोतुम	स्वय	छम कथ
कुछ नहीं	शेष बचा	वही	है मेरा वास्तविक वृत्तांत

अर्थात, मैं ने प्राणायाम के पूरक (सांस लेना) कुम्भक (सांस रोकना) रेचक (सांस छोडना) चरणों का अभ्यास किया। प्राण वायु को ऊपर से जाने दिया। अनाहत अर्थात शब्द को भस्म किया (शब्द के पार चली गई) फिर शेष कुछ भी नहीं बचा तथा मेरे लिए वास्तविक सत्य वही है कि अन्नाम में पहुंच गई।

लल बो द्रायस कपसि पोश़्चि स'च़्य ।
का'ड्य त़् दून्य क'रनम य'च़्य लथ ।
त़्यि ये'लि खारिनम ज़ा'विज त़्ये ।
वोव़्र्य वाऩ् ग'यम अला'न्ज़्य लथ ।। ६२।।

ग्रि-१०२। क-१०६। शि-५७।

लल बो	द्रायस	कपसि	पोश़्चि	स'च़्य
लल में	निकली	कपास के	फूल के	कोमल प्रयत्न से
का'ड्य	त़् दून्य	क'रनम	य'च़्य	लथ
बिनोले वाले	तथा धुनये	ने बना दी मेरी	बहुत	दयनीय दशा
त़्यि	ये'लि	खा'रिनम	ज़ा'विज	त़्ये
कातने वाली ने	जब	कात लिए	पतले	धागे
वोव़्र्य वाऩ्	ग'यम	अला'न्ज़्य	लथ	
जुलाहे के करघे पर	होगई	लटकने की	हालत	

अर्थात, ललेश्वरी अपनी अध्यात्मिक यात्रा कपास के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए कहती हैं, मैं कपास के कोमल फूल से डोडा बनी और डोडे में से कपास के रूप में फूटकर निकली। बिनोले वाले तथा धुनये ने मेरी बहुत दयनीय दशा बना दी। कातनें वाली ने मेरे पतले धागे काते। फिर जुलाहे के करघे पर बुने जाने के लिए लटकाई गई। पोश़्चि स'च़्य-फूल से बन गई' च़ांगुन-जिसमें कपास बन्द होता है। आगे देखें-

दो'ब्य ये'लि छा'वनस दो'ब्य कनि प्यठ्य ।
सज़ त् साबन म'छ़नम य'चूय ।
स्च्य य'लि फिरनम हनि हनि का'चूय ।
अद् ललि म्य प्रा'वूम परम् गथ ।। ६३।।

शि-५८। क-१०७। ग्रि-१०३।

दो'ब्य	ये'लि	छा'वनस	दो'ब्य कनि	प्यठ्य
धोबी ने	जब	बार बार पटका मुझे	धोबी पत्थर	पर
सज़ त्	साबन	म'छ़नम	य'चूय	
सज़ तथा	साबुन	मल्ली मुझ पर	अधिक	
स्च्य	य'लि	फिरनम	हनि हनि	का'चूय
दर्ज़ी ने	जब	फेर ली मुझ पर	जगह जगह पर	कैंची
अद् ललि	म्य	प्रा'वूम	परम् गथ	
तब जाकर लल	मैं	प्राप्त होगई मैं	परमगति (को)	

अर्थात, बुनाई के पश्चात धोबी ने घाट पर पटका और खूब साबुन मली। जब मैं सूख गई तो दरज़ी ने जगह जगह मेरे पर कैंची फेरी। तब जाके मैंने परम गति प्राप्त की।

भावार्थ - ललीश्वरी द्वारा कहे यह दो वाख उनके अभ्यासी जीवन की गाथा है जो योग की विभिन अवस्थाओं को दर्शाती है। अर्थात अज्ञानी से स्वात्म भाव में आने तक की तुलना कपास के बीज से लेकर पहनने योग्य वस्त्र बनने तक की है। परम शुद्धि पाकर ही गुरु (दर्ज़ी) मिल जाते हैं। जिस के सानिध्य से ललेश्वरी ने परम अवस्था पा ली।

लल बो चायस स्वमन बाग् बरस ।
वुछुम शिवस शकत्थ मीलिथ तू वाह ।
त'त्य लय क'रूम अमरचथ-सरस ।
ज़िंदय मरस तू म्य करि क्याह ।। ६४।।

क-१३१। चि-६६। ग्रि-६८-पृष्ठ ४६ पर नोव्लज़ पा-४४।

लल बो	चायस	स्वमन	बाग्	बरस
लल मैं	प्रविष्ट हुई	अपने मन के	बाग के	दरवाज़े से
वुछुम	शिवस	शकत्थ	मीलिथ' तू	वाह
देखा	शिव के साथ	शक्ति	मिली है	वाह
त'त्य	लय	क'रूम	अमरचथ	सरस
वहां ही	लीन	होगई मैं	अमृत के	सर में
ज़िंदय	मरस तू	म्य	करि	क्याह
जीवंत	मृत हूं अब	मुझे	करेगा	क्या

अर्थात, जब मैं अपने मन रूपी बाग में घुस गई (लीन हो गई) तो शिवशक्ति को एक ही पाया और वहीं पर आनंद रूपी अमृत पान किया। अब मैं जीवंत मृत हूं, मेरा कोई क्या भिगाड़ सकता है।

१. एक दूसरे में मिले हुए शिव और शक्ति। अर्थात इनका योग एवं 'व्यूग' (देखें लेखक द्वारा प्रकाशित 'व्यूग - ह्यंज़े वनवुन - हियमाल' १४३ पृष्ठ पर सर्वाशापरिपूरक चक्र में शिव शक्ति का अर्धनारीश्वर रूप तथा अंतिम पृष्ठ पर व्यूग का आकार)

ग्वर् कथ हृदयस मंज़ बाग र'ट्म ।
गंग् ज़ल् ना'व्म तन तय मन ।
सदेह ज़ीवन मुक्ति प्रा'व्म ।
यम् भय च़ो'लुम पोलुम अख ।। ६५।।

क-२३१। ग-८०। शि-५।

ग्वर्	कथ	हृदयस	मंज़बाग	र'ट्म
गुरु की	बात (शब्द)	हृदय	बीच	धारण की मैंने
गंग्	ज़ल्	ना'व्म	तन	तय मन
गंगा	जल से	शुद्ध किया मैंने	तन	और मन
सदेह	जीवन	मुक्ति	प्रा'व्म	
देह समेत	जीवन	मुक्ति	प्राप्त की मैंने	
यम्	भय	च़ो'लुम	पोलुम	अख
मृत्यु का	डर	समाप्त हुआ मेरा	अनुयायी बनी	(केवल) एक ही की

अर्थात, मैंने गुरु वाक्य पर पूर्ण विश्वास करके अपने तन मन को शुद्ध भावनायुक्त अर्थात गंगवत निर्मल किया। गुरु वाक्य से तथा एक ही का अनुसरन करने से मृत्यु का डर समाप्त होकर अंततः मैं इसी शरीर समेत जीवन मुक्त हो गई।

जीवन मुक्त- जीतेजी मुक्त होना।

गगनस भूतलस शिव ये'लि ड्यूंठुम ।
रवस ल'ब न् रोज़नस जाय ।
सिरियिके प्रभाव विशमय ज़ोनुम ।
ज़ल गव थलस सूत्य मीलिथ क्याह ।। ६६।।

ग-७६। क-२४७।

गगनस	भूतलस	शिव	ये'लि	ड्यूंठुम
आकाश (और)	पृथ्वी सब	शिव मय	जब	देखा
रवस	ल'ब	न्	रोज़नस	जाय
सूर्य को	मिली	नहीं	रहने को	जगह
सिरियिके	प्रभाव्	विशमय	ज़ोनुम	
सूर्य के	प्रभाव से	विश्व को	जाना	
ज़ल गव	थलस	सूत्य	मीलिथ	क्याह
जल गया	थल के	साथ	मिल	क्या (वाह)

अर्थात, आकाश पृथ्वी को जब शिवमय देखा तब सूर्य गौण हो गया। सूर्य के प्रभाव से ही विश्व को जान गई और जल थल के साथ मिलकर एक हो गया। सार यह कि मन से द्वैत का भाव ही मिट गया।

भावार्थ - लल ने अपनी नाभि में ओम का ध्यान किया। पिंगला नाडी के निचले सिरे पर सूर्य का स्थान है तो उस के प्रभाव से सहस्रार में पहुंच कर उसे शिव का साक्षात्कार हो गया अर्थात नीचे मूलाधार से सहस्रार तक सारा शिवमय हो गया इस कारण अब सूर्य नाडी पर ध्यान की आवश्यकता नहीं रही।

गगन च़्य बूतल च़्य ।
च़्य छुख द्यन पवन त् राथ ।
अर्ग च़ंदन पोश पोन्य च़्य ।
च़्य छुख सोरुय त् ला'गिज़ि क्या ।। ६७ ।।

क-७०। चि-२७। शि-१६। ग्रि-४२। पा-५७।

गगन	च़्य	बूतल	च़्य	
गगन	तुम ही हो	पृथ्वी भी	तुम ही हो	
च़्य छुख	द्यन	पवन	त्	राथ
तुम ही हो	दिन	वायु	तथा	रात
अर्ग	च़ंदन	पोश	पोन्य	च़्य
अर्घ्य	चंदन	फूल	पानी	तू ही है
च़्य	छुख	सोरुय त्	ला'गिज़ि	क्या।
तुम	हो	सब कुछ तो	अर्पण	क्या करें

अर्थात, ललेश्वरीजी कहती हैं कि आकाश, पृथ्वी, वायु, दिन, रात, अर्घ्य, पानी, चंदन, फूल आदि सब आप का ही रूप है तो मैं आपकी पूजा में अपना क्या अर्पण करूं। अर्थात सब जगत उसी प्रभू का ही रूप है। यहां प्रभू की सार्वभौमिकता दर्शाई गई है।

क्रिया कर्म धर्म को'रुम ।
तिर्थन ना'वूम पनून्य काय ।
पापन स्वंबरिथ भस्म कोरुम ।
तति कुस ओस तू यो'त कूम आय ।। ९८।।

क-२३३। ग-८९।

क्रिया	कर्म	धर्म	को'रुम
क्रिया	कर्म (तथा)	धर्म का	पालन किया मैंने
तिर्थन	ना'वूम	पनून्य	काय
तिर्थो में	शुद्ध की	अपनी	काया
पापन	स्वंबरिथ	भस्म	कोरुम
पापों को	समेट कर	भस्म	किया मैंने
तति	कुस ओस	तू यो'त	कूम आय
वहां	कौन था	और यहां	कौन आऐ

अर्थात, मैंने क्रिया, कर्म, धर्म किया तथा तीर्थो में अपनी काया को शुद्ध किया। ऐसा सोच कर अपने पापों को भस्म किया। अर्थात, इन सारी क्रिया कलापों के करते समय भी तीर्थ स्थानों पर भी यही मेरा शरीर था और यहां भी वही शरीर है। अर्थात शरीर शुद्धि या प्राण शुद्धि तो जहां कही भी हो स्वयं ही करनी पडती है।

भावार्थ - जब मन शुद्ध तथा अपने वश में हो तो उपरोक्त मान्यताओं की अनिवार्यता नहीं रहती। अंतिम पंक्ति का अर्थ यह भी है कि प्रभु ही वहां था और यहां भी है और सब उसी का रूप है इस कारण ऐसा जानकर क्रिया कर्म, तिर्थस्नान आदि तो केवल आडंबर ही लगते हैं।

चूह ना ब्वह ना ध्येय ना ध्यान ।
गव पानय सर्व क्रय म'शिथ ।
अन्यव ड्यूंठुख कैंछ़ ना अनवय ।
गय सथ लयि पर प'शिथ ।। ९९।।

क-१३६। चि-३०। शि-२१। ग्रि-५९। पा-४७।

चू	ना ब्वह	ना	ध्येय	ना ध्यान
तुम	नहीं मैं	नहीं	ध्येय	न ध्यान
गव	पानय	सर्व	क्रय	मशिथ
होगई	स्वयं ही	सारी	क्रियाएं	भूल
अन्यव	ड'यूंठुख	कैंछ़	ना	अनवय
अनेत्रों ने	देखा	कुछ	नहीं	समझा (अनुसंधान)
गय	सथ	लयि	पर	प'शिथ
हो गए	सत्पुरुष	लय	परम तत्व में	देखकर इसे

अर्थात, अभ्यास में अत्यंत गहराई में जाकर ललेश्वरी ने जाना कि तू, मैं, ध्यान तथा ध्येय आदि सारी क्रियाएं न रह कर केवल वही परमात्मा शेष रहता है। इस के विपरीत अज्ञानियों ने इस का कोई अनुभव (अनुसंधान) नहीं किया और इस को निरर्थक माना अपितु सज्जनों ने ही इस परा अवस्था को देखा या अनुभव किया और उसी में लीन हो गए। अज्ञानी इस तथ्य से रिशता जोड न सके।

इस लयात्मक अवस्था को स्वामी गोविंद कौल के शब्दों में देखें। न' तति मूजूद न' तति फना अमा सना पथ क्या रूद। गोविंद अमृत भजन १६४। ' ध्येय ' - जिस का ध्यान किया जाए। ' अन्वय ' - रिश्ता जोडना, अनुसंधान करना।

प्रश्न-

कुस पुश तय क्वस् पुशानी ।
कम कुसुम लाग्यज़्यस पूज़े ।
कव् गो'ड दिज़्यस ज़ल्चि दा'नी ।
कव् सन् मंत्र् शंकर- स्वात्म् वुज़े ।। १००।।

क-६८। शि-४२। ग्रि-३६। पा-७१।

कुस	पुश	तय	कुस	पुशानी
कौन	माली है	और	कौन	मालिन है
कम	कुसुम	लाग्यज़्यस	पूज़े	
कौन से	फूल	अर्पण करें	पूजा में	
कव्	गो'ड	दिज़्यस	ज़लचि	दा'नी
किस (वस्तु) से	अभिषेक	करें	पानी की	धारा में
कव् सन्	मंत्र्	शंकर	स्वात्म्	वुज़े
किस	मंत्र से	शंकर	स्वात्मा में	प्रकट होगा

यह प्रश्नात्मक वाख है। ललेश्वरी द्वारा प्रश्न किया गया है कि प्रभु की पूजा के लिए यर्थाथ माली तथा मालिन कौन है और पूजा में कौन से फूल अर्पण करने योग्य हैं तथा किस पानी से उसका अभिषेक किया जाए? पूजा में कौन सा मंत्र पढने से अपने अंतर में स्वात्म रूपी शिव प्रगट होसकता है ? वाख में चार प्रश्नों का उत्तर पूछा गया है। तथा स्वयं ही उनका उत्तर बताकर किसी भी विवाद के लिए स्थान नहीं छोडा है।

उत्तर -

मन पुश तय यछ़ पुशानी ।
बाव्क्य कुसुम ला'गि़ज्यस पूज़े ।
श्यशि रस् गो'ढ दिज़्यस ज़ल्च दा'नी ।
छ़'वपि मंत्र स्वात्म् शंकर वुज़े ।।१०१।।

क-६६। ग्रि-४०। पा-७२।

मन	पुश	तय	यछ़	पुशानी
मन	माली है	तथा	श्रद्धा	मालिन है
बाव्क्य	कुसुम	ला'ग्यज़्यस	पूज़े	
प्रेम के	कुसुम	अर्पण करना	पूजा में	
श्यशि रस	गो'ढ	दिज़्यस	ज़ल्च	दा'नी
छः रसों से	अभिषेक भेंट	करना	पानी की	धारा से
छ़'वपि	मंत्र	स्वात्म्	शंकर	वुज़े
मौन	रूपी मंत्र से	स्वात्म् (आत्मा रूपी)	शंकर	प्रगट होगा

अर्थात, सहस्रार में प्रभु की पूजा की यथार्तता बताते हुए ऊपर के प्रशन का स्वयं उत्तर देती हैं कि प्रभु की पूजा में मन माली है श्रद्धा मालिन है। मन में भाव रूपी फूल हों। उन्हीं से पूजा करें। षठ रस से अभिषेक करें अर्थात सहस्रार में चंद्रमा के अमृत के पानी से अभिषेक करें और मौन रूपी मंत्र से ही आत्म रूपी शंकर का साक्षात्कार होगा। भाव यह कि स्वच्छ मन तथ शुद्ध भाव या प्रेम से मौन होकर एकाग्र चित्त होकर स्वात्म प्रगट होता है।

छः रस - दूध, घी, शहद, दही, औषधि या धूप चंदन तथा शक्कर।

प्रश्न -

कुस डिंगि तॖ कुस ज़ागि ।
कुस सर व'त्रि तेलि ।
कुस हरस पूज़ि लागि ।
कुस परम पद मेलि ॥ १०२॥

क-१२०। शि-३६। ग्रि-७८। पा-६६।

कुस	डिंगि	तॖ	कुस ज़ागि
कौन	चंचल रहेगा	और	कौन ताक में रहेगा
कुस	सर	व'त्रि	तेलि
कौन	सर (झील)	तेज़ी से	जल संचार (करने योग्य है)
कुस	हरस	पूज़ि	लगि
कौन	शिव को	पूजने	योग्य है
कुस	परम	पद	मेलि
कौन	ऊंची	पदवी	पाने योग्य है

अर्थात, ललेश्वरी ने चार प्रश्न किये हैं १ - परमार्थ के रास्ते में कौन चंचल रहेगा या भागेगा और कौन एकाग्रता से ताक में रहेगा? २ - कौन सर (झील) पांचों नदियों में तेज़ी से पानी का संचार करने योग्य है? ३ - कौन शिव की पूजा करने योग्य है? तथा ४ - कौन सा परम पद (मिलने योग्य है) मिलेगा?

ज़ागि का विलोम स्वयं ललेश्वरी ने डिंगि बताया है। इस लिए डिंगि का अर्थ चंचल या भगोडा ही है।

उत्तर -

मन डिंगि त्‌ अकोंल ज़ागि ।
डा'ड्यसर पंच्‌ यंदि वंत्रि तेलि ।
स्वव्यचा'र्‌ पो'न्य हरस पूज़ि लागि ।
परम्‌पद चीतन शिव मेलि ।। १०३ ।।

क-१२१। शि-४०। ग्रि-७६। पा-७०।

मन	डिंगि	त्‌	अको'ल ज़ागि
मन	भागेगा	और	सजग ताक में रहेगा
डा'ड्यसर	पंच्‌ यंदि	व'त्रि	तेलि
भरी झील	पांच नदियों द्वारा	वेग से	संचार करेगी
स्वयचा'र्‌	पो'न्य	हरस	पूज़ि लागि
पवित्र विचारक	पुण्यवान	शिव की	पूजा करेगा
परम्‌	पद	चीतन	शिव मेलि
सर्वोच्य	पदवी	चेतन	शिव प्राप्त करने योग्य है

अर्थात, ललेश्वरी अपने चारों प्रश्नों का क्रमशः स्वयं ही उत्तर देती हैं कि अहंकारी का मन चंचल रहेगा। किंतु सजग (शिव की) ताक में रहेगा। भरा हुआ सर तीव्र गति से पांचों नालियों द्वारा सींचे गा। अर्थात अनंत शक्तियुक्त परमशिव रूपी सर वेग से पांचों दिशाओं, पांच - महाभूतों, कोषों, इंद्रियों, में शक्ति संचार करेगा, तथा ' पो'न्य ' अर्थात शुभ विचारशील पुण्यवाण पुरुष ही परमशिव की पूजा करने योग्य है एवं चेतन शिव पदवी प्राप्य योग्य है।

विशेष, १ - ग्रीसन, कौल ने ' कुस डिंगि ' का अर्थ 'कौन सोया' निकाला है? किंतु मन कभी नहीं सोता अतः तर्कसंगत नही है। २ - कौल ने ' व'त्रि ' का अर्थ 'सद

हा पेचो ताब' (सैंकडों मोड), तथा पारिमू ने 'लगातार' दिया है। तथा पारिमू ने ' पंच यंदि ' का अर्थ ' पांच इंद्रियां ', पारिमू तथा कौल ने ' पो'न्य ' का अर्थ 'पानी' दिया है जो भावार्थ से कदापि मेल नहीं खाते हैं। ' व'त्रि ' के बारे में देखें -

(मालिणिविजयवार्त्तिका १-२४५ -२४६ 'कौन कम पानी के जलाशय को किनारों तक भरकर बाहर छलकाएगा? उत्तर - केवल एक भरा चश्मा ही हर दिशा में नदियों को बहाएगा,' ' कश्मीर शैविज़म ' बलजी नाथ पंडित पृष्ठ १२ पंक्ति ११ तथा श्लोक पृष्ठ १४० पर- परनिमन्न तडागपाणीयम कः प्रवर्तेयितमूक्षमः। परिपूर्णततस्तस्मिन प्रवाहाः सर्वतो मुखः।।)

कुस हा मालि लूसुय न् पकन पकन ।
कुस हो मालि लूसुय न् व्वलगन समीरु ।
कुस हो मालि लूसुय न मरन त् ज़्यवन ।
कुस हो मालि लूसुय न् करन न्यंद्या ।। १०४।।

क-१७४। शि-१६२।

कुस	हा मालि	लूसुय	न्	पकन	पकन
कौन	रे बाबा	थका	नहीं	चलते	चलते
कुस	हो मालि	लूसुय	न्	व्वलगन	समीरु
कौन	रे बाबा	थका	नहीं	लांघते	समीर को
कुस	हो मालि	लूसुय	न	मरन	त् ज़्यवन
कौन	रे बाबा	थका	नहीं	मरते	और जन्मते
कुस	हो मालि	लूसुय	न्	करन	न्यंद्या
कौन	रे बाबा	थका	नहीं	करते हुए	निंदा

अर्थात, ललेश्वरी यहां पर निंदकों के विषय में प्रश्न करती हैं कि वह कौन है जो चलते चलते थका नहीं? कौन है जो सुमेरु पर्वत को लांघते थका नहीं? कौन मरते और जन्म लेने से थका नहीं। कौन है जो निंदा करते थका नहीं?

विशेष, ' मालि ' - मेरे बाबा, माई बाप, चाचा, मित्र, आदर सूचक शब्द हैं। सुमेरु - मान्यता है कि सूर्य का रथ सुमेरु पर्वत के चारों ओर घूमता है।

ज़ल हो मालि लूसुय न् पकन पकन ।
सिर्यि लूसुय न् व्लगन समीरु ।
च़्द्रम् लूसुय न मरन त् ज़्यवन ।
मनुश लूसुय न् करन न्यंद्या ॥ १०५॥

क-१७५। शि-१६२।

ज़ल	हो मालि	लूसुय	न	पकन पकन
जल	रे बाबा	थका	नहीं	चलते चलते
सिर्यि	लूसुय	न्	व्लगन	समीरु
सूर्य	थका	नहीं	लांघते	समीर को
च़्द्रम्	लूसुय	न	मरन	त् ज़्यवन
चांद	थका	नहीं	मरते	और जन्मते
मनुश	लूसुय	न्	करन	न्यंद्या
मनुष्य	थका	नहीं	करते	निंदा

उत्तर, अर्थात, निंदकों के बारे में व्यंग्यपूर्ण उत्तर देते हुए कहती हैं कि पानी चलते हुए सूर्य समीर को लांघते हुए तथा चंद्रमा घटते बढते थके नहीं। इसी प्रकार मनुष्य निंद्या करते हुए कभी नहीं थका।

भावार्थ - निंद्या करना पाप है। ललेश्वरी ने समझाया है कि निंदक दूसरे की निंदा करने में अनादि काल से आनंद लेता रहा है जो मनुष्य को निमन्न स्तर का बना देता है। सार यह है कि निंदा करने की लत को छोडना शुभ फलदायक होता है।

केंह छिय न्यंदरि हती व्वदी ।
केंच़न व्वद्यन न्य'न्द्र प्ययिय ।
केंह छिय स्नान क'रिथ अपूती ।
केंह छिय गेह बज़िथ ति अक्रयी ।। १०६ ।।

क-११२। ग-६४। चि-२६। शि-१२। ग्रि-३२। पा-८६।

केंह	छिय	न्यंदरि	हती	व्वदी
कुछ लोग	हैं	नींद	में भी	सचेत
केंच़न	व्वद्यन	न्यन्द्र	प्ययिय	
कुछ	जगे लोग	सो	गए	
केंह	छिय	स्नान	क'रिथ	अपूती
कुछ	हैं	स्नान	करके भी	अपवित्र
केंह	छिय	गेह	बज़िथ	ति अक्रयी
कुछ	हैं	गृहस्थी	होकर	भी अकर्ता

अर्थात, कई लोग ऐसे हैं जौ नींद में हैं किंतु जागरूक हैं। कई मनुष्य जागरूक लगते है किंतु वह सो रहे होते हैं। कुछ स्नान करके भी अपवित्र ही रहते हैं। और कुछ गृहस्थी होकर भी अकर्ता हैं।

भावार्थ - बाहर से किसी की जो क्रिया दिखाई देती है वह हाव भाव भी हो सकता है।

विशेष - इस वाख में बाहरी आडंबरों पर व्यंग्य किया गया है।

ज्ञानूक्य अमबर प्ू रिथ तने ।
यिम पद ललि द'प्य तिम हृदि आं'ख ।
कारून्य प्रणवूक्य लय को'र लले ।
च्यथ् ज्योति का'सून मरनूनि शेंख ॥१०७॥

क-१०२। शि-१६। पा-६७।

ज्ञानूक्य	अमबर	प्ू रिथ	तने
ज्ञान रूपी	वस्त्र	पहनकर	शरीर पर
यिम पद	ललि द'प्य	तिम	हृदि आं'ख
जो पद	लल ने कहे	उनको	हृदय में धारो
कारून्य	प्रणवूक्य	लय को'र	लले
कारण से	प्रणव के	लीन हो गई	लल
च्यथ	ज्योति	का'सून	मरनूनि शेंख
चित्त की	ज्योति से	समाप्त की	मरने की शंका

अर्थात, ज्ञान रूपी वस्त्र पहन कर लल के कहे पदों को आंक ले, अर्थात धारण कर (जैसे लल ने धारण किए)। लल भी ओम के कारण ही (परमशिव के साथ) लय हो गई जिस से उस के चित में ज्योति का प्रकाश प्रगट होकर मरने की शंका समाप्त हो गई।

भाव - लल के अनुभवों को समझ कर जीते जी ही ओम के साथ लय होकर प्रकाश मंडल पहुंचकार आवागमन के चक्कर से छूटना चाहिए।

विशेष - शि, १६ में ' पूरिथ ' के स्थान पर ' ला'गिथ ' तथा कौल ने ' ज्योति ' को (जियू ति) लिखा है जो इस वाक्य के भाव से समतुल्य नही हैं।

च़्यत् त्वरुग गगन् ब्रमूवोन ।
निमीशि अकि छ़ंडि यूज़न् लछ़ ।
च़ीतन् वगि ब्वदि र'टिथ ज़ोन ।
प्राण अपान संदा'रिथ पखूच ।। १०८।।

क-५२। चि-५७। शि-१०२। पा-३०।

च़्यत्	त्वरुग	गगन्	ब्रमूवोन	
चित्त रूपी	घोडा	आकाश (में)	उडने वाला है	
निमीशि	अकि	छ़ंडि	यूज़न्	लछ़
पलक जपक में	एक ही	भ्रमण करेगा जो	यूजन	लाख
च़ीतन	वगि	ब्वदि	र'टिथ	ज़ोन
चेतना रूपी	लगाम से	बुद्धि द्वारा	थामना (जिसने)	जान लिया
प्राण	अपान	संदा'रिथ	पखूच	
प्राण	अपान (रूपी)	सशक्त करके	पंखों को	

अर्थात, चित्त रूपी घोडा आकाश में भ्रमन करने वाला है। एक पलक में लाखों योजन तय करता है। प्राण, अपान अर्थात श्वासोश्वास रूपी पंखों को दृढ बनाकर चेतन एवं जागरूक बुद्धि रूपी लगाम से काबू करना (मैं ने) जान लिया। अर्थात इस को काबू करना चाहिए।

' निमिष ' - ' टिटवहार ' - पलक झपकने में।

भावार्थ - प्राणायाम से मन को नियंत्रण में रखने पर बल दिया गया है।

उपरोक्त वाक्य की अंतिम दो पंक्तियों का पारिमू द्वारा संशोधन इस प्रकार है। ' येम्य न् वगि यि र'टिथ ज़ोन ', 'जो नहीं जानता इस की लगाम कैसे पकडें' तो 'प्राण अपान फुटरनस पखूच', प्राण अपान के अभ्यास द्वारा मारा जाएगा। प्रश्न है कि कौन मारा जाएगा? यहां ललेश्वरी का संबोधन गौण है।

ऐसा लगता है कि पारिमू ने स्रोत बताए बिना ही 'संदा'रिथ' का संशोधन करके फुटरिथ बनाकर अर्थ को उलटा करके वाख को निम्न कोटि का एवं निरर्थक बनाया। प्राणों के नियंत्रण से चित्त पर नियंत्रण हो सकता है न कि पहले चित्त को नियंत्रण में लाकर फिर श्वासोश्वास को। यदि ऐसा होता तो प्राणायाम करने की क्या आवश्यकता है। कौल का दिया वाख अर्थ एवं ललेश्वरी के अनुभव के साथ मेल खाता है।

अगले वाख में संबोधन स्पष्ट है और ललेश्वरी अपना अनुभव व्यक्त करती हुई कहती हैं -

च़्यत् त्वरुग वगि ह्यथ रो'टुम ।
च़्यलिथ मिलविथ दशि ना'ड्य वाव ।
तवय शशकल व्यगलिथ व'छ़्म ।
शुन्यस शुन्या मीलिथ गव ।। १०६।।

क-६१। ग्रि-६६। शि-१०३। पा-४२।

च़्यत्	त्वरुग	वगि	ह्यथ	रो'टुम
चित्त	रूपी घोडे	को लगाम	द्वारा	थामा मैंने
च़्यलिथ	मिलविथ	दशि	ना'ड्य	वाव
कसकर	मिला कर	दसों	नाडियों को	श्वासोश्वास से
तवय	शशकल	व्यगलिथ	व'छ़्म	
उसी कारण	शशकल	पिगल कर	उतरी मेरी	
शुन्यस	शुन्या	मीलिथ	गव	
शुन्यके साथ	शुन्य	मिल	गया (फिर)	

अर्थात, चित्त रूपी घोडे को दसों नाडियों समेत कसकर में ने थाम लिया। उसी से ब्रह्मांड से टपकता अमृत पान करके शुन्य अर्थात परमात्मा के साथ विलीन हो गई।

विशेष - कसकर का अर्थ ज़ोर ज़बरदस्ती से नहीं अपितु पूरे ध्यान तथा ' सावधानी के साथ ' है। क्योंकि त्रिक में कुंडिलिणी योग में हठ का कोई समावेश नहीं है। मेरु में जो स्पंद होता है वह कुंडिलिणि का ही सूक्षम शक्ति रूप है।

दस नाडियां - १ इडा २ पिंगला ३ सुषमना ४ गांधारी ५ हस्तिजीहवा ६ पूशा ७ यशस्विनी ८ अलंभुषा ६ कूहू १० शंखिणी।

च़्यथ नो'वुय च़'न्द्रम नो'वुय ।
ज़ल्मय डयूंठुम नवम नो'वुय ।
यन् प्यठ् ललि म्य तन मन ना'वूय ।
तन् लल बो'ह नवम नवूय छस ।। ११०।।

क-१३८। ग्रि-६३। शि-६८। पा-१०१।

च़्यथ	नो'वुय	च़'न्द्रम	नो'वुय
चित्त (भी)	नया (ताज़ा)	चंद्रमा (चित्त का स्वामी) भी	नया
ज़ल्मय	डयूंठुम	नवम	नो'वुय
पानी की तरह	देखा	सर्वथा	ताज़ा
यन् प्यठ्	ललि म्य	तन मन	ना'वूय
जब से	मुझ (लल) ने	तन मन को	निर्मल बनाया
तन्	लल बोह	नवम	नवूय छस
तब से	मैं लल	नूतन (एवं नितांत)	ताज़ा हूं

अर्थात, मेरा चित्त तथा चित्त का स्वामी चंद्रमा दोनों निर्मल हैं। जल की भंति सदा नवीनता देखी। जब से मैंने तन मन दोनों को निर्मल बनाया तब से मैं लल निर्मल अर्थात नित्य शुद्ध हूं।

भावार्थ - गुरु धारण करके साधक पूर्न प्रयत्न से मन की वासनाओं को क्षीण करता है। तन को धोकर तथा मन को शुद्ध आहार देकर निर्मल करता है। ऐसा करके अभ्यासी जब प्राणायाम से एकाग्र चित्त होकर ध्यान मगन होता है तो उसे पहले बिंदु रूप चंद्रमा दिखाई देता है जो आरंभ में छोटा तथा कुछ मैला दिखता है। तत्पश्चात इसका उज्जवल रूप स्पष्ट होता है। इस के उपरांत ध्यान करते ही नया अर्थात निर्मल चंद्रमा दिखाई देता है जिस से अपने अंदर-बाहर शुद्धता आती है और आनंद प्रस्फुटित होता है। यह अभ्यास प्रक्रिया का एक स्तर है। ललेश्वरी ने बाद के पाडवों का दूसरे पदों में उल्लेख किया है।

शब्दार्थ - नो'वुय - वासनाओं से मुक्त निर्मल जल की भांति। 'नवम नवूय' - नित्य शुद्ध।

छ़ांडान लूछ़्स पा'नी पानस ।
छ्यपिथ ज्ञानस वोतुम न् कोंछ़ ।
लय क'रमस त् वा'चू्स अलथानस ।
ब'र्य ब'र्य बान् त् चवान न् कोंछ़ ।। १११।।

क-६६। चि-३१। ग्रि-६०। पा-४६।

छ़ांडान	लूछ़्स	पा'नी	पानस
ढूंढते ढूंढते	चूर हुई	अपने स्वयं	आप को
छ्यपिथ	ज्ञानस	वोतम	न् कोंछ
सूक्षम	ज्ञान को	पहुंचा	ना कोई
लय	क'रमस	वा'चू्स	अलथानस
तल्लीनता	प्राप्त की (और)	पहुंची	आनंद अमृत स्थान पर
ब'र्य ब'र्य	बान् त्	चवान न्	कोंछ़
भरे (देखा कि) हैं	बर्तन तो	पीने वाला नहीं है	कोई

अर्थात, मैंने देखा सूक्षम ज्ञान अर्थात आनंद के पास पहुंचने का प्रयत्न कोई नहीं करता है। मैं उस आनंद अमृत को पाने के लिए लीन हो गई और देखा कि वहां अमृत के बर्तन भरे पडे हैं किंतु पीने वाला कोई नहीं है। अर्थात प्रभु को पाने की लल्क वाले साधक अति अल्प हैं।

त्रे'यि न्यंगि सरा सर्‌य सरस ।
अकि न्यंगि सरस अरशस जाय ।
हरम्वख कवसर् अख सुम सरस ।
सति न्यंगि सरस शिन्याकार ।। ११२।।

क-११६। चि-४७। ग्रि-५०। पा-५८।

त्रे'यि	न्यंगि	सरा	सर्‌य	सरस
तीन	बार देखा	सर	सती सर	प्रथम श्रेणी का
अकि	न्यंगि	सरस	अरशस	जाय
एक	बार देखा	सतीसर	सिरे तक	भरा हुआ
हरम्वख	कवसर्	अख	सुम	सरस
हरमुख से	कौंसरनाग तक	एक ही	पुल (बना देखा)	सरोवर पर
सति	न्यंगि	सरस	शिन्याकार	
सात बार	देखा	सतीसर	सूखा हुआ	

अर्थात, इस वाख में लल अपने अनेक जन्मों का स्मरण करके कहती हैं, मुझे याद है कि मैंने तीन बार सतीसर को सरों में प्रथम श्रेणी में देखा। एक बार इसका पानी आकाश से बातें करता था। जिसके ऊपर हरमुखा से कौंसरनाग तक एक ही पुल देखा और सात बार इस सर को शून्य आकार अर्थात बिना पानी के देखा।

त्रिक् योग में हठ का कोई स्थान नहीं है। इस तथ्य को दर्शाते हुए ललेश्वरी अगले वाख में कहती हैं:-

त्रेशि ब्वछि मो क्रेशनावुन ।
यान्य छ्ययिह तान्य संदारुन दीह ।
फ्रठ चोन दारुन त् पारुन ।
कर व्वपकारुन सय छय क्रय ।। ११३।।

क-३४। शि-१३६।

त्रेशि	ब्वछि	मो	क्रेशनावुन	
प्यास तथा	भूख से	मत	तडपावो इसे	
यान्य	छ्ययिह	तान्य	संदारुन	दीह
ज्यों ही	निर्बल हो जाए	तब	स्वस्थ करो	देह को
फ्रठ	चोन	दारुन	त्	पारुन
धिक्कार है	तेरे (व्रत)	धारन करने	और	पारायन पर
कर	व्वपकारुन	सय	छय	क्रय
करो	उपकार	वही (तो)	है	क्रिया

अर्थात, भूख प्यास से अपने जीवात्मा तथा शरीर को मत तडपाओ। जब निर्बल हो जाए तो इसे स्वस्थ तथा सशक्त बनाओ। जिस हठ क्रिया से शरीर को पीढा पहुंचे वैसी क्रिया करने पर तुझे धिक्कार है। मन में उपकार की भावना रखनी चाहिए वही सच्ची क्रिया है।

भावार्थ, शरीर को भूख प्यास से तडपाना धिक्कार की बात है । अन्य लोगों का उपकार करते हुए अपने शरीर का भी ध्यान रखना चाहिए। वही सच्ची क्रिया है।

तूरि सलिल खो'तु त'य तूरे ।
हिमि त्र्यह गय ब्यन अब्यन विमरशा ।
चेतन्य रव बाति सब समे ।
शिवमय चराचर जग पश्या ।। ११४।।

क-८३। चि-५८। शि-२२। ग्रि-१६। पा-४८।

तूरि	सलिल	खो'तु	त'य	तूरे
ठंडा होजाए	पानी	ज़्यादा (अधिक)	ओर	ठंडा होकर
हिमि	त्र्यह गय	ब्यन	अब्यन	विमरशा
बर्फ	तीन हो गऐ (यह)	अलग हैं	अभिन्न (हैं)	जानकर कि
चेतन्य	रव	बाति	सब	समे
चेतन	सूर्य (ज्ञान से)	दिखते	सारे	सम (एक जैसे)
शिवमय	चराचर	जग	पश्या	
शिवमय	सारे	जगत (को)	देखता है	

भावार्थ - वाष्प, पानी ठंड बढने से बर्फ बनते हैं तथा सूर्य की गर्मी से फिर एक रूप हो जाते हैं। यदि ये तीनों भिन्न प्रगट होते हैं किंतु वास्तव में यह सारे पानी के ही रूप हैं और विमर्षी पुरुष पानी की हर हालत को एक ही मानता है। इसी प्रकार चेतना रूपी सूर्य चमकने अर्थात ज्ञान उदय होने से सारा जगत सम एवं शिवमय ही दिखाई देता है।

पहली पंक्ति में 'त'य' के स्थान पर 'तोय' शब्द सार्थक लगता है। तोय पानी का अर्थ देता है। और सलिल वाष्प का।

तंथ्र गलि तय मंथ्र म्वचे ।
मनथ्र गो'ल तय मो'तुय च्यथ ।
च्यथ गो'ल तय केंह तिना कुने ।
शुन्यस शुन्या मीलिथ गव ।। ११५।।

क-८६। चि-४८। शि-८१। ग्रि-११। पा-४१।

तंथ्र	गलि	तय	मंथ्र	म्वचे
तंत्र (शास्त्र के)	पिघलेगा (मिटेगा)	तो	मंत्र	शेष रहे गा
मनथ्र	गो'ल	तय	मो'तुय	च्यथ
मंत्र	मिटा	तो	शेष रहा	चित्त
च्यथ	गो'ल	तय	केंह तिना	कुने
चित्त (के)	मिटने पर	तो	कुछ शेष	नहीं रहा
शुन्यस	शुन्या	मीलिथ	गव	
शुन्य	शुन्य (के साथ)	मिल	गया	

अर्थात, तंत्र (शिव संबंधी साहित्य या शास्त्र पढने के बाद) समाप्त होने के बाद मंत्र जपना शेष रहता है। मंत्र जपने की क्रिया के बाद चित्त शेष रहता है। चित्त के लीन होने पर शून्य ही रहता है। अर्थात परम शिव ही शेष रहता है और चेतन के संग चेतन लय हो जाता है।

विशेष-यहां अभ्यास की प्रक्रिया का वर्णन है। शास्त्र अध्ययन के पश्चात केवल मंत्र जपने पर ही ध्यान दिया जाता है। और शास्त्र का महत्व निम्न होजाता है। मन औन मंत्र एक होकर चित्त शेश रहता है। और चित्त अर्थात केवल चेतना रहकर मंत्र समाप्त हो जाता है। चित्त जब लय होता है तो शून्य अवस्था विचारशून्यता शेष रहती है।

दम् दम् मन ओमकार परनोवुम ।
पानय परन पानय बोज़न ।
सूहम पदस अहम गोलुम ।
त्यलि लल बो वा'चूस प्रकाशस्थान ।। ११६ ।।

क-१४५। शि-१७५।

दम्	दम्	मन	ओमकार परनोवुम
(हर) सांस	सांस में	मन को	ओमकार पढाया
पानय	परान	पानय	बोज़न
स्वयं ही	पढता है	स्वयं ही	सुनता है
सूहम	पदस	अहम	गोलुम
सोहम	पद से	अहम (मैं)	का लोप किया
त्यलि	लल बो	वा'चूस	प्रकाशस्थान
तब ही	लल मैं	पहुंच गई	प्रकाश स्थान पर

अर्थात, प्रत्येक श्वास में मैंने मन को ओमकार पढाया। स्वयं ही पढता और स्वयं ही सुनता है। सोहम पद (सोहम-सू+अहम अर्थात-'वह मैं हूं') से मैंने अहम या मैं का लोप किया तो 'सू' अर्थात 'वह शिव' शेष रहा और वही 'सू' करती गई तभी मैं लल प्रकाशस्थान पर पहुंच गई।

द’छिनिस ओबरस ज़ायुन ज़ानहा ।
समंदरस ज़ानहा क’डिथ अठ ।
मंदिस रूगियस वैद्युत ज़ानहा ।
मूडस ज़ा’निम न् प्र्निथ कथ ।। ११७।।

क-१६। शि-१२५।

द’छिनिस	ओबरस	ज़ायुन	ज़ानहा
दक्षणी	(घने) बादलों को	हटाना	जान सकती हूं
स’दरस	ज़ानहा	क’डिथ	अठ
समुद्र से	पानी निकालूं	बनाकर	नदी
मंदिस	रूगियस	वैद्युत	ज़ानहा
असाध्य	रोगी को	वैद्य बनकर (उपचार)	कर सकूं
मूडस	ज़ा’निम	न् प्र्निथ	कथ
मगर मूढ को	सकी	न समझा	बात (सत्य) की

अर्थात, दक्षिण दिशा से आने वाले भयंकर घने बादलों को पतला बना कर हटा सकूं, समुद्र से नदी निकाल लूं, असाध्य रोगी का वैद्य बन कर उपचार कर सकूं। इन बातों की संभावना हो सकती है । किंतु मूढ अर्थात मूर्ख को (तत्त्व की) बात समझा न सकी।

‘ ज़ायुन ’ - झाडू मारना (हियमाल ह्यंज़े वनवुन से ‘ ज़ायलछ्रूज ’ शब्द अर्थात ‘ ज़ायुन ’ क्रिया रूप अर्थात झाडू मारना)।

दमादम् को'रमस दमन हाले ।
प्रज़ल्योम द्‌्फ त् ननेयम ज़ात ।
अन्द्रिम प्रकाश न्यबर छ़ो'टुम ।
गटि रो'टुम त् क'रमस थफ ।। ११८।।

क-९८। चि-३३। शि-८२। ग्रि-४।

दमादम	को'रमस	दमन	हाले
लगातार	की मैंने	प्राणायाम की	भरपूर क्रिया
प्रज़ल्योम	द्‌्फ	त् ननेयम	ज़ात
(तो) चमका मेरा	द्वीप (ज्ञान का)	और पहचाना अपने	स्वरूप को
अन्द्रिम	प्रकाश	न्यबर	छ़ो'टुम
अंदर का	प्रकाश	बाहर	छलकाया
गटि	रो'टुम	त् क'रमस	थफ
अंधेरे में ही	उसे पाया	और लिया मैंने	पकड

अर्थात, जिस प्रकार लोहार खाल में वायु भरकर आग में धातों को तपाता है, इसी प्रकार मैंने परिश्रम से बार बार प्राणायाम की क्रिया की जिससे मेरे अंदर ज्ञानदीप प्रदीप्त हुआ तथा मुझे अपने वास्तविक रूप का ज्ञान हुआ कि मैं वही हूं। अंदर प्राप्त हुए ज्ञान प्रकाश को मैं ने बाहर छलकाया अर्थात व्यवहार में लाया और बाहर के अंधकार रूपी अज्ञान को समाप्त किया।

(दमन हालय-लुहार धौंकनी अर्थात खाल में तुरंत हवा खींचकर उसे दबाकर धीमी गति से निकाल कर कोयले के आग को तीव्र करके हाल में रखे धात को पिघला कर स्वछ बनाता है)।
' हाल ' - लोहार जहां आग रखता है। हालय - भरपूर, विस्तृत जैसे हालि मा'दान - विशाल मैदान। दमन - लोहार का खाल में वेग से हवा भर कर धीमी गति से हाल में रखे कोयले का सुलगाने की क्रिया। खाल में शीघ्रता से हवा भरकर आहस्ता निकाली जाती है।

द'मी डींठ्म ग'ज दज़्वनी ।
द'मी ड्यूंठुम द्‌ह न त् नार ।
द'मी डींठ्म पांडवन ह्‌ंज़ मा'जी ।
द'मी डींठ्म क्रा'जी मास ।। ११६।।

क-११। शि-२६। ग्रि-६७।

अपने जन्मों के बारे में ललीश्वरी जानकारी देती हैं:-

द'मी	डींठ्म	ग'ज	दज़्वनी	
एक बार मैंने	देखा	चूल्हा	जलता हुआ	
द'मी	ड्यूंठुम	द्‌ह	न त्	नार
एक समय उसमें	देखा	न धुआं	और न	आग
द'मी	डींठ्म	पाण्डवन	ह्‌ंज़	मा'जी
कभी मैंने	देखी	पांडवों	की	मां
द'मी	डींठ्म	क्रा'जी	मास	
कभी	मैंने देखी	कुम्हारिन	मासी	

अर्थात, किसी समय एक चूल्हे को जलता हुआ पाया कि भर पूर गृहस्थी चल रही थी। कभी इसी चूल्हे को सुनसान पाया अर्थात पूरी गृहस्थी उजड चुकी थी। कभी पांडवों की माता कुंती को देखा तत्पश्चात उसे कुम्हारिन[१] मासी के रूप में पाया।

१ - कथा है कि पांडवों के अज्ञातवास में कुंती को कुम्हारिन के वेष में रहना पडा था और पांडव उसे मासी कहकर पुकारते थे। ललेश्वरी ने उसे इसी वेष में देखा था। फिर बिजबिहारा में भी किसी पशु प्राणी के रूप में आई थी। उसके बाद ललेश्वरी के रूप में जन्म लेकर उसी लेन देन को चुकाने के लिए अंत तक बिजबिहाडा में रहीं।

दीशि आयस दश दीशि तीलिथ ।
च़'लिथ च़ो'टुम शुन्य अद् वाव ।
शिव्य ड्यून्टुम जायि जायि मीलिथ ।
शे'ह त् त्रे'ह त्रो'पिमस त् शिव्य द्राव ।।१२०।।

क-१२६। ग-२४। शि-१५० । पा-६८।

दीशि	आयस	दश	दीशि	तीलिथ
निज देश में	आ गई	दसों	दिशाओं	में फैल कर
च़लिथ	च़ो'टुम	शुन्य	अद्	वाव
वे त्याग कर	पार किया	शून्य	फिर	वेग से
शिव्य	ड्यून्टुम	जायि	जायि	मीलिथ
शिव ही को	देखा	जगह जगह	सर्वत्र	मिला हुआ
शे'ह त् त्रे'ह	त्रो'पिमस	त्	शिव्य	द्राव
छः तथा तीन	को वश किया	तो	शिव ही	व्याप्त पाया

अर्थात, दसों दिशाओं में पहुंचकर तथा इनको देख समझ कर मैं पलटकर अपने देश में पहुंच गई फिर तुरंत शून्य को भी पार किया तो शिव को ही सवत्र मिला हुआ पाया। छः और तीन को बंद किया तो अपने में भी शिव ही को पाया।

भावार्थ - दस इंद्रियों के देशों को समझ कर जान लिया। उनसे हटकर तत्पश्चात तीव्रता से अपने अंतर में शुन्य की अवस्था अर्थात विषय विकारों से शून्य या ऊपर हो गई और नव द्वार को बंद करके सर्वत्र शिव को ही व्याप्त पाया। अर्थात शिवमय हो गई। (इस अवस्था में केवल शिवभाव ही शेष रहता है) ।

आनंदकौल तथा पारमू-दश्दीशि तीलिथ। कौल-दिशि च़'लिथ।

शब्दार्थ, वाव- तेज़ी से। छः + तीन - नौ अर्थात नव द्वार।

द्वादशांत मंडल यस दीवस थजि ।
नासिक् पवन दा'र्य अनाहत रव ।
स्वयम कलपन अनतिह चज़ि ।
पानय सुह दीव त् अरचुन कस ।। १२१।।

क-७२। चि-३६। ग्रि-३३। शि-८३। पा-५४।

द्वादशांत	मंडल	यस	दीवस	थजि
द्वादशांत	मंडल	जिस	शिव का	स्थान है
नासिक्	पवन	दा'र्य	अनाहत	रव
नाक से	पवन को	धारण कर	(सुने) शब्द	देखा प्रकाश
स्वयम	कलपन	अनतिह	चज़ि	
स्वयं ही	कल्पनाएं	अंततः	मिट गईं	
पानय	सुह	दीव त्	अरचुन	कस
स्वयं	वह	शिव ही है	फिर पूजा	किस की

अर्थात, जो सांस खेंचकर द्वादशांत मंडल या ब्रहमूरंध्र (सहस्रार में जो देव का स्थान है) में अनाहत शब्द एवं प्रकाश का अनुभव करता है, स्वयं ही उस की कल्पनाएं समाप्त अर्थात शांत हो जाती हैं। स्वयं वही देव है। जब इस तथ्य का आभास हो गया तो फिर पूजा किस की करनी?

अनाहत - अंतर का शब्द। रव - सूर्य, प्रकाश, निरंतर बहने वाली धारा।

पानस ला'गिथ रूदुख म्य च़्य ।
म्य च़्य छाडन लूसुतुम दोह ।
पानस मंज़ ये'लि ड्यूंठुख म्य च़्य ।
म्य च़्य त् पानस ग्युतुम छ़ोह ।। १२२।।

क-१३७। ग-२३। चि-७२। शि-३५। ग्रि-४४। पा-५०।

पानस	ला'गिथ	रूदुख	म्य	च़्य
अपना	रूप बदल कर	रह रहे	मुझ में	तुम
म्य	च़्य	छाडन	लूसुतुम	दोह
(और) मुझे	आपको	ढूंढते	ढल गए	दिन
पानस	मंज़	यलि	डयून्ठुख	म्य च़्य
अपने	अंदर	जब	पाया	मैंने तुझ को
म्य	च़्य त्	पानस	ग्युतुम	छ़ोह
मैं	तुम और	मिलकर	आनंद से लगे	उछलने

अर्थात, तू तो मेरे अंदर वेष बदल कर रहे और तुझे ढूंडते ढूंढते मेरे दिन बीत गए। जब मैंने तुझे अपने अंदर देखा तो मैं तेरे साथ मिलकर आनंद लीला करने लगी। पारिमू (वाख ५०) ने प्रथम पंक्ति में रूदूख का रोवुख बनाकर मूल का परिवर्तन किया है। 'ला'गिथ रोजुन' एक मुहावरा है जिसको अलग करके नहीं पढा जास्कता है। मुहावरा - ला'गिथ युन -छद्मनाम।

परुन पोलुम अपो'रुय पो'रुम ।
केसर वन् वोलुम रटिथ शाल ।
परस प्र्नुम त् पानस पोलुम ।
अद् गोम मोलूम त् ज़ीनिम हाल ।। १२३।।

क-४७। पा-६२।

परुन	पोलुम	अपो'रुय	पो'रुम	
जो पढा	अनुकरन किया	सूक्षम विद्या	पढ ली	
केसर	वन्	वोलुम	रटिथ	शाल
शेर (को)	जंगल से	लाया	पकडकर	गीदड (की तरह)
परस	प्र्नुम	त्	पानस	पोलुम
दूसरे को	समझाया	और	स्वयं	पालन किया
अद्	गोम मोलूम	त्	ज़ीनिम	हाल
तब	जाके जाना	और	जीता मैंने (सिद्ध किया)	मैदान

अर्थात, मैं ने जो पढा उस का मनन किया, जो पढने में नहीं आ सकता अर्थात, सूक्षम ज्ञान भी पढ लिया। मन रूपी शेर को जंगल (विचारों में से निकाल कर) से गीदड की तरह पकड कर लाया अर्थात, काबू कर लिया। औरों को समझाया किंतु पहले उस का स्वयं पालन किया। तब जाके जाना कि मैं ने मैदान को जीत लिया अर्थात, लक्ष्य को पालिया।

प्रथम पंक्ति में पारिमू (६२) ने 'पो'रुम' का 'रोवुम' लिखा है तथा 'प्र्नुम' के स्थान पर 'प्रो'नुम' जोड दिया है। जो समीचीन नहीं है, मेखला संस्कार के समय माताएं बच्चे को आशीर्वारद देतीं थीं कि 'अपो'रुय पर' अर्थात आपको सूक्षम विद्या भी प्राप्त हो जाए।

बान गो'ल तय प्रकाश आव ज़ूने ।
चंद्र गो'ल तय मो'तुय च्यथ ।
च्यथ गो'ल तय केंह तिना कुने ।
गय भूर भवह सूर व्यसरज़िथ क्यथ।। १२४।।

क-८५। चि-४६। शि-३८। ग्री-६।

बान	गो'ल	तय	प्रकाश	आव ज़ूने
सूर्य	अस्त हुआ	और	प्रकाश	आया चांद को
चंद्र	गो'ल	तय	मो'तुय	च्यथ
चंद्रमा	अस्त हुआ	तो	शेष रहा	चित्त
च्यथ	गो'ल	तय	केंह तिना	कुने
चित्त	अस्त हुआ	तो	कुछ भी शेष नहीं (रहा)	कहीं
गय	भूर	भवह	सूर	व्यसरज़िथ क्यथ
होगया	पृथ्वी	आकाश	ब्रह्मांड का	विसर्जन

भावार्थ, जब सूर्य अस्त होता है तो चंद्रमा उदय होता है। अर्थात नाभि (सूर्य देश से) ब्रह्मांड में जाकर चंद्रम देश में चंद्रमा का उदय होता है। फिर चंद्रमा भी अस्त होकर चित्त ही शेष रहता है। चित्त के लीन होने पर (परम शिव के सिवा) कुछ भी शेष नहीं रहता है । अर्थात पृथ्वी आकाश तथा ब्रह्मांड लीन हो जाते हैं।

मद पिवुम सिन्धु ज़लन येतु ।
रंगन लीलिम्य क्येम केचा ।
कू़त्य ख्ययम मनुशि मामस्क्य न'ल्य ।
स्वय बो'ह लल तू गव म्यह क्या ।। १२५।।

क-११६। ग्रि-८१।

मद	पिवुम	सिन्धु	ज़लन	येतु
मद (जैसा)	पिया मैंने	सिंधु	जल	इतना
रंगन	लीलिम्य	क्येम	केचा	
रंगों के साथ	रंग गई	कीडों के	कितने ही (अनेक)	
कू़त्य	ख्ययम	मनशि	मामस्क्य	न'ल्य
कितने ही	खाए मैंने	मनुष्य	मांस के	हाथ पैर (अस्थियां)
सो'य	बो'ह	लल	तू गव	म्यह क्या
वही आज हूं	मैं	लल	फिर यह हुआ	मुझे क्या

अर्थात, ललीश्वरी अपने पिछले जन्मों का उल्लेख करती हुई कहती हैं कि मैंने मधु की तरह सिंधुओं का (अनेक स्थानों पर जलचर के रूप में) जल पिया, अनेक रंगों के कीडों के साथ उन्हीं के रंग में रंगकर मैंने कितने ही मनुष्यों की अस्थियों का मांस खाया। अब इस समय भी मैं वही लल हूँ फिर मेरी यह दशा क्यों हुई थी।

विशेष, कश्मीरी पंडित तीर्थस्नान तथा अपने मृतक जनों की अस्थियां विसर्जन करने के लिए सिंधु के किनारे कश्मीर के एक तीर्थ गंगबल जाते रहे हैं। इस का महत्व गंगा जी की तरह माना जाता रहा है। मेरे पूर्वज कई बार गंगबल यात्रा कर चुके हैं। मुझे पूरी तरह मेरे स्वर्गीय चाचाजी वेदलाल तथा पिताश्री का कहा स्मरण है कि वहां श्राद्ध के समय पिंड तथा मृतक जनों की अस्थियां डालते ही पानी के अंदर रहने वाले भिन्न भिन्न प्रकार के रंगारंग कीडों की एक मोटी परत पानी की सतह पर उभर कर आती थी और पल में अदृश्य हो जाती थी। इस घटना को 'स्यय खसून्य' (कीडों का जमाव, कीटसमूह) कहते थे और विश्वास यह किया जाता था कि पितर स्वयं (कीडों के रूप में) आते है। इसलिए पितरों का श्राद्ध सफल माना जाता था।

मकरस ज़न मल चो'लुम मनस ।
अद् म्य ल'बूम ज़नस ज़ान ।
सुय यलि ड्यूंठुम निशि पानस ।
सोरुय सुय तय बो नो केंह ॥ १२६॥

क-१००। ग-२६। चि-३८। शि-४१ ग्रि-३१। पा-५१

मकरस	ज़न	मल	चो'लुम	मनस
शीशे से	मानो	मैल	उतर गई मेरे	मन की
अद्	म्य	ल'बूम	ज़नस	ज़ान
तभी	मैंने	पाया	आत्मा का	परिचय
सुय	यलि	ड्यूंठुम	निशि	पानस
उस को	जब	देखा	पास	अपने
सोरुय	सुय त्	बो	नो	केंह
सब कुछ	वही तो	मैं	कुछ	भी नहीं

अर्थात, जब मेरे मन के शीशे का मैल समाप्त हुआ तो मैं ने स्वात्म को जान लिया। उस शिव को जब अपने पास ही देखा तो पाया कि वही सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं। अर्थात, मन से मैल उतर जाऐ तो ईश्वर की पहचान हो जाती है और वही सर्वत्र दिखाई देता है।

' मकरस ' - संस्कृत मुकुर - दर्पण, आईना।

मल व्वंदि ज़ोलुम ।
जिगर मोरुम ।
त्यलि लल नाव द्राम ।
ये'लि द'ल्य त्रा'विमस तती ।। १२७।।

क-८६। ग्रि-४८। पा-३७।

मल	व्वंदि	ज़ोलुम	जिगर	मोरुम
मैल	हृदय की	जला दी	कलेजे को	दबा दिया
त्यलि	लल	नाव	द्राम	
तभी	लल नाम	प्रसिद्ध	हुआ मेरा	
ये'लि	द'ल्य	त्रा'विमस	तती	
जब	दामन अपना	फेलाकर डेरा	वहीं	(जमा लिया)

अर्थात, मैंने अपने मन के मैल को हटाया। जिगर को मारा, अर्थात इच्छाओं का दमन किया। जब अपना दामन फेलाकर वहीं उसी के पास डेरा जमा लिया। तभी मेरा नाम 'लल' प्रसिद्धि पा गया। अर्थात, मैंने एक पल भी उसका साथ नहीं छोडा। ऐसे ही भाव को वाख ४७ में व्यक्त किया गया है। 'म्यति कल गनेयम ज़ि ज़ोगमस तती' अर्थात मेरी लगन बढगई और मैंने उसी प्रभु के द्वार पर अपना डेरा जमा लिया।

मुहावरा - ' दो'ल त्रा'विथ बिहुन' - डेरा जमाकर बैठना।

मा'रिथ पाँच़ बूथ तिम फल हं'ड्य ।
चीतन दान् वखुर ख्यथ ।
तदय ज़ानख परम् पद च़ं'ड्य ।
हिशी खो'श खोवुर कोह ति ना ख्यथ ।।१२८।।

क-६०। ग्रि-७७। शि-१७६।

मा'रिथ	पा'न्च़	बूथ	तिम	फलहं'ड्य
मार के	पांच	भूतों को	वह जो हैं	मोटे भेडू (जैसे)
चीतन	दान्	वखुर	ख्यथ	
चीतन	दाने की	निहारी	खाकर	
तदय	ज़ानख	परम्	पद	च़ं'ड्य
तभी तो	जानोगे	परम	पद	पाने की विधि
हिशी	खो'श खोवुर	कोह ति	ना	ख्यथ
एक ही बात	बाएं दाएं	कोई भी(हानि)	नहीं (करेंगें)	खाकर भी

अर्थात, उन पांच भूतों को मारो जो मोटे भेडूं की तरह हैं। जो मनुष्य की चेतन शक्ति रूपी दाने की नहारी खाकर मोटे ताज़े हो गये हैं। इन्हें मारकर ही तुम परम पद को पा सकते हो। फिर यह दायें जायें या बायें तो कोई अंतर नहीं पडता।

भावार्थ- काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार मनुष्य की चेतन शक्ति का उत्कृष्ट उपयोग करते हैं और दिनोंदिन इन का क्षेत्र बढता ही जाता है। इन को मार कर अर्थात नियंत्रण में रखकर मनुष्य को परम पद मिल सकता है। फिर इनके कहीं दायें कहीं बायें या उलटा सीधा जाने यहां तक कि इनके भोगने से कोई अंतर नहीं पडता है।

म्यथ्या कपट असथ त्रोवुम ।
मनस को'रुम सुय व्यपदीश ।
ज़नस अन्दर कीवल ज़ोनुम ।
अनस ख्यनस कुस छुम द्वीश ।। १२६।।

क-५८। ग-१२। शि-१५२।

म्यथ्या	कपट	असथ	त्रोवुम
मिथ्या	कपट	असत्य	छोडा मैंने
मनस	को'रुम	सुय	व्यपदीश
मन को	किया मैंने	वही	उपदेश
ज़नस	अन्दर	कीवल	ज़ोनुम
जन जन	में	उसी परमात्मा	(को) जाना
अनस	ख्यनस	कुस	छुम द्वीश
(फिर) अन्न	खाने में	कौन सी	है घ्रणा

अर्थात, मैंने मिथ्या, असत्य और कपट को छोड दिया और मन को ऐसा ही करने का उपदेश दिया। हर जन में उसी परमेश्वर को देखा फिर (व्रत के दिन) अन्न खाने में क्यों घ्रणा है? अर्थात ललेश्वरी उस स्तर पर पहुंच चुकी थीं जिसको पाने के लिए व्रत को धारण किया जाता है।

भावार्थ, पूर्णता को प्राप्त कर व्रतों के दिन खाना खाने में कोई दोष नहीं है। व्रत तो मन को दृढ तथा पवित्र बनाने और झूठ कपट छल आदि से छुटकारा पाने के लिए धारण किया जाता है। ललेश्वरी ने तो छल आदि को त्याग दिया था। इस कारण व्रत के दिन अन्न खाने में उन्हें कोई दोष नहीं था। इस वाख का यही भाव है।

यथ सरस स'र्य फो'ल ना व्यच़ी ।
तथ सरि सक़्ल्य पोन्य च्यन ।
मृग स्रगाल गं'ढ्य ज़ल़् ह'स्य ।
ज़्यन न ज़्यन त़् तो'तुय प्यन ।। १३० ।।

क-११४। चि-४२। ग्रि-४७। शि-४७। पा-५६।

यथ	सरस	सिर्य	फो'ल	ना व्यच़ी
जिस	सर को	चावल की एक	कनकी	कुछ नहीं माने
तथ	सरि	सक़्ल्य	पोन्य	च्यन
उसी	सर में	सारे जीव	पानी	पीते हैं
मृग	स्रगाल	गं'ढ्य	ज़ल़्	ह'स्य
मृग	गीदड	गेंडे	जलचर	हाथी
ज़्यन	न ज़्यन	त़्	तो'तुय	प्यन
जन्म	लेते ही	और	फिर इसी में	गिरते हैं

अर्थात, जिस सरोवर को चावल का एक छोटा दाना 'कनकी' भी कुछ न माने या जो सर कनकी से भी छोटा है (अर्थात बिंदु जितना बडा है)। उसी में मृग, गीदड, गेंडे, दर्यायी घोडे, हाथी जैसे विशाल शरीरधारी जीव जन्म लेकर इसमें रहकर इसी का पानी पीते हैं और फिर मर कर इसी में समा जाते हैं।

विशेष, यहां ईश्वर के बिंदु रूप की ओर इशारा है। ' स'र्यफो'ल या सिर्यफो'ल ' - कनकी। विष्टभ्याहममिदंएकांशेनस्थितो जगतः, भगवद्गीता - १० (४२)। अर्थात, यह सारा जगत मेरे एक बिंदु में समाया हुआ है। जिस प्रकार सहस्रों सूर्य जितना आकार वाला ग्रह एक बिंदु में परिवर्तित हो जाता है जिसे अंतरिक्षीय ब्लैक-होल कहते हैं उसी प्रकार समस्त ब्रह्मांड एक बिंदु में समाए हुए हैं।

चिरागी ने ' सिर फो'ल ' के स्थान पर सरसों लिखा है और भासकर ने संस्कृत अनुवाद में सरशफ कहा है, अशुद्ध हैं।

यिह यिह कर्‌म को'रुम सुह अरचुन ।
यि रसनि व्वच्च़ोरुम तिय मन्थ्‌र ।
यिहोय लोगमो दिहस परचुन ।
सुय यिह परम्‌ शिवुन तन्थ्‌र ।। १३१।।

क-१३६। ग्रि-५८। शि-४६।

यिह यिह	कर्‌म	को'रुम	सुह	अरचुन
जो जो	मैंने कर्म	किया	वही	शिव पूजा
यि	रसनि	व्वच्च़ोरुम	तीय	मन्थ्‌र
जो भी	जीह्वा से	उच्चारण किया मैंने	वही	मंत्र है
यिहोय	लो'गमो	दिहस	परचुन	
यही	लाया (आरंभ किया)	देह [illegible]	व्यवहार में	
सुय	यिह	परम्‌	शिवुन	तन्थ्‌र
तो वह	यही है	परम	शिव का	तंत्र

अर्थात, मेरे सारे कर्म शिव की अर्चना हैं। मेरे मुख से निकली वाणी ही शिव मंत्र है। यही बात अपने देह के लिए भी व्यवहार या प्रयोग में लाई। यही परम शिव का तंत्र है । अर्थात जो कुछ भी मेरे शरीर मन आदि द्वारा कर्म हो रहे हैं उनके कर्ता स्वयं शिव ही हैं। यहां तक कि मेरा शरीर भी वही शिव ही है। मैं तो केवल निमित मात्र हूं।

शिबन कृष्ण ने ' वो'च़्च़ोरुम' (उच्चारण) के स्थान पर व्यच़ोरुम (विचार किया) लिखा है जो अशुद्ध है क्योंकि जीह्वा से विचार नहीं किया जासकता है।

रावन् मंज़् रावुन रोवुम ।
रा'विथ अथि आयस भव्सरय ।
असन गिंदन सहज़्य प्रोवुम ।
दपन्य को'रुम पानस सरय ।। १३२।।

क-१४७। शि-१४१।

रावन्	मंज़्	रावुन	रोवुम
खोने	में ही	मेरा खोना	खो गया
रा'विथ	अथि	आयस	भव्सरय
खोकर ही	सफल	हुई मैं	भवसागर में
असन	गिंदन	सहज़्य	प्रोवुम
हंसते	खेलते	सहज़ को	पा लिया मैंने
दपन्य	को'रुम	पानस	सरय
शब्द लेते ही	किया (लिया)	स्वयं ही	अनुभव

अर्थात, मैं आध्यात्मिक पहेलियां सुनते पढते भूल भुलैयों में खो गई थी। गुरु से शब्द लेते ही उसी शब्द में गहरी खो गई। इसी खो जाने से मेरा वह (प्रारंभिक) खोना समाप्त हो गया तथा मैं बडी आसानी से सहज अर्थात परमात्मा को पाने में सफल हुई।

' सर् करुन ' - स्वयं आज़मा कर पालेना। यही त्रिकशास्त्र का विधान है कि स्वयं अनुभव करो।

अध्याय २ वाख २० में श्री गोपी नाथ ने रावन का अर्थ राजा रावन बताया है जो समीचीन नहीं है।

मुहावरा - ' असन त् गिंदन ' - खेल खेल में - बडी सरलता से

श्यह वन च़'टिथ श्यशकल वुज़्म ।
प्रक्रथ हो'ज़्म पवन् सूतिय ।
लोलूकि नार् वा'लिंज बुज़्म ।
शंकर लो'बुम तमिय सूतिय ।। १३३।।

क-६३। चि-६६। ग्रि-२५। शि-६०। पा-३८।

श्यह वन	च़'टिथ	श्यशकल	वुज़्म
छः वन	लांघकर	शशिकल	प्रस्फुटित हुई मेरी
प्रक्रथ	हो'ज़्म	पवन्	सूतिय
प्रकृति (शरीर)	खाली (निर्मल) हुई	पवन (प्राणायाम)	द्वारा
लोलूकि	नार्	वा'लिंज	बुज़्म
प्रेम की	अग्नि से	हृदय को	भून लिया
शंकर	लो'बुम	तमिय	सूतिय
शंकर	पाया	इसी कारण	से

अर्थात, छः भूमिकाएं पार कर के शशकल (सहस्रार में निकलने वाला अमृत जो सारे शरीर को आनंदित करता है) फूट पडी और प्रकृति को प्राणायाम से निर्मल बनाया। प्रभु प्रेम की अग्नि में अपने को भस्म किया तभी शंकर को पा लिया।

' श्यह वन ' - अभ्यास के छः पडाव, १ - मूलाधार। २ - स्वाधिष्ठान। ३ - मणिपूरक। ४ - विशुद्ध चक्र। ५ - आज्ञाचक्र। ६ - सहस्रार।

योग की भूमिकाएं - आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारना, ध्यान तथा समाधि। त्रिक् में यम नियम नहीं है। ' हो'ज़्म '- साफ अथवा निर्मल किया (जैसे ' हो'दुय बत् ' अर्थात खाली चावल।)। पारिमू ने ' हो'ज़्म ' - 'जलादी' अर्थ दिया है जो संगत नहीं है।

शिन्यहुक मा'दान को'डुम पानस ।
म्य ललि रूज़्म न ब्वद न होश ।
व्यज़्य सा'न्पनूस पानय पानस ।
अद् कमि गिलि फो'ल्य ललि पमपोश ।। १३४।।

क-१०३। ग-३६। शि-१५१। पा-१०० ।

शिन्यहुक	मा'दान	को'डुम	पानस
शुन्य का	मैदान	पार किया	स्वयं मैंने
म्य ललि	रूज़्म न	ब्वद	न होश
मुझ लल को	रहा ना	हवास	ना होश
व्यज़्य	सा'न्पनूस	पानय	पानस
जान	गई	स्वयं ही	अपने आपको
अद् कमि	गिलि	फो'ल्य ललि	पमपोश
तो किसी भी	गिल[1] में	खिल उठे लल के	कमल

अर्थात, मैंने शून्य अवस्था को पार किया तो मुझे कोई होश न रहा। ललेश्वरीजी के शब्दों में कि मैंने अपने आप को स्वयं जान लिया तो मेरे गिल[1] फूलों के स्थान पर कमल खिल उठे।

१ - ' गिलि टूर्य ' - एक फूल का नाम। जैसे ' सुलि फ'ल्य गिलि टूर्य '।

'गिल' - जल में तैरने वाला छोटा सुंदर पक्षी जो डलझील में अधिक संख्या में मिलते हैं।

कौल १०३- हिलि तथा पारिमू १००- 'कलि' दोनों का दिया अर्थ केवल कल्पनाओं की उपज है।

संसारस आयस तपसे ।
ब्वद्ध प्रकाश् लो'बुम सहज़ ।
मरच्यम न् कोंह मर् न् कां'से ।
मर् नेछ़ त् लस् नेछ़ ।। १३५।।

क-१०५। चि-६२। शि-६२।

संसारस	आयस	तपसे		
संसार में	आई	तपस्या के लिए		
ब्वद्ध	प्रकाश्	लो'बुम	सहज़	
बुद्धि	प्रकाश से	पा लिया	सहज को	
मरच्यम	न्	कोंह	मर् न्	कां'से
अब मरूं	न	किसी के लिए	मरूं न	किसी की
मर्	नेछ़	त्	लस्	नेछ़
मरूं	तो वाह	जियूं	तो	वाह

अर्थात, मैं संसार में तपस्या के लिए आई और बुद्धि प्रकाश से सहज अर्थात स्वात्म को पा लिया। अब न मरूं किसी के लिए और न मरूं किसी की। फिर मरूं तो वाह जियूं तो अच्छा।

भावार्थ, स्वात्म अवस्था में मरने जीने की अवस्था से परे का अनुभव प्राप्त करना ही अभीष्ट है।

' नेछ़ ' - ' नेशनावन् युन ' - वाह वाह, सुप्रसिद्धि पाना।

स्वर्गुक्य जामृ त्रा'विथ अलख प्रोवुम ।
दग ललना'वृम दयि संज़ि प्रये ।
पो'त ज़ूनि वथिथ मो'त वुज़नोवुम ।
चेन तृ मालि कुलिस प्यठ न्यंदृर प्यये ।। १३६ ।।

क-२०३। चि-७७।

स्वर्गुक्य	जामृ	त्रा'विथ	अलख	प्रोवुम
स्वर्ग का	वैभव	त्याग कर	अलख	पा लिया मैंने
दग	ललना'वृम	दयि	संज़ि	प्रये
पीढा	सहती रही	प्रभु	के	प्रेम की
पो'त	ज़ूनि	वथिथ	मो'त	वुज़नोवुम
प्रातः	काल	उठ कर	प्रियतम को	जगाया
चेन तृ	मालि	कुलिस प्यठ	न्यंदृर	प्यये
समझो	प्यारे	पेड पर	नींद	आएगी कैसे

अर्थात, स्वर्ग के वस्त्र त्यागकर तथा पीडा सहकर अलख पाया और प्रभात के समय उठकर प्रभु का स्मरणा करती रही। मानो कि मैं पेड पर सो रही हूं अर्थात मुझे सदा ही जागरूक रहना पडता है। यही शैवमत का शांभव उपाय है।

मुहावरा - ' कुलिस प्यठ न्यसर प्यन्य ' - जिसका अर्थ है जागरूक या सदा ही सचेत रहना। पेड पर सोने से सदा गिरने का भय रहता है। इस हेतु अर्थ है 'नींद पर नियंत्रण'। लेखक को रात के समय बादामों की रखवाली के समय पेड पर सोने का अनुभव है।

कौल ने इस वाख के नोट में इस बारे में अशुद्ध धारणा की अभिव्यक्ति की है कि 'चौथी पंक्ति को ज़बरदस्ती ठोंसा गया है', ठीक नहीं है'। अपितु इस चौथी पंक्ति का वज़न भी है और यह मूल वाख के अर्थ के साथ मेल भी खाती है।

क्वल तय म्वल कथ क्युत छुय ।
तो'त क्युत छुय शांत स्वभाव ।
क्रेयि हुंद आगुर वति क्युत छुय ।
अंतिह क्युत छुय ग्वर् सुन्द नाव ।। १३७।।

क-२४२।

क्वल	तय	म्वल	कथ क्युत	छुय
कुल	तथा	मूल्य (धन)	किस उद्देश्य के लिऐ	चाहिए है
तो'त	क्युत	छुय	शांत	स्वभाव
वहां	के लिए	चाहिए है	शांत	स्वभाव
क्रेयि हुंद	आगुर	वति	क्युत	छुय
क्रिया का	स्रोत (प्रभु)	रासते	के लिए	चाहिए है
अंतिह	क्युत	छुय	ग्वर् सुन्द	नाव
अंत	के लिए	चाहिए है	गुरु का	नाम

अर्थात, कुल और धन किस लिए चाहिए है तुम्हें। वहां के लिए तो शांत स्वभाव ही चाहिए। क्रिया का जो स्रोत अर्थात प्रभु है वही पथ में काम आता है और अंत में तो गुरु का नाम ही काम आता हैं।

विषेशः- इस पद में चलने की क्रिया दृष्टिगोचर होती है। जैसे 'तो'त क्युत, वति क्युत' आदि ललेश्वरी जी की क्रिया इसके उलट में है जैसे १३२,१३३ आदि पदों में अपने अंदर ही ललेश्वरी ने सर्वस्व पाया है।

शयि आ'स्स शे'य छस ।
लल बो पानय पानस छस ।
नीरिथ गछ़न तीलिथ यिवन ।
मीलिथ पान् दयी छस ।। १३८।।

क-१६४।

शयि	आ'स्स	शे'य	छस
आशावान	थी मैं (और)	(लक्ष्य के लिए) आशावान	हूँ
लल बो	पानय	पानस	छस
(कि) लल मैं	स्वयं ही	स्वयं	सब हूं
नीरिथ	गछ़न	तीलिथ	यिवन
बाहर	जाती हूँ	देखकर	आती हूँ
मीलिथ	पान्	दयी	छस
मिली हुई	स्वयं	प्रभु	हूँ

अर्थात, 'लक्ष्य मेरे साथ है' ऐसा मेरा विश्वास था और अभ भी मेरा लक्ष्य है कि मैं स्वयं ही हूं। स्वयं जाती हूँ और उसे मिलकर आती हूं क्यों कि स्वयं उस प्रभु से मिली हुई हूं।

भावार्थ - प्रभु के साथ लय होने से तो स्वयं प्रभु ही हो गई हूँ अर्थात मैं षड्गुण सम्पन्न हूँ।

शिव के छः अंग हैं १. सर्वज्ञता, २. तृप्ति, ३. अनादिबोध ४. स्वतन्त्रता, ५. नित्यमलुप्तशक्ति ६. अनन्तशक्ति।

६ पराग

उपदेशात्मक वाख

(वाख १३६ से १६२ तक)

इस भाग में ललेश्वरी के द्वारा प्राप्त तथा व्यक्त अनुभवों को उपदेशात्मक वाखों के तोर पर दर्शाया गया है। छट्टी अवस्था 'पराग' एवं अनुभव का साधारणीकरन भी सम्मिलित किया गया है अर्थात हृदय तथा आत्मा की मुक्त अवस्था जिस में ललेश्वरी के अनुभवों की अभिव्यक्ति को दर्शाया गया है।

यहां पर लल, का कुंभ सागर बन कर तथा अभ्यास के प्रचंड तेज से शीतल बादल बन कर प्रकृति को शान्ति प्रदान करने हेतु अपने आनंद अनुभव की वर्षा करने की अवस्था में आ गई हैं तथा खिले हुए सुगंध युक्त पुष्प की तरह लोक हिताय पराग बिखेरती हैं।

अभ्या'स्य सविकास लयि व्थू ।
गगनस सगुन म्यूल समि च्र्टा ।
शून्य गो'ल तू अनामय मो'तू ।
युहय व्पदीश छुय बटा ॥ १३६॥

क-१३४। शि-६८। ग्रि-१। पा-३६।

अभ्या'स्य	सविकास	लयि	व्थू
अभ्यास से	विकास पाकर	लीन (होने का)	प्रयत्न कर
गगनस	सगुन	म्यूल	समि च्र्टा
आकाश के साथ	सगुण	विलय कर	समतुल्य जुडकर
शून्य	गो'ल	तू अनामय	मो'तू
शून्य (यह भी)	लय हुआ (जब)	फिर अन्नाम ही	शेष रहा
युहय	व्पदीश	छुय	बटा'
यही	उपदेश	है (तेरे उपयोग के लिऐ)	ऐ पंडित

अर्थात, अरे पंडित साधक ! अभ्यास द्वारा अपना विकास पाने हेतु लीन होने का प्रयत्न कर। सगुण रूप को गगन या शून्य अर्थात निर्गुण से मिलाकर फिर शून्य का भी विचार त्याग। तब अनाम ही शेष रहेगा। वही तेरा अद्वैत रूप अर्थात परम शिव का स्वरूप है। यही तेरे लिए उपदेश या रास्ता। है इसी को अपना कर चल।

विशेष - इस वाख में शांभव, शाक्त तथा आणव उपायों में से शांभव योग द्वारा अद्वैत अवस्था प्राप्त करने की भूमिका का वर्णन है जो त्रिक् में सर्वप्रथम कराया जाता है। (कठिन से सरल की ओर विधि)। दूसरे वाख में उस अवस्था के बारे में साधक को स्मरण कराया जाता है जिस अवस्था में उसे जागरूक रहना है। अर्थात शांभवी स्थिति का वर्णन है।

' च्रट या च्र्ठ ' - जोड को ठीक कसकर बिठाना । सटीक। जैसे चौकाठ का च्र्ठ। 'त'र' को त्रम (छेद) में ऐसे बिठाना कि जोड का पता भी न लगे। ('मो'तू'-म्वच्योव- शेष।) व्थू - उठो, प्रयास करना। 'व्थ छांठ' शब्द का क्रिया रूप। पाठ -पा ३६ अभ्या'सी स्वविका'स्य। 'बट्'- कशमीरी पंडित के लिए (विशेष संबोधन)।

वाख मानस क्वल अक्वल ना अते ।
छ़'वपि मुदरि अति ना प्रवीश ।
रोज़न शिव शक्ति ना अते ।
मो'तयय कोंह त् सुय व्वपदीश ।। १४० ।।

क-१३५। ग्री-२। शि-५६। पा-४०।

वाख	मानस	क्वल	अक्वल ना	अते
वाख वाणी	मन	कुल	अकुल नहीं	वहां
छ़'वपि	मुदरि	अति	ना	प्रवीश
मौन	मुद्रा का (भी)	वहां	नहीं	प्रवेश
रोज़ान	शिव	शक्ति	ना	अते
रहते	शिव	शक्ति भी	नहीं	वहां
मो'तयय	कोंह	त्	सुय	व्वपदीश
शेष रहता है	जो कुछ भी	तो	उसी को मान	उपदेश

यहां परम शिव की अवाक् अवस्था का वर्णन है अर्थात, वाणी, मन, कुल, अकुल (समस्त सृष्टि) इधर नहीं हैं। मौन मुद्रा द्वारा यहां प्रवेश नहीं होता। शिवशक्ति इधर नहीं रहते अब शेष जो कुछ रहता है उसी को पाने का उपदेश ले और उसे प्राप्त कर। इस पद में शांभव उपाय की स्थिति का निरूपण है। जिसमें निश्चिंत अवस्था (थाटल्यस स्टेट - कश्मीर शैविज़म , स्वा० लक्ष्मण जी, अध्याय ५ - पृष्ठ ३३) का वर्णन है। साधक को इसी अवस्था में रहकर जागरूक रहना पडता है। यह जागरूकता इतनी प्रबल होती है कि दूसरे उपायों की आवश्यकता नहीं रहती। इसमें इच्छा शक्ति की प्रधानता है। इस अवस्था में वाणी (पश्यन्ति से मध्यमा से वैखुरी की ओर यात्रा - स्वामी गोविन्द कौल, जीवनी, अध्याय ६ पृष्ठ ४३), मन के विषय अथवा मन का हस्तक्षेप

वहां नहीं है, 'क्वल' (३६ तत्वों का कुल या कुटम्ब जैसे पांच महाभूतों का कुल अथवा पांच सूक्षम घ्राणादि तत्वों का कुल, कर्म एवं ज्ञान इंद्रियों का कुल, अहंकार, छः कुंचिकाओं तथा शुद्ध तत्वों का कुल अर्थात सृष्टि प्रवेश)। अक्वल अर्थात कुल से परे (तीन गुण, सत्व, रजस, तमस जो तत्वों की परिधि में नहीं आते) जो हैं, इस अवस्था में विद्यमान नहीं। मौन रहने से भी इस अवस्था में प्रवेश नहीं होता है। (इन दोनों वाखों में गुरु का उपदेश निहित है), इस अवस्था में शिव शक्ति का भी संकल्प नहीं। शेष रहता है वही शांभवी अवस्था है।

यह परमशिव की अवस्था है जहां मन वाणी आदि सब लय होकर शेष कुछ भी नहीं रहता है।

टिप्पणी - संत मत के अनुसार यह अवस्था अगम अनामी दयाल देश कहलाती है। स्वामी गोविंद कौल (वनपोह) के शब्दों में -

'न तति मूज़ूद न तति फना अमा सना पथ क्या रूद।

न कुन ज़ो'ना न दो'गुना रिंद् अथ शायि गय रबूद,-। अर्थात न वहां वह मौजूद है न ही शून्य तो शेष क्या रहा? न अकेला है और न कोई दूसरा। यहां रिंद अर्थात वीर भक्त मौन हो गए आदि'। यह भजन ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू को अत्यंत प्यारा था और स्वामी जी के पास जब जाते थे तो उनके मुख से यही भजन सुनाने का अनुरोध करते थे।

'क्वल' - तत्वों का परिवार। 'अक्वल' - त्रिगुण परिवार जो तत्त्वों के परिवार में नहीं आते।

चा़मर छ'त्र रथ सिहांसन ।
हलाद ना'ट्यरस तुल् प्रेंख ।
क्या मानिथ यति सिथिर आसुन ।
कव् ज़न कासिय मरनून्य शेंख ।। १४१।।

क-१२। शि-२२। ग्रि-७३। पा-६४।

चा़मर	छत्र	रथ	सिहांसन
चामर	छत्र	रथ	सिंहासन
हलाद	ना'ट्यरस	तुल्	प्रेंख
आह्लाद	नाटक-रस	रेशमी	पर्यंक (पलंग)
क्या मानिथ	यति	सिथिर	आसुन
कैसे माना कि	यहां	स्थिर	रहेंगे
कव्	ज़न	कासिय	मरनून्य शेंख
कैसे	फिर	काटे गा	मरने की शंका

अर्थात, चामर, छत्र, रथ (आज के जहाज़, कार आदि), सिंहासन (ऊंची पदवी) आहलाद, मनोरंजन जैसे नाच नगमा, नाटक का रस लेना (आज का सिनेमा फिल्म आदि), रेशमी पलंग रखना आदि ऐश्वर्य के सारे सामान को तूने कैसे मान लिया कि ये यहां पर स्थिर रहेंगे। इनसे मरने की शंका (डर) तो नहीं हटेगी?

भावार्थ - ऐश्वर्य के भौतिक सामान अस्थाई हैं। इन से मरने का डर समाप्त नहीं होता है। न ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

विशेष - पारिमू ने इस पद में ' कासिय ' का अर्थ परमात्मा दिया है और ' तुल ' को रूई का अर्थ दिया है। जबकि ' तुल ' अर्थात तूत पेड पर रेशिम के कीडे पलते हैं। अतः ' तुल् प्रेंख ' - रेशमी पलंग। प्रेंख - पर्यंक (सं) - पलंग एवं पालकी का अर्थ निकलता है।

क्याह बो'डुख मूह भव् सो'दर् दारे ।
स्वथ लूहरिथ प्ययिय तम् पां'ख ।
यम्बठ करिन्यय का'ल्य छोर् दारे ।
कव् ज़न कासिय मरनून्य शेंख ।। १४२।।

क-१३। ग्रि-७४। पा-६५।

क्याह	बो'डुख	मूह भव्	सो'दरि	दारे
क्यों	डूबा	मोह रूपी भव	सागर की	धारा में
स्वथ	लूहरिथ	प्ययिय	तम्	पां'ख
बल एवं चेतना	टूटने पर	पडेगा (छा जाएगा)	गहरा	अंधकार
यम् बठ	करिन्यय	का'ल्य	छोर्	दारे
यम दूत	करेंगें बुरा हाल	समय आने पर	तेरे (तंबू रूपी)	शरीर का
कव्	ज़ न	कासिय	मरनून्य	शेंख
किस	प्रकार	समाधान होगा	मृत्यु की	शंका (का)

अर्थात, हे मनुष्य! तुम संसार रूपी सागर (धन तथा पुत्र आदि) के मोह रूपी लहरों में क्यों डूबा है। समय आने पर निर्बल होकर तेरी आंखों में गहरा अंधकार छा जाएगा फिर समय पर यमदूत तेरी छोलदारी अर्थात शरीर का बुरा हाल करेंगे। यह मोह तेरे मृत्यु की शंका कैसे मिटा सकता है। (क्योंकि अपने आप को पहचानने से ही मृत्यु का डर नहीं रहता। अपनी पहचान मोह का त्याग करने से प्राप्त होती है)।

शब्दार्थ - ' छोर्दारे ' - छोलदारी, छोटा सा तंबू अर्थात शरीर। (ग्रि - पानी की धारा)। ' पां'ख' - एक उडने वाला कीडा जो आंख में घुसजाने से सामने अंधेरा छा जाता है। 'पां'ख' पंक अर्थात काला कीचड हो सकता है। बठ - खो'ब्यदार बनावुन, बेढंगा बनाना। कौल वाख १३ में- 'स्वथ का अर्थ' 'पुलि शिकस्ता' दिया है जब कि 'स्वथ'-(ह्यकथ अर्थात बल) का अर्थ 'बल एवं चेतना' है।, जब कि पारिमू ६५- स्वथ का अर्थ किनारा दिया है। दोनों लेखकों का दिया अर्थ शुद्ध नहीं है।

कर्म ज़् कारण त्रे'ह कोंबिथ ।
यव् लबख परिलूकस आं'ख ।
व्वथ खस सिर्यमण्डल छ़ो'मबिथ ।
तवय च़लिय मरन्न्य शेंख ।। १४३।।

क-१०१। ग्रि-७५। शि-१७७। पा-९६।

कर्म ज़्	कारण	त्रे'ह	कोंबिथ
कर्म दो	कारण	तीन से	आगे जाकर (अभ्यास से)
यव्	लबख	परिलूकस	आं'ख
जिस से	प्राप्त होगा तुझे	परिलोक का	अनुमान
व्वथ	खस	सिर्य मण्डल	छ़ो'मबिथ
उठ (और)	चढ जा	सूर्य मण्डल	चाक करके (तकनीक से)
तवय	च़लिय	मरन्न्य	शेंख
उसी से	कटे गी तेरी	मरने की	शंका

अर्थात, दो कर्म (सत या भगवत प्राप्ति के लिए कर्म और असत अर्थात भगवत प्राप्ति से परे कर्म) तथा ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव, इन तीन कारणों से परे (ऊपर) होकर ध्यान कर तो तेरे परिलोक का भला होगा। उठ सूर्य मंडल को (तकनीक से) तय करके चढ अर्थात प्रकाश का साक्षात्कार कर तो तेरी मरने की शंका समाप्त हो जाएगी। ग्रीर्यसन ने तीन कारण को त्रिक के तीन मल माना है। कोंबिथ को कुंभक क्रिया माना है। मेरे विचार में 'कोंबिथ' का अर्थ' ऊपर एवं आगे होकर या छोडकर' अर्थ का स्रोत कोंब जैसे न'र्यकों'ब -(फेरन के बाजू का अगला भाग) है। यहां ब्रह्मा मणिपूरक विष्णु नाभि तथा हृदय शिव के स्थान हैं। इन के आगे का स्थान आज्ञाचक्र तथा उसके आगे सहस्रार है जहां प्रकाश के दर्शन होते हैं। वही प्रकाश सूर्य मंडल का है, क्योंकि सुषमना नाडी सूर्य नाडी है।

अ़से प्वंदे ज़्वसे ज़ामे ।
न्यथ्य स्नान करे तिर्थन ।
व्ह्र्य व'रियस नो'नुय आसे ।
निश छुय त् प्रज़नावतन ।। १४४।।

क-८४। ग-१६। शि-८। चि-११। पा-६१। ग्रि-४६।

अ़से	प्वंदे	ज़्वसे	ज़ामे
हंसता	छींकता	खांसता	जमाई लेता
न्यथ्य	स्नान	करे	तिर्थन
नित्य	स्नान	करता है	तिर्थों में
व्ह्र्य	व'रियस	नो'नुय	आसे
वर्ष	भर	दृश्यमान (प्रत्यक्ष)	रहता है
निश	छुय	त्	प्रज़नावतन
पास ही	है आपके	तो	उसे पहचानो

अर्थात, मनुष्य के अंतर में बैठी शक्ति के बल पर ही प्राणी हंसता है, छींकता है खांसता है, जमाई लेता है, तीर्थों पर जाकर स्नान की कांक्षा करता है, सारा वर्ष यही कार्य करते हुए दिखाई देता है, ललेश्वरी का कहना है कि वास्तव में प्रभू नित्य ही ये सारे काम करते रहते है, और वही प्रभु तो तेरे पास ही है। ज़रा उसे पहचानो तो।

भावार्थ - मनुष्य के अंदर ही भगवान बैठे हैं। केवल उसे पहचानने की देर है। देखें 'ओर् ति पानय योर् ति पानय' वाख ५६।

निरावरणमाभातिभात्यवृतः निजात्मकः। आवृतानावृतो भाति बहुधाभेदः संगमात।। मालिणिविजय वार्तिका १-६३--पृष्ठ १४० स्पेसिफिक प्रनसिप्लज़ ऑफ कश्मीर शैविज़म-पं बलजीनाथ।

अ'सिय आ'स्य तय असी आसव ।
असिय दोर क'र्य पतयवथ ।
शिवस सोरि न ज़्योन त् मरुन ।
रवस सोरि न अत् गत ।। १४५।।

क-११७। चि-५। शि-७५।

अ'सिय	आ'स्य	तय	असी	आसव
हम ही	थे पहले भी	और	हम ही	होंगे (आगे भी)
असिय	दोर	क'र्य	पतय	वथ
हम ही ने	दौर (कर्म)	किए	पहले	समय से ही
शिवस	सोरि	न	ज़्योन त्	मरुन
शिव का	समाप्त होगा	नहीं	जन्म तथा	मरण
रवस	सोरि	न	अत्	गत
सूर्य का	समाप्त होगा	नहीं	आना (अस्त)	जाना (उदय)

अर्थात, इस संसार में हम ही बहुत पहले से जीव के रूप में जन्म लेते और मरते आए हैं। नाम कमाने वाले कर्म करते रहे हैं । जिस प्रकार सूर्य का उदय अस्त तथा शिव का शरीर धारण करके पुनः त्याग करना निरन्तर है, और आगे भी रहेगा, इसी प्रकार जीव का जीना और मरना जारी रहेगा। कभी यही जीव राजा रहा है और कभी यही जीव दूसरे रूप में भिखारी बना। अर्थात, हम ही एक चोला छोडकर दूसरा चोला धारण करते आए हैं।

अज़पा गायत्रय हमस् हमस् ज़'पिथ ।
अहम त्रा'विथ अद् सुय रठ ।
ये'म्य त्रोव अहम सुय रूद पानय ।
बो न् आसुन छुय व्पदीश ।। १४६।।

क-१६८। चि-७। शि-१७४। पा-७३।

अज़पा	गायत्रय	हमस्	हमस्	ज़पिथ
अजपा जप	गायत्री मंत्र	मैं वह हूँ	मैं वह हूँ	जपकर
अहम	त्रा'विथ	अद्	सुय	रठ
मैं (अहंकार)	त्याग कर	फिर	उसी को	थाम
ये'म्य	त्रोव	अहम	सुय रूद	पानय
जिसने	त्यागा	मैं (अहंकार)	वही रहा	स्वयं ही
बो	न्	आसुन	छुय	व्पदीश
अहं	समाप्त	करना	यही है	उपदेश

अर्थात, सोहम (मैं वहीं हूं, शरीर नहीं) का अजपाजप जाप कर। सोहम (सः + अहं) से 'अहं' अर्थात 'मैं' में जो अहंकार का प्रतीक है को त्याग दे। फिर केवल 'सू' अर्थात वह परमशिव शेष रहेगा। 'मैंपन' का न होना अर्थात अहं का त्याग करना ही तेरे लिए श्रेष्ठ उपदेश है। सरांश यह कि 'मैं मैं' त्याग कर 'वह वह' ही में लीन होना साधक के लिए सर्वश्रेष्ठ उपदेश है।

कलन काल् ज़ो'ल्य यो'दवय चूय गो'ल ।
व्यंदिव गेह वा व्यंदिव वनवास ।
ज़ा'निथ सर्व गथ प्रभू अमो'ल ।
युथुय ज़ान्यख त्युथुय आस ।। १४७ ।।

क-११०। ग-६६। चि-६४। ग्रि-६४। पा-७७।

कलन	काल्	ज़ो'ल्य	यो'दवय	चूय गो'ल
मिटेगी	काल (समय) की	दराड	यदि	द्वैत मिटे
व्यंदिव	गेह	वा	व्यंदिव	वनवास
(फिर) मानो	घर	या	मानो	वनवास
ज़ा'निथ	सर्व	गथ	प्रभू	अमो'ल
जानकर	सब	गति	प्रभु की	निर्मल
युथुय	ज़ान्यख	त्युथुय	आस	
ज्यों ही	जानोगे	तो वैसा ही	हो जाओ गे	(निर्मल)

अर्थात, काल के फंदे अथवा दराड से तबी छूटेगा जब तुझ में ' मैं ' अर्थात 'द्वैत भाव' मिटेगा। फिर वनवास या घर में रहनेमें कोई अंतर नहीं है। यह जानकर कि जो भी (गतिविध) संसार में हो रही है उसी प्रभु की ही निर्मल गतिविधि है। ऐसा ज्यों ही जानेगा तो तू भी वही हो जाएगा, अर्थात अपनी वास्तविकता को प्राप्त होगा।

ज़ो'ल्य - दराड, मकान की नीव के लिए तंग दराड। 'ज़ा'ल्य' - फंदा।

भावार्थ - मनुष्य को अपनी वास्तविकता का ज्ञान तब होता है जब वह अपना 'मैं' का अहंकार मिटा देता है।

कायस बल छुय मायस ज़ागुन ।
प्राणस बल छुय शब्द् सो'रूफ ।
आयस बल छुय तत्व व्यद्व ज़ानुन ।
ज्ञानस बल छुय आदि अन्त तान्य ।। १४८।।

क-२४६। ग-६२।

कायस	बल	छुय	मायस	ज़ागुन
काया का	बल	है	तरलता (प्रेम) की	ताक में रहना
प्राणस	बल	छुय	शब्द्	सो'रूफ
प्राण का	बल	है	शब्द	स्वरूप
आयस	बल	छुय	तत्व व्यद्व	ज़ानुन
आयु का	बल	है	तत्व विज्ञान	जानना
ज्ञानस	बल	छुय	आदि अन्त	तान्य
ज्ञान का	बल	है	आदि (से) अंत	तक

अर्थात, काया का बल तरलता है। प्राणों का बल शब्द स्वरूप है। आयु का बल तत्व विज्ञान को जानने से है। यह सभी बल अस्थायी हैं परंतु ज्ञान का बल स्थाई है।

भावार्थ - तरलता से काया को बल मिलता है। शरीर में तरलता कम हुई तो काया निर्बल हो जाती है। वायु द्वारा ही शब्द उत्पन्न होकर सुना जा सकता है। तत्वों के ज्ञान से आयु को बल मिलता है। शरीर में तरलता, शब्द, तत्व, यह क्षीण हो जाते हैं किंतु ज्ञान का बल आदि से अंत तक रहता है।

लाक्षणिक अर्थ - वीर्य से काया को बल मिलता है। अर्थात शरीर के लिए तरलता आवश्यक है। प्राणों अर्थात प्राणायाम द्वारा ओंकार शब्द सुना जा सकता है। विज्ञान द्वारा तत्वों की वास्तविकता को जानने से आयु सार्थक होती है। तथा परम ज्ञान अर्थात अपने आत्मा को पहचानने से स्थाई आनंद प्राप्त होता है।

का'ली सथ क्वल् गछ़न पाता'ली ।
अका'ल्य ज़ल् मल् वर्शन प्यन ।
मामस टा'क्य तय मस की प्याली ।
ब्रह्मन तू चा'ली यिक्वट् ख्यन ।।१४६।।

क-१७०। चि-६७। शि-१६५।

का'ली	सथ	क्वल्	गछ़न	पाता'ली
समय आनेपर	सात	नदियां (वरदान)	(हो) जाएं गीं	पाताल को (लुप्त)
अका'ल्य	ज़ल्	मल्	वर्शन	प्यन
असमय	पर	मैली	वर्षा	होगी
मामस	टा'क्य	तय	मसकी	प्याली
मांस के	पात्र	तथा	शराब के	प्याले
ब्रह्मन	तू	चा'ली	यिक्वट्	ख्यन
ब्रह्मण	तथा	चांडाल	एक साथ	खाएंगे

इस वाख का प्रचलित लोक पाठ देखें-

मा'ज हा	मालि	करि	कोरे	द्रा'ली
मां ही	रे बाबा	करेगी	बेटी की	दलाली
ज़न्म्	निशि	सा'रिय	व'सिथ	प्यन

अर्थात, भविष्य वाणी करते हुए ललेश्वरी कहती हैं कि एक समय ऐसा आयेगा कि सातों उपहार पाताल लोक में चले जाएंगे। असमय मैली वर्षा होगी जिस से कोई लाभ नहीं होगा उतः हानी होगी। ब्रह्मण तथा चंडाल मिल बैठकर मांस तथा मदिरा का सेवन करेंगे। मां अपनी बेटी की दलाली करेगी और मानव जन्म अर्थात मानवता का सर्वत्र ह्रास होगा। अर्थात सारे मनुष्यों में चरित्र का पतन होगा।

कुस मरि तू कसू मारन ।
मरि कुस तय मारन कस ।
युस हरहर त्रा'विथ गरगर करे ।
अदू सु मरि तू मारन तस ॥ १५०॥

क-५४। शि-१३५।

कुस	मरि	तू	कसू	मारन
कौन	मरेगा	और	किस को	मारेंगें
मरि	कुस	तय	मारन	कस
मरेगा	कौन	और	मारेंगें	किस को
युस	हरहर	त्रा'विथ	गरगर	करे
जो	हरनाम	छोड कर	(केवल) घर घर	करे
अदू	सु	मरे तू	मारन	तस
तो	वही	मरेगा तथा	मारेंगे	उसी को ही

भावार्थ, संसार में आकर मरना तो सब ने है। मरने का भय प्रभु भक्ति से ही दूर हो सकता है, अर्थात प्रभु भक्त मरने वालों में से नहीं होते हैं। वे आवागवन में नहीं फंसते। वे तो सदा आत्मा में ही स्थित रहते है। प्रभु नाम स्मरण न करने वाले ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अर्थात जो भगवान का नामस्मरण त्यागकर केवल घर के कार्यों में लिप्त रहते है वे ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। भाव यह है कि घर में रहकर भी जो हर भगवान को भजता है वह भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है। अर्थात वे मृत्यु से नहीं डरते हैं।

केंहनस प्यठ्य क्या छुय नचुन ।
म्वच़िय केंह न् त् नचुन त्राव ।
पो'त फीरिथ छुय तो'तुय अचुन ।
यिहोय वचुन च़्यतस थाव ।। १५१।।

क-२३७। ग-६३।।

केंहनस	प्यठ्य	क्या	छुय	नचुन
शून्य	पर	क्यों	है तुम्हें	नाचना
म्वच़िय	केंह न्	त्	नचुन	त्राव
शेष रहेगा	कुछ नहीं	तो	नाचना	छोड दे
पो'त	फीरिथ	छुय	तो'तुय	अचुन
वापस	मुड कर	है	वहीं	अंदर जाना
यिहोय	वचुन	च़्यतस	थाव	
इसी	बात को	स्मरण	रखो	

अर्थात, इस असार संसार में क्यों अठखेलियाँ करता है। यहां कुछ प्राप्त नहीं होता है और न ही कुछ शेष रह जाता है। यह अठखेलियां करना छोड दे और मेरे इस तथ्य को स्मरण रखो कि अपने अंतर में ही जाना फलदायक है। शेष सारा व्यवहार अस्थायी है।

भावार्थ - यहां संसार की नश्वरता तथा आत्म साक्षात्कार की विधि का उपदेश है।

ख्यन् ख्यन करन कुन नो वातख ।
न ख्यन् गछ़ख अहंका'री ।
सो'मुय ख्यह मालि सोमूय रोज़ख ।
स्वमिय ख्यन् मुच़रनय बरन्यन ता'री ।। १५२।।

क-२७। चि-६०। शि-१३४। पा-८०।

ख्यन्	ख्यन	करान	कुन नो	वातख
(केवल) खाते	खाते (ही)	रहने से	कहीं नहीं	पहुंचोगे
न	ख्यन्	गछ़ख	अहंका'री	
न	खाने से	हो जाओगे	अहंकारी	
सो'मुय	ख्यह	मलि	सोमुय	रोज़ख
सम	आहार खा	रे बाबा	तो सम ही	रहो गे
स्वमिय	ख्यन्	मुच़रनय	बरन्यन	ता'री
सम	आहार खाने से	खुलेंगे तेरे लिए	दरवाज़ों के	किवाड, ताले

भावार्थ, केवल खाते ही रहने से सफलता नहीं मिलेगी और कुछ भी न खाने से तेरा अहंकार बढेगा। इस लिए सम (न कम न ज़्यादा) ही खाने से तू सम ही रहे गा जिस-से तेरे लिए वास्तविकता के दरवाज़े खुलें गें। सारांश यह कि हर कार्य समभाव से ही सम्पन्न करना चाहिए।

मुहावरा - ' कुन न वातुन ' - कुछ प्राप्त न होना।

ख्यथ ग'न्डिथ शमि ना मानस (दूर) ।
ब्रांथ यिमव त्रा'व तिमय गय ख'सित ।
शास्त्र बूज़िथ छुह यम् भय् क्रूर ।
सुह ना पो'च़ त् दन्या ल'सित ।। १५३।।

क-३०। चि-५५। शि-१५। ग्रि-२७।

ख्यथ	ग'न्डिथ	शमि	ना	मानस
खाने	(और) पहनने से	शांत	नहीं	मन होता
ब्रांथ	यिमव	त्रा'व तिमय	गय	ख'सित
संदेह	जिन्होंने	त्यागा वही	(पहुँच) गये	ऊंचाई पर
शास्त्र	बूज़िथ छुह	यम्	भय्	क्रूर
शास्त्र की	बात सुनकर है	मृत्यू का	भय	क्रूर
सुह ना	पो'च़	त्	द'न्य	लसित
वह नहीं	क्षमाकरना,	और	पवित्र	गुणयुक्त

इस वाख की पहली पंकित के स्थान पर 'खिना गन्डना निश मन। दूरो'। (ग्रिर्यसन वाख २७ पर स्टाइन-बी, जिससे 'दूर' का तुक 'क्रूर' के साथ मेल खाता है) के अनुसार अर्थ बनता है- कि खाने तथा पहनने से मन को दूर रखो। अर्थात निश्चिंत हो।

वाख का अर्थ-केवल खानेसे (फलाहार, कभी शाकाहार, केवल दूध पीना या व्रत रखकर एक समय खाना आदि) तथा पहनने (जैसे गेरवा वस्त्र, सादा या बहुमूल्य या रेशमी आदि पहनावा) से मनको शांत एवं नियंत्रण में नहीं किया जा सकता है। अपितु जिन्होंने सारी भ्रांतियां अर्थात संदेह एवं दुविधाएं त्याग दीं वे परमपद को पागए। शास्त्र सुननेसे काल भय अत्यंत क्रूर है और वह किसी को क्षमा नहीं करता किंतु वह गुणयुक्त तथा पवित्र भी है। भावार्थ-विभिन्न प्रकारके पहनावे तथा आहार से मन नियंत्रण में नहीं आता क्योंकि इच्छा से ही मन वासनाओं में फंसकार यमराज के दंड का भागीदार होजाता है। अपितु मनुष्य

पूर्ण समर्पण से ही ऊँचाई प्राप्त करता है। काल यद्यपि क्रूर तो है किंतु समर्पित मनुष्य को काल की परिधि से छुटकारा देता है। काल का अर्थ समय है और परमात्माके सामने आत्मसमर्पित मनुष्य अपने आपको भूलकर अर्थात देहाभिमान से मुक्त होकर समय की परिधि से बाहर आता है। और स्वतः ही कालभय से मुक्त होता है।

ब्रांथ-ब्रोंथ (संस्कृत भ्रांति)-संदेह, दुविधा, मतिभ्रम। पचुन-क्षमा करना, उधार देना। धन्या-(संस्कृत)-पवित्र। लसित(संस्कृत) लस्त-गुणयुक्त,प्रतापी। लसुन-गुणवान होने का आशीर्वाद।

ग्वर् शब्दस युस यछ़ पछ़ बरे ।
ज्ञान् वगि रटि च़्यत् त्वरगस ।
यंद्रे'य शो'मरिथ आनंद करे ।
अद् कुस मरे त् मारन कस ।। १५४।।

क-५५। चि-२५। शि-१३६।

ग्वर्	शब्दस	युस	यछ़ पछ़	बरे
गुरु	वाक्य (मंत्र) पर	जो	श्रद्धा तथा विश्वास	करेगा
ज्ञान्	वगि	रटि	च़्यत्	त्वरगस
ज्ञान की	लगाम से	पकडे गा	चित्त रूपी	घोडे को
यंद्रे'य	शो'मरिथ	आनंद	करे	
इंद्रियों को	वश में करके	आनंद	करेगा	
अद्	कुस	मरे त्	मारन	कस
फिर	कौन	मरेगा और	मारेंगे	किस को

अर्थात, गुरु के कहे शब्द पर जो पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास रखेगा और चित रूपी घोडे की लगाम ज्ञान द्वारा कस कर पकडे गा। इससे उसकी इंद्रियां नियंत्रण में रहेंगी फिर वह आनंद प्राप्त करे गा। फिर कौन मरेगा और किसे मारेंगे। अर्थात् यम, मृत्यु आदि का भय समाप्त हो जाएगा।

ज्ञान् मार्ग छय हाक वा'र्य ।
दिज़्यस शम्दम क्रय प'न्य ।
लामा-चक्र्-पो'श प्रा'न्य क्रय दा'र्य ।
ख्यन् ख्यन् म्वची वा'र्य छे'न्य ।।१५५।।

क-६२। शि-७३। ग्रि-६३। पा-६३।

ज्ञान्	मार्ग	छय	हाक्	वा'र्य
ज्ञान	मार्ग	है एक	साग की	वाटिका
दिज़्यस	शम्दम	क्रय	प'न्य	
गाढ दो (इस के गिर्द)	शम दम	क्रिया रूपी	खूंटे	
लामा-चक्र्-	पो'श	प्रा'न्य	क्रय	दा'र्य
गिर्द चक्कर लगाते	पशु	प्राणी	(वासना रूपी) क्रिया	धारी
ख्यन्	ख्यन्	म्वची	वा'र्य	छे'न्य
खा	खा कर	शेष रहेगा	सागज़ार (वाटिका)	खाली

अर्थात, ज्ञानमार्ग एक साग सब्ज़ी की खेत की तरह है। इस के गिर्द शम दम रूपी मज़बूत खूंटे गाड दो ताकि एक के पीछे एक होकर इस के गिर्द चक्कर लगाने वाले वासना युक्त क्रिया रूपी आवारा पशु प्राणी खेत में न घुस सकें। नहीं तो वह सारी सब्ज़ी (ज्ञान) खा जाएं गें। और शेष खाली खेत अर्थात अज्ञान ही रहेगा।

भावार्थ – ज्ञानमार्ग अर्थात आत्मज्ञान को दृढ़ रखने के लिए शम (इंद्रियों को काबू करना) दम (श्वासोश्वास को काबू करना) क्रिया को दृढता प्रदान करना आवश्यक है नहीं तो मार्ग से भटक जाने का भय है। इस वाख के अंतिम शब्द 'छे'न्य' की ध्वनि के अनुसार अंतिम शब्द 'वा'र्य, प'न्य दा'र्य' बनते हैं। किंतु (पा वा ६३) में 'प'न्य' को 'पोन्य' पानी

तथा लामा को ऐरावत हाथी मानकर अर्थ बताया तथा (क वा ६२) में 'लामा चक्र' को पिछले जन्म के कर्म रूपी बेड बकरियों को बलि देने का अर्थ दिया। मेरे विचार में इसके सरल अर्थ को उलझा दिया गया है।

लामा-च़कू़र- पंक्ति में गोल घूमने वाले, 'ल्वग चारवा'य अर्थात' आवारा पशु। सब्ज़ी की खेती के गिर्द लकडी के अनेक दंडों (चोब या टुरन) को साथ साथ खडा करके एक दीवार ('पलियार') बनाई जाती है। जिसको मज़बूत खूंटे गाड कर सशक्त किया जाता है ताकि पशु अंदर न घुस सकें। 'लाम' - एक के पीछे एक होकर चलना। (जैसे, चींटियों का दाने लेकर चलना) च़'कू़र - गोल चक्र । यदि एक पशु क्यारी में घुस गया तो पीछे पीछे सारे पशु घुस जाते हैं और क्यारी का सफाया करते है। इसी कारण कहा गया कि ज्ञान मार्ग गामी को शम दम अस्त्र से सुसज्जित रहना आवश्यक है। ज़रा सी चूक से गिरने का भय रहता है।

चरमन च'टिथ दितिथ प'न्य पानस ।
त्युथ क्या वव्योथ त् फलिही सोव ।
मूढस व्वपदीश ग'य रींज़्य डुमटस ।
क'न्य दान्दस गोर आपरिथ रोव ।।१५६।।

क-१६। ग्रि-६६। शि-७४।

चरमन	च'टिथ	दितिथ	प'न्य	पानस
चमडी	काट कर	दिए (गाढे)	खूंटे	अपने को
त्युथ	क्या	वव्योथ	त्	फलिही सोव
वैसा	क्या	बोया (बीज तू ने)	जो	उपजता अच्छा
मूढस	व्वपदीश	ग'य	रींज़्य	डुमटस
मूढ को	उपदेश देना	है	कंकरों से	गुंबद को (तोडना)
क'न्य	दान्दस	गोर	आपरिथ	रोव
पीले भूरे	बैल को	गुड	खिलाना है	व्यर्थ

अर्थात, तू ने (संसारी काम के लिए) स्वयं की चमडी को घला कर (कठोर शारीरिक परिश्रम करके) अपने को उसी में खूंटे गाढ कर उलझाये रखा है, और अपने अंदर शुभ फल देने वाला कोई बीज नहीं बोया। अर्थात तुमने कोई ऐसा शुभ कर्म भी नहीं किया जिसका फल तुम्हारे लिए शुभ होता। तुम समझाकर भी न समझे। ऐसे अल्पबुद्धि वाले को उपदेश देना वैसा ही है जैसे डुमट या गुंबद को छोटे कंकर मारकर गिराने की कोशिश करना है या पीले - भूरे बैल को (दूध देने के लिए) गुड खिलाना है।

भाव - यह एक भावपूर्ण वाख है। ललेश्वरी की यह कडवी चेतावनी लोगों के लिए दी गई है जो अपने अंतर में न जाकर तथा सत्यता का बीज न बोकर बाहरी आडंबर

एवं केवल भौतिक साधना जैसे केवल धन अर्जित करना, पोथियां पढना, हवन करना, व्रत रखना, चमत्कार दिखाना आदि के लिए कठिन परिश्रम करते हैं और भक्ति का बीज नहीं बोते हैं। पुनः कहा है कि इस कडवे सच्च को न अपनानेवाले मूर्खों को समझाना व्यर्थ ही है। (कौल-१६- में चमडा शब्द देखकर वाख को चमारी के साथ जोड दिया है जो भावार्थ के साथ सर्वथा अन्याय है) देखें कौल का दिया अर्थः-'काट ली है खाल तू ने फैलाया मेखें गाड कर' तथा वाख के नोट में दिया है ' जिस तरह चमार का काम यह है कि वह लाश से चमडा प्राप्त कर सुखाने के लिए फेलाता है'। यह काम तो चमार करते हैं। किंतु उपर्युक्त वाख ललेश्वरी का कदापि चमारी से जुडा नही है।

मुहावरे -

१ 'प'न्य दिन्य' - खूंटे गाडकर रखना अर्थात झकडे रहना।

२ 'चरमन च़टुन' - चमडी घलाना, कठोर परिश्रम करना।

३ 'रींज़्य डुमटस' - समझाने का व्यर्थ प्रयत्न करना।

४ 'कन्य दांदस गोर आपरुन' - वृथा प्रयत्न करना, कुछ न प्राप्त होना।

कुछ और मुहावरे - 'दाल़् वालुन पानस'-जीतोड परिश्रम करना। 'दाल़् गलुन'-चमडी घिसजाना-परिश्रम करत बेहाल होना। लिछि वालुन पोस्त - लीख की चमडी उतारना - असंभव को संभव बनाने की व्यर्थ चेष्ठा करना। दाल़् च़टुन - सख्त पिटाई करना। आदि।

अभ्यास् किन्य व्यकास फो'लुम ।
स्वप्रकाश ज़ोनुम यिहोय दीह ।
प्रकाश ध्यान म्वख यिय दोरुम ।
स्वख्य बो'रुम को'रुम तिय ।। १५७।।

क-२३०। बी-२५। शि-१७।

अभ्यास्	किन्य	व्यकास	फो'लुम
अभ्यास	करने से	विकास	(हुआ) प्रफुलित मेरा
स्वप्रकाश	ज़ोनुम	यिहोय	दीह
अंतर प्रकाश	(को) जाना	यही	देह में
प्रकाश	ध्यान	म्वख	यिय दोरुम
प्रकाश स्वरूप	के ध्यान	के लिए	यही धारण किया
स्वख्य	बो'रुम	को'रुम	ती
सुखी	हो गई	करके	वही

अर्थात, अभ्यास करने से मेरा विकास अथवा विस्तार हुआ और मैं खिल गई। इस शरीर को भी प्रकाश रूप मानकर इसी में ध्यान किया तो मैं अत्यंत सुखी हो गई। क्योंकि इसी शरीर द्वारा अभ्यास हो सकता है अन्यथा नहीं।

विशेष - शरीर की उपेक्षा नहीं करनी है क्योंकि यही एक माध्यम है जिस के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

टिप्पणी -शरीर का महत्व दर्शाने जैसी गूढ बात को सामने रखने वाली ललीश्वरी को 'दीवाना' कहा जा सकता है क्या? तथा शरीर की उपेक्षा करने तथा इसे कष्ट देने की बात पर बल देने वालों के लिए यह वाख एक प्रबल चोट है। शरीर की उपेक्षा करना शिवशास्त्र के सर्वथा प्रतिकूल है।

च़्यथ अमर पथि था'विज़ि ।
ति त्रा'विथ लगि ज़ूढे ।
तति च़्र नो शकिज़ि संदा'रिज़ि ।
द्रुद् शुर ता' क्वछि नो मूढे ।। १५८।।

क-५३। ग्रि-७०। शि-६६। पा-७६।

च़्यथ	अमर	पथि	थ'विज़ि
चित्त को	अमर (अविनाशी)	मार्ग पर	रखना
ति	त्रा'विथ	लगि	ज़ूडे (ज़ूरे)
उसे	छोड कर	लगेगा	मैली राह में
तति	च़्र नो	शकिज़ि	संदा'रिज़ि
वहां	तू नही	शंका कर (और)	संभालना स्वयं को
द्रुद् शुर	ता'	क्वछि	नो मूढे (मूरे)
दुधमुहा शिशु	भी (मां की)	गोदी में	नहीं मूढ बनता

अर्थात, अपने चित्त को अविनाशी पथ अर्थात परमार्थ के मार्ग पर चला ले नहीं तो यह दूसरे मैले पथ की ओर मुडेगा, अर्थात विषयों की ओर भागेगा। अमर पथ पर दृढ़ होकर चलते हुए शंकाएं (क्यों, कैसे, कहां, आदि) न करना चाहिए, अपितु अपने को संभाल कर अभ्यास करना चाहिए, दूध पीते शिशु की भांति जो मां के गोद में मूढता नहीं दिखाता, अपितु पूर्ण विश्वास (सहज़ व सरलता) के साथ एवं किसी शंका के बिना पूर्ण विश्वास के साथ संभल कर अपनी माता की गोद में बैठता है।

'ज़ूड़' - दिया रखने के लिए लकडी से बना छोटा तिपाया जो बहुत ही मैला तथा गंदा होता है।

च़्यदानंदस ज्ञान् प्रकाशस ।
यिमव च़्यून तिम ज़ीवंत्य म्वख़्त्य ।
विशमिस समसारनिस पाशस ।
अबो'द्य गन्डाह शथ शीत्य दित्य ।।१५६।।

क-११६। चि-४६। ग्री-६। शि-७६। पा-५२।

च़्यदानंदस	ज्ञान्	प्रकाशस		
चिदानंद को	(जो) ज्ञान	प्रकाश है		
यिमव	च़्यून	तिम	ज़ीवंत्य	म्वख़्त्य
जिन्हों ने	अनुभव किया	वे	जीते जी ही	मुक्त हैं
विशमिस	समसारनिस	पाशस		
कठिन	संसार रूपी	फांसी को		
अबो'द्य	गन्डाह	शथ	शीत्य	दित्य
बुद्धिहीन	गांठें	सौ	असी (को)	देते (हैं)

अर्थ - सतचित आनंद परमेश्वर, जो ज्ञान रूपी प्रकाश है, का जिन्होंने अनुभव किया, वे ही लोग जीते जी मुक्ति पाते हैं, अर्थात जीवन मुक्त हैं। इस के विपरीत अबोध लोग विषमय संसार रूपी फांसी को पहनकर, अर्थात अपना कर इसमें सेंकडों गांठें देते हैं, अर्थात अपने को संसार बंधन में बांधते हैं।

भावार्थ - संसार रूपी फंदे से सतचिदानंद परमीश्वर की भक्ति ही बचा सकती है। इस से विमुख अपने को माया के फंदे में उलझाता रहता है।

ज़ल थमवुन हुत वा तू़रनावुन ।
उर्द्धवा गमन पा'यरच्व च़'रिथ ।
काठ् दीनि द्वद शरमावुन ।
अनतिहि सकल् कपट च़'रिथ ।।१६०।।

क-११३। च-५६। ग्रि-३८। शि-७८। पा-८८-ए।

ज़ल	थमवुन	हुत वा	तू़रनावुन
(चलते) जल को	रोकना	(या) आग को	ठंडा करना
उर्द्धवा	गमन	पा'यरच्व	च़'रिथ
ऊपर (आकाश) की ओर	जाना	पैरों से	चढकर
काठ्	दीनि	द्वद	शरमावुन
लकडी की बनी	गाय से	दूध	दुहना
अनतिहि	सकल्	कपट	च़'रिथ
अंत में	यह सारे	कपट या छल	क्रिया ही हैं

अर्थात, चलते जल को रोकना, आग को ठंडा बनाना, आकाश में पैरों से चढना, लकडी की नकली गाय से दूध प्राप्त करना, अंततः यह सारे चमत्कार कपट के ही चरित्र अर्थात क्रियाएं हैं।

कौल- पद ११३' 'पा'यरच्व' के स्थान पर-'पा'रव' तथा (पारिमू- पद ८८-ए पृष्ठ १७६) में 'पा'यरच्व च़'रिथ' के स्थान पर 'पा'र वर्ज़ित चरित' - अर्थ, प्रकृति के विपरीत - बताकर मूल शब्दों में परिवतर्न हुआ है।

ज़ल् प्ये'ठ्य पकुन थ्यकुन लूकन ।
नारस अचुन मारस व्यद ।
आकाश गमनो वुफुन आसुन ।
कपट बासुन आसुन च़्यथ ।। १६१।।

क-२५२।

ज़ल्	प्ये'ठ्य	पकुन	थ्यकुन लूकन
पानी (के)	ऊपर	चलकर	दिखावा करना लोगों के सामने
नारस	अचुन	मारस	व्यद
आग में	घुसना	मरे का	इलाज करना
आकाश	गमनो	वुफुन	आसुन
आकाश	मार्ग से	उडान	भरना
कपट	बासुन	आसुन	च़्यथ
कपट ही	समझना	चाहिए है	चित्त में

अर्थात, कुछ लोग अपनी बडाई दर्शाने के लिए जल पर चलने, जलती आग में घुसने, मरे हुए का उपचार करने, आकाश में उडने का चमत्कार दिखाते हैं। किंतु, ऐसा समझना चाहिए कि यह सारे चमत्कार चित्त में कपट भावना रखकर किए जाते हैं।
विशेष - अभ्यासी को साधना में आते ही वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है। आगे जाकर और भी बडी सिद्धियां प्राप्त होती हैं। कुछ लोग इन सिद्धियों का दुरुपयोग करते हैं। चमत्कार दिखाकर लोगों को पथभ्रष्ट करके तथा स्वयं भी पुनर्जन्म के चकर में फंस जाते हैं। अध्यात्म पथ पर यह बातें बाधक बन जाती हैं क्योंकि मन के बिगडने से काम भी बिगड जाते हैं। इस लिए साधक को विषयों पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहिए।

दीव वटा दीवुर वटा ।
प्यठ् ब्वन छुय यीक् वाठ ।
पूज़ कस करख हूटू बटा ।
कर मनस त् पवनस संगाठ ।। १६२।।

क-६६। चि-३४। शि-२५। ग्रि-१७। पा-५५।

दीव	वटा	दीवुर	वटा	
देवता (भी)	पत्थर (का है)	उसका आसन (मंदिर भी)	पत्थर (का)	
प्यठ्	ब्वन	छुय	यीक्	वाठ
ऊपर से	नीचे (तक)	है	एक दूसरे से	जुडे
पूज़	कस	करख	हूट्	बटा
पूजा	किस की	करे गा तू	(अरे) मूढ	पंडित
कर	मनस	त्	पवनस	संगाठ
कर	मन	तथा	प्राणों का	एकीकरण

अर्थात, ललेश्वरी कहती हैं कि मन्दिर तथा इसमें स्थित मूर्ति एवं इसके बैठने का आसन ऊपर से नीचे तक सारा कुछ पत्थर ही पत्थर है। अरे मूर्ख ! अब तुम किस पत्थर की पूजा करोगे? हां (केवल) अपने मन और प्राणों को एक करके तू स्वात्म को प्राप्त होगा।

(हूट बटा-अग्नि होत्री होकर हिंसा करना मूढ ही है।) अर्थ - 'संगाठ' - संगठन, संघात (सं) - ' कुनुय करुन ' - एक करना।

घन छ्यज़ि त् रज़न आसे ।
भूतल गगनस कुन व्यकासे ।
च़ंद्र्य राह ग्रोस मावसे ।
शिव पूज़न गवाह च्य'त आत्मसे ।। १६३ ।।

क-११८। चि-३५। ग्रि-२२। पा-४६।

घन	छ्यज़ि	त्	रज़न	आसे
दिन	समाप्त (होता है)	तो	रात	आती है
भूतल	गगनस	कुन	व्यकासे	
धरती	आकाश	एक ही	दिखता है	
च़ंद्र्य	राह	ग्रो'स	मावसे	
चंद्रमा ने	राहु को	ग्रास किया	अमावस्या पर	
शिव	पूज़न	गवाह	च्यत	आत्मसे
शिव	पूजा	यही होती है	चित	आत्मा की

अर्थात, दिन की समाप्ति पर रात हो जाती है और अंधेरे में पृथ्वी व आकाश दृष्टि में एक जैसे दिखते हैं। चंद्रमा के उदय होने पर प्रकाश होता है। मानो चंद्रमा ने राहु को अमावस्या पर ग्रास कर लिया हो। अपने चिदात्मा में शिवपूजा यही होती है।

भावार्थ -दिन की समाप्ति पर रात्री का आगमन होता है। जिस से आकाश एवं धरती दोनों अंधेरे में ग्रस्त होजाते हैं मानो अमावस के चंद्रमा ने सूर्य को ढकने वाले राहु को भी ग्रास किया हो। अर्थात प्रत्येक वस्तु में परसपर अंतर करने का अभाव होता है। ऐसी काली रात मन की शून्य अवस्था का प्रतीक है जिस में द्वैत भाव नहीं रहता।

मन की इस अद्वैत अवस्था में प्रमात्र, प्रमेय, प्रमाण तीनों का अभाव रहता है। इसी अद्वैत भाव का प्रगट होना अपने चिदात्मा में शिव की पूजा है।

पारिमू-वाख ४६ की तीसरी पंक्ति में 'चंद्र्य राह ग्रोस मावूसे' का पाठ इस प्रकार दिया है। ' चंद्र राहु-ग्रोस मावूसे ' तथा अर्थ दिया है कि 'राहु चंद्रमा को अमावासी पर खाएगा'। यह मूल शब्द परिवर्तन किसी संदर्भ के बिना ही किया गया है जिस से अर्थ बदल गया है। राहु सूर्य को अमावस को खाता है न कि चंद्रमा को। इस प्रकार सरल पदों में उलझाव आ गया है। तथा क- ११८ की अंतिम पंक्ति में 'पूजुन गाह' शब्द के स्थान पर ग्रीर्यसन वाख २२ में 'पूज़न गवाह' मेरे विचार में ठीक है।

विशेष - ध्यान रहे कि अपनी समझ को पद के अनुसार बनाना किसी लेखक की तटस्तता है न कि अपनी समझ के अनुरूप पद का मूल रूप बिगाडना जो कि असत्यवादिता है।

पर तय पान यम्य सो'म मोन ।
यम्य ह्युव्य मोन द्यन क्यो रात ।
यमिस्य अद्वय मन सां'पुन ।
तमिय ड्यूंठ्य सुरग्वरनाथ ।। १६४ ।।

क-१३३। चि-७०। शि-३६। ग्री-५।

पर तय	पान	यम्य	सो'म	मोन
दूसरे तथा	अपने को	जिसने	समान	माना
यम्य	ह्युव्य	मोन	द्यन क्यो	रात
जिसने	समान	माना	दिन तथा	रात को
यमिस्य	अद्वय	मन	सां'पुन	
जिस का	द्वैत के बिना	मन	हो गया	
तमिय	ड्यूंठ्य	सुरग्वर	नाथ	
उसी ने	दर्शन किए	सत्गुरु (अर्थात)	परमेश्वर के	

अर्थात, दूसरे तथा अपने को, दिन और रात को जिसने समान माना। अद्वैत (समान, द्वैत के बिना) जिसका मन हो गया, उसी ने परमेश्वर (सत्गुरु) के दर्शन किए। सारांश यह कि मन की अद्वैत भावना से ही परमशिव के दर्शन होते हैं।

पवन पूरिथ युस अनि वगि ।
तस ब्वना स्पर्शि न ब्वछि त् त्रेश ।
ति यस करुन अनतिह तगि ।
समसारस सुय ज्यियि नेछ ।। १६५।।

क-५१। चि-७१। ग्रि-३७। पा-८४।

पवन	पूरिथ	युस	अनि	वगि
श्वास को	पूर्ण रूप से	जो	करेगा	काबू
तस	ब्वना	स्पर्शि न	ब्वछि त्	त्रेश
उस को	बिलकुल	छुए गी नहीं	भूख और	प्यास
ति	यस	करुन	अनतिह	तगि
वह (ऐसा)	जिसको	करना	अंत तक	आयेगा
समसारस	सुय	ज्यियि	नेछ	
संसार में	वही	जियेगा	वाह (सफलता से)	

अर्थात, जो मनुष्य अपने प्राण अपान को पूर्ण रूप से वश में करेगा उस को भूख प्यास कभी स्पर्श नहीं करेंगे। जो अंत तक ऐसा अनुशीलन करेगा, संसार में वही सफल होकर जियेगा।

पारिमू (८४) ने पहली पंक्ति का अर्थ 'सांस लेकर जो नियंत्रण में करता है' कहा है तथा सांस छोडने की बात छोड दी जो हठ योग की क्रिया है।

' वग ' - लगाम। अनति-अंत पर। नेछ, नेशनावुन - वाह वाह, ।

पटनूच सन दिथ थावन मटन ।
लूभ् ब्वछि बोलन ज्ञान्क्य गीथ ।
फ'ट्य फ'ट्य नेरन तिम कति वटन ।
त्रुकुय मालि छुख प्ूर्य कड पथ ।। १६६ ।।

क-२००। चि-६६। शि-१६६। पा-८८।

पटनूच	सन	दिथ	थावन	मटन
पटन[1] में	चोरी	करके	माल रखें गे	मटन[1] में
लूभ्	ब्वछि	बोलन	ज्ञान्क्य	गीथ
लोभ की	भूख से	बोलें गे	ज्ञान के (स्वांगी)	गीत (बातें)
फ'ट्य फ'ट्य	नेरन	तिम	कति	वटन
वे तो नंगे	हो जाएं गें	उन को	कहां (कुछ)	प्राप्त होगा
त्रुकुय	मालि	छुख	प्ू र्य कड	पथ
समझदार	आप	gks;fn ¼ढ़ks)	पैर हटा ले	पीछे (स्वांगी से)

अर्थात, लोभ के कारण स्वांगी लोग ज्ञान के गीत गायेंगे और पटन में डाका डाल के माल को मटन में (इधर का अर्थ उधर करना) छिपा देंगे। अर्थात झूठ का सहारा लेंगे। ऐसे लोग तो एक दिन नंगे हो जाएंगे तथा उन को कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। इसलिए, यदि तू बुद्धिमान है तो, ऐसे लोगों का निराकरण कर, या उन के साथ कोई मेल मिलाप मत रख। अर्थात इनसे बच के रह।

भावार्थ - स्वांगी मत बनो। स्वांग देर तक टिकता नहीं। अतः ऐसे लोगों का निराकरण कर यथार्थ का सहारा लेना चाहिए।१ - पटन, मटन - कशमीर के दो छोटे शहरों के नाम।

वाख १६६ का दूसरा रूप इस प्रकार है।

प'रिथ त बूज़िथ ब्रह्मन छ्यटन ।
आगर घटन तिहिंदि व्यद सूत्य ।
पटनूच सन निथ थवन मटन ।
मुहित मन गछ्यख अहंका'री ।। १६७।।

क-१८६।

परिथ	त्	बूज़िथ	ब्रह्मन	छ्यटन
पढ कर	और	सुनकर भी	ब्रह्मण	अपिवित्र होंगें
आगर	घटन	तिहिंदि	व्यद	सूत्य
स्रोत (वेद)	निम्न होंगें (अर्थ में)	उनकी	अशुद्ध अभिव्यक्ति	से
पटनूच	सन	निथ	थवन	मटन
पटन की	चोरी का माल	लेकर	रखेंगे	मटन में
मुहित	मन	गछ्यख	अहंका'री	
मोह वश होकर	मन	होगा उनका	घमंडी	

अर्थात, वेदों के ज्ञाता माने जाने वाले ब्रह्मण अब अनुभव के बिना अपवित्र तथा पथभ्रष्ट होंगे, अर्थात ब्रह्मकर्म से गिर जाएंगे, और वेद का निमन्न स्तर का अर्थ करेंगें। उनके मन में चोर अर्थात धोखा परिग्रहित होगा जिस कारण वह अशुद्ध अर्थ बताएंगे अर्थात झूठ बोलेंगे और मोह के कारण अहंकारी हो जाएंगे।

मनस ग्वन छुय चंचल आसुन ।
च्यतस ग्वन छुय गछुन दूर ।
ज़ीवस ग्वन छुय ब्वछ् त्रेश आसन्य ।
आतमस ग्वन छुय न आसुन लीफ ।। १६८।।

क-२५६।

मनस	ग्वन	छुय	चंचल	आसुन
मन का	गुण	है	चंचल	होना
च्यतस	ग्वन	छुय	गछुन	दूर
चित्त का	गुण	है	जाना	दूर
ज़ीवस	ग्वन	छुय	ब्वछ् त्रेश	आसन्य
जीव का	गुण	है	भूख प्यास (का)	होना
आतमस	ग्वन	छुय	न आसुन	लीफ
आत्मा का	गुण	है	न होना	लिप्त

अर्थात, मन का गुण चंचलता है, चित्त का गुण दूर निकल जाना है, जीव का गुण भूख और प्यास है और आत्मा का गुण निर्लिप्त होना है।

विशेष - मन चंचल है किंतु निरपेक्ष (न्यूट्रल) है। मन चित्त के संग मिलकर क्रियाशील होजाता है।

उदाहरण - आपकी कन्या पाठशाला में पढती है। दो बजे उनका स्कूल बंद होजाता है। आप उसे रोज़ जाकर अपनी गाडी में बिठाकर घर लाते हैं। आप पत्र लिखने में व्यस्त रहे और कन्या को लाने का विचार छूट गया। जब अनायास ही आपको कन्या का विचार आता है तो आपका मन विचार के साथ मिलकर तुरंत स्कूल पहुंच जाता है। जब तक विचार या चित्त मनके साथ नहीं मिलता मन कुछ नहीं करता है।

मारुख मार् बूथ काम क्रूध लूभ ।
नत् कान बरिथ मारनय पान ।
मनय ख्यन दिख स्वव्यचार् शम ।
विशय तिहुंद क्याह क्युथ द्रोवू ज़ान ।। १६६।।

क-३७। शि-४५। पा-८२। ग्रि-७१।

मारुख	मार् बूथ	काम	क्रूध	लूभ
मारो	मारने वाले भूतों	काम	क्रोध तथा	लोभ को
नत्	कान	बरिथ	मारनय	पान
अन्यथा	तीर	चढा कर	मारेंगे ये	तुझको (ही)
मनय	ख्यन	दिख	स्वव्यचार्	शम
मन द्वारा	खिलाओ	इन को	सुविचार रूपी	शम
विशय	तिहुंद	क्याह	क्युथ	द्रोवू ज़ान
विषय	इन के	क्या	कुछ है	दृढ़, जान ले

अर्थात, मारो ये हिंसक- काम, क्रोध तथा लोभ रूपी भूतों को। अन्यथा तीर चढा कर यह तेरे को ही मारेंगे। मन द्वारा इन को सुविचार रूपी शम का खाना खिलाओ। यह जान ले कि इन के विषय दृढ तथा टिकने वाले नहीं हैं ?

' क्यथ ' - क्या, कैसे। ' द्रोवू ' - ' दो'र ' - 'दृढ'। 'शम' का अर्थ यहां 'शांत करना' है। भावार्थ - काम, क्रोध तथा लोभ का वेग कुछ पलों के लिए ही होता है तथा यह अधिक देर तक टिकने वाले नहीं होते हैं। तो, साहसी इस पल को टालकर अपने को हानि से बचा सकता है। जैसे क्रोध के समय सचेत रहकर १५ तक गिंती पढने से क्रोध का वेग कम हो सकता है।

मूढ ज़ा'निथ पशिथ कर को'ल ।
श्रुतवुन ज़ड् रूप आस ।
युस यि दपिय तस ति बोल ।
यो'हय तत्व व्यदिस छु अब्यास ।। १७०।।

क-४०। चि-५० । ग्रि-२०। पा-१०।

मूढ	ज़ा'निथ	पशिथ	कर	को'ल
मूढ बन	जान कर भी	देखकर	कर (भी)	मूक बन
श्रुतवुन	ज़ड	रूप्	आस	
सुनकर भी	जड	रूप	बन	
युस	यि	दपिय	तस ति	बोल
जो कोई	जो कुछ	कहे	उस को	वही बोल
यो'हय	तत्व	व्यदिस	छु	अब्यास
यही	तत्व को	जानने वाले	के लिए है	अभ्यास

अर्थात, जान कर भी मूढ बन, देखकर भी अंधा बन और सुनकर भी जड रूप बन। जो कोई कुछ कहे उस को बोल कि हां आप का कहना ठीक है। यही तत्व को जानने वाले के लिए अभ्यास है।

इस वाख में तत्व से शैव सिद्धांत के ३६ तत्वों का ही अर्थ है। ३६ तत्व यह हैं- ५ भूत-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। ५.तनमात्र-गंध, रस, रूप, स्पर्ष, शब्द, ५ कर्म इन्द्रिय- उपस्थ, गुदा पाद, पाणि, वाक्। ५ ज्ञानेन्द्रिय- कान, लमस या चमडी, नेत्र, रसना, घ्राण। ३ अन्तःकर्ण-मन, बुद्धि, अहंकार। २४ वां मूल प्रकृति। अगले ६ तत्व पुरुष के ही अंग है वे पांच कुंचिका हैं-कला, विद्या, राग, काल, नियत या स्थान + माया। ५ शुद्ध तत्व-शिव,शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध विद्या। यह सारे मिलाकर ३६ तत्व हैं।(प्रनसिपल्ज़ ऑफ कश्मीर शैविज़्म-पृष्ठ ७१, ७२ पं श्री बलजीनाथ। तथा कश्मीर शैविज़्म-पहला अध्याय-स्वामी लक्ष्मण जी)।

मूढस प्र्नुन छुय म्वय वाल छ़्यदुन ।
मूढस प्र्नुन छुय मुरि ग्युन कोह ।
मूढस प्र्नुन छुय समंदर पूरुन ।
मूढस प्र्नन रावी दोह ।। १७१ ।।

क-१७६।

मूढस	प्र्नुन	छुय	म्वय वाल	छ़्यदुन
मूढ को	समझाना	है	बाल को	चीरना
मूढस	प्र्नुन	छुय	मुरि	ग्युन कोह
मूढ को	समझाना	है	गोद में	लेना पहाड को
मूढस	प्र्नुन	छुय	समंदर	पूरुन
मूढ को	समझाना	है	समुद्र को	भरना
मूढस	प्र्नन	रावी	दोह	
मूढ को	समझाते	गंवावो गे (अपना)	दिन (ही)	

अर्थात, मूढ या बात को न समझने वाले को समझाना बाल को चीरने, पर्वत को गोद में लेने या समुद्र को भरने जैसा है। इसलिए मूढ को समझाना व्यर्थ है। इस कारण उसे न समझाना ही ठीक है। ऐसा प्रयत्न करके आप अपना समय व्यर्थ करेंगें। ललेश्वरी के वाखों में एक ही संज्ञा को कई बार प्रयोग करने की पृथा तो मिल नहीं रही है किंतु दो वाखों में संज्ञा की कई बार पुनरुक्ति हुई है जैसे उपरोक्त वाख में मूढ चार बार आया है और वाख १७३ में भी 'मूढो क्रय छय न् ' की चार बार पुनरुक्ति हुई है। दोनों वाखों की असंदिग्धता विचारनीय है। अगले वाख १७२ में मूढ के स्थान पर खर, स्यकि शाठ, 'को'म याजि' का सुंदर प्रयोग हुआ है।

मूढस ज्ञानूच कथ नो वनिज़े ।
खरस गोढ दिन् राविय दोह ।
स्यकि शाठस फल नो व'विज़े ।
रावरिज़ि न् को'म याजन तील ।। १७२।।

क-१८। शि-१५७। पा-६।

मूढस	ज्ञानूच	कथ	नो	वनिजे
मूर्ख (कम अकल) को	ज्ञान की	बात	मत	कहो
खरस	गोढ	दिन्	राविय	दोह
गधे को	गुड	खिलाने में	नष्ट होगा	दिन
स्यकि	शाठस	फल (ब्योल)	नो	व'विज़े
बालू के	ढेर में	फल (बीज)	नहीं	बोना
रावरिज़ि	न्	को'म	याजे'न	तील
व्यर्थ करना	नहीं	धान के भूसे	की रोटियों पर	तेल

अर्थात, मूर्ख को साथ ज्ञान की बात मत करो। यह गधे को गुड खिलाने, रेत में बीज बोने तथा चावल के छिलके की बनी रोटियों में तेल डालने के बराबर है। सारांश यह कि मूढ को कभी समझाने की व्यर्थ कौशिश नहीं करनी चाहिए।

टिप्पणी - ' या'ज ' - चावल के आटे में ज़ीरा मिलाकर बनी एक विशेष रोटी जिसको कटोरी के आकार में बनाकर तथा तेल में तलकर मिट्टी के बर्तन में दीर्ग काल तक वाष्पित किया जाता है।

मूढ से प्रायः लल का अभिप्राय अज्ञानी से है।

मूढो क्रय छय न् दारुन त् पारुन ।
मूढो क्रय छय न् रछिन्य काय ।
मूढो क्रय छय न् दीह संदारुन ।
सहज़ वयच़ारुन छुय व्पदीश ।। १७३ ।।

क-५६। शि-१२३।

मूढो	क्रय	छय न्	दारुन	त् पारुन
रे मूर्ख	कर्म	नहीं है	प्राप्ति	और संवारना
मूढो	क्रय	छय न्	रछिन्य	काय
रे मूर्ख	कर्म	नहीं है	पालना अपने	शरीर को
मूढो	क्रय	छय न्	दीह	संदारुन
रे मूर्ख	कर्म	नहीं है	देह को	मोटा ताज़ा करना
सहज़	व्यच़ारुन	छुय	व्पदीश	
सहज	का चिंतन	है तेरे लिए	उपदेश	

अर्थात, ऐ मूर्ख ! पदार्थों को संचय करना, केवल काया को ही संभालना तथा सजाना वास्तविक क्रिया नहीं है। वास्तविक क्रिया तो सहज अर्थात स्वात्म का विचार करते रहना है।

' दारुन ' - धारण करना, प्राप्त करना, उधार रखना, हाथ से चक्की चलाने की लकडी या हत्था। ' पारुन ' - पालन करना। संवारना।

यव् त़ूर च़लिय तिम अमबर ह्यता ।
क्ष्वद यव् गलि तिम आहार अन ।
च़्यता स्व परा व्यच़ारस प्यता ।
चे़नतन यिह दीह वान का' वन ।। १७४ ।।

क-३३। चि-७४। ग्रि-२८। शि-४८। पा-८१।

यव्	त़ूर	च़लिय	तिम	अमबर	ह्यता
जिससे	ठंड	दूर हो	वे ही	कपडे	पहन
क्ष्वद	यव्	गलि	तिम	आहार	अन
भूख	जिस से	मिटे	वे	आहार	ला
च़्यता	स्व-परा	व्यच़ारस	प्यता		
मेरे चित्त	अपनी परा का	विचार	(तो) कर		
चे़नतन	यि	दिह	वान	का' वन	
समझ	इस	देह को	वाणी, (सुगठित बात)	क्या कहनी	

अर्थात, ललेश्वरी कह रही हैं कि ठंड से बचने के लिए उचित कपडे पहन। भूख जिस से मिटे वही आहार कर। ऐ मेरे चित्त! स्व की परा का विचार तो कर, अर्थात स्वात्मा की परा अवस्था के बारे में सोच। इस शरीर को समझ ले। तुम्हें इस बात को समझाने के लिए अति विस्तार से कौन सी वाणी का प्रयोग किया जाए।

अंतिम पद का अर्थ 'ग्रि-२८' तथा 'पा-८१' द्वारा 'देह को वन कौओं को दे' दिया है। यदि वन कोओं को खिलाना था तो सर्दी से बचने के लिए वस्त्र पहनाने या भूख मिटाने के लिए आहार करने की क्या आवश्यकता थी? अपने शरीरत्राण की चिंता करना तथा साथ ही आत्महत्या (वन कवों को खिलाना) करना फिर विरोधाभास ही दर्शाता है जिससे प्रस्तुत वाख निरर्थक बनता है।

यिहु यिह करम कर् प्यतरुन पानस ।
अरजुन बरजुन ब्येयिस क्युत ।
अनति लागि रुस पुशरुन स्वात्मस ।
अद् यूर्य गछ् त् तूर्य छुम ह्यो'त ।। १७५।।

क-४६। ग्रि-६१। शि-५१।

यिहु	यिह	करम कर्	प्यतरुन	पानस
जो जो	कुछ	कर्म करूं	भुगतना है	स्वयं को
अरजुन	बरजुन	ब्येयिस	क्युत	
चर्चा का	विषय	दूसरों	के लिए	
अनति	लागि	रुस	पुशरुन	स्वात्मस
अंत में	आसक्ति के	बिना	अर्पण करना है (कर्म फल)	स्वात्म को (परमात्मा को)
अद्	यूर्य	गछ्	त् तूर्य छुम	ह्यो'त
फिर	जहां	जाऊं	और वहां है मेरा	हित

अर्थात, अपना कर्म फल मुझे स्वयं ही भुगतना है। लोगों का काम केवल बातें बनाना है। कर्म में लिप्त हुए बिना ही ईश्वर अर्पण करके (अकर्तृत्व भाव से) कर्म करना है तो फिर जिधर भी जाऊं उधर मेरा हित है।

अरजुन बरजुन - अं'ज़रावुन - चर्चा करना।

राजस बा'ज ये'म्य करतल त्या'ज्य ।
स्वर्गस बा'ज छुय तफ तय दान ।
सहज़स बा'ज ये'म्य ग्वर् कथ पा'ज्य ।
पाप् प्वन्य बा'ज छुय पननुय पान ।। १७६ ।।

क-२२। ग्रि-६२। शि-५५। पा-२५।

राजस	बा'ज	ये'म्य	करतल	त्या'ज
राज्य का	भागीदार (वही है)	जिस ने	तलवार	त्याग दी
स्वर्गस	बा'ज	छुय	तफ तय	दान
स्वर्ग का	भागीदार (बनाता)	है	तप और	दान
सहज़स	बा'ज	ये'म्य	ग्वर् कथ	पा'ज्य
आत्मदर्शन का	भागीदार (वही है)	जिस ने	गुरुवाक्य का	पालन किया
पाप्	प्वन्य	बा'ज्य	छुय	पननुय पान
पाप एवं	पुण्य का	भागीदार	है	अपना आप ही

अर्थात, तलवार का त्यागी राज्य का भागीदार है (राजा के सामने तलवार त्याग कर अथवा मित्र बन कर ही राज्य का साझी बन सकता है)। तप, दान करने वाला स्वर्ग का साझी है और गुरु वाक्य का पालन करने वाला ही शिव का साथी, और पाप पुन्य का साझी अपना आप ही है।

कौल-२२ पद में 'त्या'ज' के स्थान पर 'पा'ज' लिखा है। जिस का अर्थ तलवार उठाना है किंतु 'पा'ज' शब्द दो बार आया है जिसका ललद्यद ने प्रायः कहीं प्रयोग नहीं किया है। इस लिए पा'ज शब्द शुद्ध नहीं है। तथा 'त्या'ज' ही शुद्ध शब्द है। तलवार दिखाकर किसी राज्य का भागीदार नहीं बना जासकता है।

राज़हमस आ'सिथ सपदुख को'लुय ।
कुसताम चो'लुय क्याहताम ह्यथ ।
ग्रट् गोव बंद तय ग्रटन ह्यो'त गो'लुय ।
ग्रट्वोल चो'लुय फल फो'ल ह्यथ ।। १७७।।

क-१०८। ग्रि-८६। शि-५५।

राज़हमस	आ'सिथ	सपदुख	को'लुय
राजहंस	होकर भी	तू हुआ	हकला
कुसताम	चो'लुय	क्याहताम	ह्यथ
कोई	भागा तेरा	कुछ	लेकर
ग्रट् गोव	बंद तय	ग्रटन ह्यो'त	गो'लुय
चक्की हुई	बंद और	चक्की ने पीसना	बंद (कर दिया)
ग्रट्वोल	चो'लुय	फल फो'ल	ह्यथ
तो ग्राठी	भाग गया	अनाज तेरा	लेकर

अर्थात, किसी को संबोधित करते हुए लल कहती हैं कि तुम कर्म रूपी अनाज, गुरु रूपी ग्राटी के पास पिसने के लिए लाया था किंतु तू राजहंस आत्मा होकर हकला गया और कुछ बोल न सका क्योंकि तेरे अंदर का वह राजहंस भाव खो गया है। इस कारण चक्की बंद होगई और तेरा कर्म फल पिसे बिना चक्की में फंस कर रह गया। ग्राटी अर्थात गुरु रूपी भगवान तेरा कर्म फल लेकर तेरे भुगताने के लिए साथ ले गया है। अर्थात अब पथ प्रदर्शक को पाना कठिन है।

ग्रियर्सन इस पद का अर्थ न दे पाये थे।

लज़ कासिय शीत न्यवारिय ।
त्रन ज़ल करि आहार ।
यि क'म्य व्यपदीश को'रुय हूट् बटा ।
अचीतन वटस सचीतन द्युन आहार ।। १७८।।

क-६५। शि-१२४। पा-६३।

लज़	कासिय	शीत	न्यवारिय	
लज्जा	बचाए	सर्दी	दूर करे	
त्रन	ज़ल	करि	आहार	
घास	पानी का	करे	आहार	
यि	क'म्य	व्यपदीश	को'रुय	हूट् बटा
यह	किसने	उपदेश	किया तुझे	हे अग्नि होत्री पंडित
अचीतन	वटस	सचीतन	द्युन	आहार
बेजान	पत्थर को	प्राणी	देना	खाने के लिए

अर्थात, 'राज़' कठ' अर्थात पत्थर की मूर्ति के सामने भेडू का बलिदान देने वालों को फटकारते और अहिंसा मार्ग पर ज़ोर देते हुए ललेश्वरी कहती हैं कि अपने को भट्ट कहने वाले अग्निहोत्री पंडित! यह भेड तो केवल घास खाता है, तेरे बदन को ऊन से ढांप कर लज्जा की रक्षा करता तथा सर्दी से बचाता है। ऐसा उपदेश तुझे किसने किया कि इस सजीव को मार कर बेजान पत्थर को मांस खिला दे। यह खेद की बात है।

मेरे विचार में 'हूट' शब्द संस्कृत 'हुत' आग का बिगडा रूप है। इस लिए 'हूट बटा' अर्थात अरे ! यज्ञ की आग में आहुति देने वाले पंडित।

लूभ मारुन सहज़ व्यचारुन।
द्रो'ग ज़ानुन कलपुन त्राव।
निश छुय तू दूर मो गारुन।
शुन्यस शुन्या मीलिथ गव ।। १७६।।

क-८४। ग्रि-३०। शि-११०। पा-४३।

लूभ	मारुन	सहज़	व्यचारुन
लोभ को	मारो	स्वात्म को	विचारो
द्रो'ग	ज़ानुन	कलपुन	त्राव
महंगा	जानना (यह)	कल्पनाएं	छोड दो
निश छुय	तू	दूर	मो गारुन
पास है तेरे	और	दूर जाकर	मत ढूंडो
शुन्यस	शुन्या	मीलिथ	गव
(फिर) शुन्य से	शुन्य	मिल	गया समझो

अर्थात, लोभ को मारना या समाप्त करना, सहज़ अर्थात आत्मा का विचार करना बहुत महंगा है, अतः अपनाना कठिन है। ऐसी कल्पना करना छोड दे। दूर जाकर मत ढूंढो उसे। वह दूर नहीं स्वयं तुम्हारे पास ही है। ऐसा समझ कर ही उस के साथ तेरा मिलन होगा, अर्थात तुम परमशिव के साथ एक हो जाओगे।

व्यथ रेन्या अरचुन सखर ।
अथि अल पल वखुर ह्यथ ।
यो'द वनय ज़ानख परम पद अक्षर ।
हिशिय खो'श खोवुर क्यथ ख्यथ ।। १८० ।।

क-६१। ग्री-१०। पा १३।

व्यथ	रेन्या	अरचुन	सखर
उठ	ऋणिया	पूजा निमित	तैयार होजा
अथि	अल पल	वखुर	ह्यथ
हाथ में	पूरी तैयारी (साथ)	नैवेद्य	लेकर
यो'द	वनय	ज़ानख	परमपद अक्षर
यदि	कहूं तुझे	तो जानोगे	परम पद अक्षर (ओम)
हिशिय	खो'श	खोवुर	क्यथ ख्यथ
एक जैसी	उल्टी	सीधी	क्रिया में क्या क्षति है

अर्थात, ललेश्वरी संबोधित करते हुए कहती हैं कि उठ ऋणिया (भगवद्भक्ति का ऋण चुकाने के लिए) पूरी तैयारी के साथ। पूजा के लिए अर्थात प्रभु से मिलने हेतु प्रस्तुत होजा। मैं तो कहती हूँ कि यदि परमपद (परमात्मा) अक्षर अर्थात ओमकार को जानोगे तो तुझे किसी प्रकार की क्षति नहीं होगी अतः लाभ ही होगा। फिर दायें बायें, टेढ़े चलें या सीधे कोई क्षति नहीं होती है। अर्थात भोग भोगने या न भोगने से कोई अंतर नहीं पडता है।

टिप्पणी - उपरोक्त चौथी पंक्ति के संदर्भ में यहां केवल दो संतों का उदाहरण देना समीचीन लगता है, १ - अब्दुल अहद ज़रगर जिसके संतान भी हो रहे थे और मुर्गा

भी खाते थे। २ - भगवान गोपी नाथ जी को लोग मांस भी खिलाते थे, किंतु वे स्वाद से अछूते रहते। दोनों परम पद पर पहुंच चुके थे। दोनों भोग भोगने पर भी अलिप्त थे। 'हिशिय खो'श खोवुर क्यथ ख्यथ' भी इसी संदर्भ में प्रयोग हुआ है।

' वखुर' - नाश्ता। जैसे भगवान के लिए नैवेद्य अथवा काम पर जाने के लिए निहारी। देखें 'वखुर' वाख 'मारुख पां'च़ भूत तिम फल्‌ हं'ड्य चीतन दान्‌ वखुर ख्यथ वाख १२८। 'अल पल वखुर ह्यथ' एक मुहावरा जिसका अर्थ है पूरी तैयारी के साथ - खेत को जोतने के लिए फाल लगा हल तथा अपने और बैलों के लिए निहारी साथ रखना (शराब नानो कबाब नहीं क्योंकि ललेश्वरी ने अहिंसा का पाठ दिया है - देखें 'लज़ कासिय शीत निवारिय') ताकि किसी वस्तु की कमी के कारण कार्य की एकाग्रता भंग न होजाए। 'खो'श खोवुर' - एक मुहावरा है जिसका अर्थ है उल्टा सीधा कार्य करना। शाब्दिक अर्थ - दाएं पैर का जूता बाएं पैर में और बाएं पैर का जूता दाएं पैर में पहनना।

'उतिष्ठ शक्तिकरन्त्री (रेन्या) त्वेन पूज्यश्याम सुरादिभिः यदि ज्ञातम अक्षरम तत त्वया तेनापि का क्षति'। भास्कर। यह अनुवाद भावार्थ ही है, और यर्थाथ भी है।

पाठ - ग्रि-१०। 'हिशी खो'श्य ख्वर क्यथ ख्यथ' का पाठ ही अर्थानुरूप लगता है न कि पारिमू-१३ का खो'श खुर क्यथ ख्यथ तथा कौल-६१, हे शिखर खे' शिखर ह्यथ।

अथ् मबा त्रावुन खर बा ।
लुक् हंज़ क्वंग् वा'र ख्ययी ।
तति कुस बा दारिय थर बा ।
ये'ति न'निस करतल प्ययी ।। १८१।।

क-३५। ग्रि-८८।

अथ्	मबा	त्रावुन	खर बा
खुला	मत	छोडो	गधे को अरे
लुक्	हंज़	क्वंग्	वा'र ख्ययी
दूसरे की	केसर की	क्यारी	खा जाएगा
तति	कुसबा	दारिय	थर बा
वहां	कौन दूसरा	प्रस्तुत करेगा अपनी	पीठ (दण्ड के लिए) अरे
य'ति	न'निस	करतल	प्ययी
जहां	तेरे नंगे (बदन पर)	तलवार	चलेगी

अर्थात, अपने मन रूपी गधे को खुली ढील मत दो। वह किसी दूसरे की केसर की क्यारी को चट कर जाएगा अर्थात अवांछित कर्म कराएगा। हानि तो गधा करेगा और दण्ड़ तो तुझे ही मिलेगा। तेरे बिना दण्ड को भोगने के लिए स्वयं को कौन प्रस्तुत करेगा। जहां बचाने वाला कोई भी नहीं होगा? दूसरे शब्दों में कि कर्म तो मन करता है और पीढा शरीर को सहनी पडती है। मन को नियंत्रण अर्थात काबू में न रखने से मनुष्य स्वयं ही कष्ट भोगता रहता है।

हा मनशि क्याज़ि छुख वुठन स्यकि लवर ।
अमि रटि हमालि पकिय न् नाव ।
ल्यूखुय यि नारा'न्य कर्मन्नि र्‌खि ।
ति मालि ह्यकिय न फिरिथ कांह ।। १८२।।

क-१५। ग्रि-१०७। शि-६४।

हा मनशि	क्याज़ि छुख	वुठन	स्यकि	लवर
अरे मनुष्य	क्यों है तुम	बटता	रेत की	रस्सी
अमि रटि	हा मालि	पकिय	न्	नाव
इसे पकड कर	अरे बाबा	चल सकती	नहीं	नाव (तेरी)
ल्यूखुय	यि	नारा'न्य	कर्मन्	र्‌खि
लिखा तेरे	जो	नारायण ने	कर्म की	रेखा में
ति	मालि	ह्यकिय न	फिरिथ	कांह
उसे	अरे बाबा	सकता नहीं	उल्टा	कोई भी

अर्थात, अरे मनुष्य! तुम क्यों बटता है रेत से रस्सी अर्थात व्यर्थ प्रयास कर रहा है? इस (रेत की रस्सी) को पकड कर तेरी जीवन नाव चलाई नहीं जा सकती। तेरी कर्म रेखा में जो नारायण जी ने लिखा है उसे कोई भी बदल नहीं सकता। सारांश यह कि उपायों से कर्म की गति को टाला नहीं जा सकता है। अर्थ यह कि मनुष्य शुभ अशुभ कर्म करने में स्वतंत्र है और इनका फल भोगने में विवश है। कितने ही प्रयास करे किंतु कर्मभोग अटल है। अतः अब पुर्षाथ द्वारा शिव को प्रसन्न करने का प्रयास करना चाहिए अगले वाख में इसी बात को दोहराया गया है।

शिव शिव करन हमस् गथ स्वरिथ ।
स्ज़िथ व्यवहा'र्य द्यन क्योह राथ ।
लागि रुस अद्वय युस मन क'रिथ ।
तस न्यथ प्रसन्न सुर ग्वर नाथ ।। १८३।।

क-१११। ग-१४। ग्रि-६५। पा-७५।

शिव	शिव	करान	हमस गथ	स्वरिथ
शिव	शिव	करते रहो	(कि) वह मैं हूं	जानकर ऐसा
स्ज़िथ	व्यवहा'र्य	द्यन	क्योह	राथ
रहकर	व्यवहारी	दिन	और	रात
लागि रुस	अद्वय	युस	मन	क'रिथ
लगाव के बिना	द्वैत बिना	जो	मन को	रखे
तस	न्यथ	प्रसन्न	सुर ग्वर	नाथ
उस पर	हर समय	प्रसन्न हैं	सत्गुरु रूपी	शिव

अर्थात, शिव ही मेरा रूप है, ऐसा मान कर दिन रात व्यवहार में रहते हुए द्वैत भाव को त्याग कर अलिप्त होकर कार्य जो करेगा, ऐसे व्यवहारी मनुष्य पर परमीश्वर सदा प्रसन्न रहते हैं। (यह त्रिक् का शांभव उपाय है) ।

शिशिरस वथ कुस रटे ।
कुस ब्वके रटे वाव ।
युस पां'छ़ यंद्रेय च़्यलिथ च़टे ।
सुय रटे गटे रव ।। १८४।।

क-६३। चि-८०। शि-१५३। पा-३४।

शिशिरस	वथ	कुस	रटे
शिशर मास का	रास्ता	कौन	रोके
कुस	ब्वके	रटे	वाव
कौन	मुट्ठी में	बंद कर सके	वायु को
युस	पां'छ़	यंद्रेय	च़्यलिथ च़टे
जो	पांचों	इंद्रियों को	कस कर काटे (वश में रखे)
सुय	रटे	गटे	रव
वही	पाएगा	अंधेरे में	सूर्य को

अर्थात, झाडे को आने से कौन रोक सकता है? वायु को अपनी मुट्ठी में कौन बंद कर सकता है? यह दोनों काम अति कठिन हैं। जो पांच इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने वाला है। वह ही प्रकाश रूपी स्वात्म को पा सकता है। अर्थात झाडे में सूर्य मेघ से ढका रहता है। इसी प्रकार अंतर प्रकाश विषय भोगों के कारण गौण हो जाता है। जो इंद्रियों के विषयों पर नियंत्रण पाएगा वही प्राण वायु को रोककर अज्ञान रूपी बादलों को हटाकर ज्ञान रूपी सूर्यप्रकाश का साक्षात्कार करेगा।

मुहावरे - 'वथ रट्न्य' - रासता रोकना । 'वाव ब्वकि रटुन' - वायु को मुठी में पकडना - असंभव काम करना।

शिव गुर तय कीशव पलनस ।
ब्रह्मा पायरय्चन व्वलस्यस ।
यूगी यूगॖ कलि परज़ान्यस ।
कुस दीव अश्ववार प्यठ चढ्यस ।। १८५।।

क-१२२। चि-६५। ग्रि-१४। शि-६८। पा-६५।

शिव	गुर तय	कीशव	पलनस
शिव	घोडा है तथा	केशव	काठी है
ब्रह्मा	पायरय्चन	व्वलस्यस	
ब्रह्मा	रिकाब बनकर	झूम रहा है	
यूगी	यूगॖ	कलि	परज़ान्यस
योगी	योग की	रुचि से	पहचानता है (जिसे)
कुस	दीव	अश्ववार	प्यठ चढ्यस
कौन है वह	देव	अनुभवी घुडसवार	ऊपर चढने वाला

अर्थात, यह एक आध्यात्मिक पहेली है जिस में ललेश्वरी पूछती हैं कि शिव एक घोडा है और केशव उसका पलना (काठी) तथा ब्रह्मा रिकाब बनकर प्रतीक्षा करते हुए झूम रहा है। योगी जिसको योग रुचि द्वारा पहचानता है। कौन है वह देव जो घुडसवार के रूप में इस घोडे के ऊपर चढने वाला या बैठने वाला हो सकता है?

पलना - भोज ढोने के समय घोडे या गधे की पीठ पर रखा जाता है। यह चमडे का ज़ीन नहीं है यह कपडे सूतली तथा तीलियों से बनाया जाता है।

'योग कलि' - योग की तकनीक द्वारा।

अनाहत ख-स्वरूफ शुन्यालय ।
यस नाव न वर्ण न गुथुर त्र्‌फ ।
अहम विमर्ष नाद ब्यंद्‌य यस वो'न ।
सुय दीव अशववार प्यठ चड्यस ।। १८६ ।।

क-१२३। चि-८७। ग्रि-१५। शि-६६। पा-६६।

अनाहत	ख-स्वरूफ	शुन्यालय		
अनाहत (ओम)	आकाशस्वरूप	शून्यालय		
यस	नाव	न वर्ण	न गुथुर	त्र्‌फ
जिस का (न)	नाम है	न कोई रंग	न कोई गोत्र	न कोई रूप
अहम	विमर्श	नाद ब्यंद्‌य	यस	वो'न
अहं	विमर्ष	नाद बिंदु की	जिसको	पहचान है
सुय	दीव	अशववार	प्यठ	चड्यस
वही	देव	घुड सवार	इस पर	चढेगा

अर्थात, ऐसे घोडे पर चढने वाले घुडसवार के बारे में स्वयं ही उत्तर देती हैं, कि जो अनाहत अर्थात ओम शब्द रूप है, आकाशवत शुन्य का स्रोत है, उसका कोई नाम वर्ण गोत्र तथा रूप नहीं है। अहं विमर्ष नाद बिंदु रूप की जिस को पहचान तथा समझ है और सदा उसी में स्थित है। वही पूर्ण साधक रूपी देव घुडसवार इस घोडे पर चढ सकता है।

'अशववार' -सिद्धहस्त घुडसवार। 'अहम विमर्ष' - 'मैं शिव हूं' यही भाव रहना। अनाहत - बिना चोट किए बाहर से न सुनाई देने वाला शब्द अर्थात ओम शब्द। यहां त्रिक् योग में शांभव उपाय द्वारा साधक की अनुत्तर अवस्था का वर्णन है। जो परम शिव का रूप है।

टिप्पणी-

१ - ऊपरोक्त प्रश्न (वा-१८५) में 'कौन' का उत्तर दूसरे पद (वा-१८६) में 'यस वो'न सुय' में है। मेरे विचार में वो'न का अर्थ है ('वनि आसुन') अर्थात समझा या पूर्ण रूप से जिसने जाना है ।

पारिमू ने 'यस वो'न' का अर्थ 'जिसे कहा गया' दिया है। 'कुस दीव अश्ववार प्यठ चढ्यस' तथा 'सुय दीव अशवार प्यठ चड्यस' दोनों स्थानों पर अश्वार शब्द के अर्थ का लोप कर दिया है। (पा-६५,६६ तथा 'सुय दीव अश्ववार' पा-६६ पंक्ति-१२) इसका अर्थ दिया है कि 'ओम रूपी परमशिव उस घोडे पर चढ सकता है' यह अर्थ मेरे विचार में समीचीन नहीं है, क्योंकि साधक ही उस स्तर तक पहुंचकर वैसा घुडसवार बन सकता है न कि ओम ही ओम पर चढेगा।

अभ्यास से सम्बन्धित तथा शरीर में ध्यान की चढाई के संदर्भ में मूलाधार (ब्रह्मा) से नाभिस्थान (विष्णु) हृदयदेश (शिव) से आगे ब्रह्मांड में पहुंचकर साधक की यही दशा होजाती है। जो उपरोक्त वाख में कहा गया है।

शील त् मान छुय पोन्य क्रंजे ।
म्वछि येम्य रो'ट मालि यो'द वाव ।
हो'स्त युस मस्तवाल् गंडे ।
तिय यस तगि तय सुह अद् निहाल ।। १८७।।

क-६४। चि-६४। ग्रि-२४। शि-६१।

शील त्	मान	छुय	पोन्य	क्रं'जे
शील तथा	मान	हैं (मानो)	पानी	टोकरी में (जैसे)
म्वछि	ये'म्य	रो'ट	मालि	यो'द वाव
मुठी में	जिसने	पकडा (बांधा)	रे बाबा	यदि वायु को
हो'स्त	युस	मस्तवाल्	गंडे	
हाथी को	जो	एक रुएं से	बांध सके	
तिय	यस	तगि तय	सुह अद्	निहाल
वैसा (करने का)	जिस को	सामर्थ्य है तो	वही फिर	पूर्णतः संतुष्ट है

अर्थात, शील और मान टिकाव नहीं होते हैं। मन की क्रिया होने के कारण यह टोकरी में पानी भरने के समान है। अर्थात अस्थाई हैं। मन को काबू करने वाले ने मानो वायु को मुठी में बंद किया हो और हाथी को एक बाल से बांध लिया हो। जो ऐसा करने में समर्थ है वही निहाल अर्थात पूर्णतयः संतुष्ट हो गया।

मुहावरे, 'क्रंजि पोञ', 'न पूरुन' - व्यर्थ प्रयत्न, - पूरा न पडना। 'म्वछि वाव रटुन' - कठिन प्रयास। 'हो'स्त गंडुन मस्वालस' - दुष्कर यत्न या कौशिश।

भावार्थ - मन को वश करना अति दुष्कर है। जो ऐसा कर सके वही पूर्ण संतुष्ट और सफल है।

स्वर्गस माजुन क्या छुय बासनो ।
नरकस वासुन आसुन द्वेश ।
च़ख रॄश नासुन शिवमय आसनो ।
पानय आसुन कासुन भीद ।। १८८ ।।

क- २५५।

स्वर्गस	माजुन	क्या	छुय	बासनो
स्वर्ग से	राग	क्या	है	प्रतीत तुझे
नरकस	वासुन	आसुन	द्वेश	
नरक में	वास करने से	क्यों	घ्रणा	
च़ख	रॄश	नासुन	शिवमय	आसनो
क्रोध (तथा)	द्वेष का	अभाव	शिवमय (होने की)	विशेषता है
पानय	आसुन	कासुन	भीद	
स्वयं ही (वही)	होना (और)	समाप्त (है) करना	द्वैत भाव	

अर्थात, स्वर्ग से राग तथा नरक से द्वेष क्यों करते हो? राग द्वेष का अभाव ही शिवमय होने का आभास कराता है। शिवमयता स्वयं ही भेद को नष्ट करती है।

विशेष - क्रोध, राग, द्वेष आदि का अभाव ही शिव भाव का होना सार्थक करता है।

सहज़स शम त् दम नो गछ़ि ।
यछ़ि नो प्रावख म्वखती द्वार ।
सलिलस लवन ज़न मीलिथ गछ़ि ।
तोति छुय द्वरलब सहज़ व्यच़ार ।। १८६।।

क-७६। चि-६१। ग्रि-२६। शि-६४। पा-३६।

सहज़स	शम त्	दम	ना	गछ़ि
आत्मबोध को	शम और	दम	नहीं	चाहिए
यछ़ि	नो	प्रावख	म्वख्ती	द्वार
इच्छा मात्र से	ही नहीं	मिले गा तुझे	मुक्ति का	द्वार
सलिलस	लवन	ज़न	मीलिथ	गछ़ि
पानी में	नमक (की तरह)	यदि कोई	घुल (भी)	जाए
तोति	छुय	द्वरलब	सहज़	व्यच़ार
तो भी	है	दुर्लभ	सहज	विचार (आत्मज्ञान)

अर्थात, केवल शम तथा दम से ईश्वर नहीं मिलता तथा केवल इच्छा करने से ही मुक्ति नहीं मिलती है। इन में कोई यदि पानी में नमक की तरह भी घुल जाए तो भी सहज विचार दुलर्भ है। सारांश यह कि केवल इच्छामात्र से मुक्ति नहीं मिलती अपितु अंथक प्रयत्न से ही ऐसा होने की संभावना है।

'शम' - इंद्रियों पर नियंत्रन होना। 'दम' - श्वासोश्वास पर नियंत्रन होना।

'सहज विचार' - सरल भाव से सहज या परमीश्वर या स्वात्म के साथ मिलने का विचार करना।

समसार नोम ता'व त'चूय ।
मूढन किचूय तावन् आय ।
ज्ञान् मुदरा छि ज्ञा'नियन किचूय ।
स्व यूग् कलि किन्य प्रज़न् आय ।। १६०।।

क-२०१। च-७५। शि-१६७।

समसार	नोम	ता'व	त'चूय	
संसार	नाम	एक तवा है	अति गर्म	
मूढन	किचूय	तावन्	आय	
(जो) मूढों	के लिए	तपाई	गई है	
ज्ञान्	मुदरा	छि	ज्ञा'नियन	किचूय
ज्ञान की	मुद्रा	है	ज्ञानियों	के लिए
स्व	यूग् कलि	किन्य	प्रज़न्	आय
जो (मुद्रा)	योग साधना	द्वारा	पहचानी	जाती है

अर्थात, संसार मूढों के लिए एक तपता तवा है किंतु ज्ञान मुद्रा वालों के लिए नहीं। वह ज्ञान मुद्रा उनको योग अभ्यास से प्राप्त होती है।

१६० 'क' आगरुय हा मालि ग्रो'ज़ुम वुगवाने डूर सो'गुम',

ओरचि कृपाये ज़गथ ब्यो'ज़ुम योर् म्य कें'ह को'रमस नो। क-१६३

अर्थः- स्रोत ने गर्जन किया नहीं तो मैंने थोडे थोडे पानी से क्यारी को सींचा था। जब उनकी कृपा हुई तब ही जगत का रहस्य ज्ञात हुआ , मेरे करने से कुछ प्राप्त नहीं हुआ। अर्थात, मैंने तो थोडा सा परिश्रम किया परंतु उससे क्या हो सकता था, किंतु प्रभु की कृपा होने से ही मैं कुछ जान गई। 'रूपभवानी रहस्योपदेश' में भी वाख १८ इस से मिलता जुलता है।

सिदमालि स्य'दव स्यद् कथन कन थाव ।
च़् दोह पथ कालि सरन क्या ।
बालको ! तो'ह्य किथव द्यनराथ बरिव ।
काल आव कुठन त्‌ करिव क्या ।। १६१।।

क-१५८। ग्रि-६१।

सिदमालि	स्य'दव	स्यद्	कथन	कन	थाव
हे सिद्ध	महात्मा	सरल	बातों पर	कान	धर
च़्	दोह	पथ	कालि	सरन	क्या
आप को	वे दिन	जो	भीते	याद	हैं क्या
बालको	तोह्य	किथव	द्यन	राथ	बरिव
अरे बालको	आप	किस प्रकार	दिन	रात	काटोगे
काल	आव	कुठन	त्‌	करिव	क्या
समय	आया	कम होते हुए	तो	करोगे	क्या

अर्थात, ललेश्वरी बालकों को देखकर सिद्ध पुरुष स्यदमोल से पूछती है कि आप को भी अपना बाल्यकाल स्मरण होगा। तो इन बालकों की क्या दशा होगी क्योंकि समय बीता जा रहा है और इन को प्रभु स्मरण का ज्ञान ही नहीं है। इस लिए इनको अध्यात्मिक पथ पर चलना सिखाना आप का दायित्व है। आशय यह कि ललेश्वरी अनुरोध करती है कि बच्चों में बाल्यकाल से ही अध्यात्म का बीज बोना चाहिए।

शिव छुय ज़ा'व्युल ज़ाल वाहरा'विथ ।
क्रंज़न मंज़ छुय तरिथ क्यथ ।
ज़िंद् नय वुछहन अद् कति मरिथ ।
पान् मंज़ पान कढ व्यचा'रिथ क्यथ ।। १६२।।

क-८२। शि-१४७।

शिव	छुय	ज़ा'व्युल	ज़ाल	वाहरा'विथ	
शिव	है	बारीक	जाल	फैलाकर बैठा	
क्रंज़न	मंज़	छुय	तरिथ	क्यथ	
अस्थि पंजरों	में	है	विद्यमान	क्या	
ज़िंद्	नय	वुछहन	अद्	कति	मरिथ
जीते जी	नहीं	देखो गे	फिर	कहां (देखोगे)	मर कर
पान्	मंज़	पान	कढ	व्यचा'रिथ	क्यथ
अपने आप	में से	अपने को	ढूंढ कर निकालो	(तथा) विचार	क्या

अर्थात, शिव बारीक ताना बाना बनकर फैला हुआ है और हाड मांस के बने शरीरों में विद्यमान है। अपने जीते जी ही उस को देखो। मर कर कहां देखोगे जब यह शरीर ही नहीं रहेगा। शिव सब में ओत प्रोत है। अपने इसी हड्डियों के पंजरे में जीतेजी उसे विचार कर अपने आपको ढूंढकर पा लो। इस शरीर बिना इसका पाना असंभव है। श्री मोती लाल साकी द्वारा रचित 'कुलियात शेख-उल-आलम' में यह वाख-४६ नुंदऋषि का कहा बताया गया है। जिस की केवल पहली पंक्ति ही ललवाख से मिलती है और शेष पंक्तियों की शब्दावली भिन्न है। हो सकता है कि ललेश्वरी के समय के पश्चात नुंदऋिषि ने भी इन्ही वाखों को भूमिका बनाकर श्रुक रचना की हो जिसमें ललेश्वरी की शब्दावली का प्रयोग हुआ हो।

दूसरा भाग

वाख १६३ से २१८ तक

इस भाग में उन वाक्यों को सम्मिलत किया गया है, जो भाव की दृष्टि से ललेश्वरी के जैसे लगते हैं किंतु नुंदऋषि के श्रुखों में भी दर्शाये गए हैं। तथा, कुछ वाख ललेश्वरी की भाषा स्तर की कसोटी पर खरे नहीं उतरते हैं। उदाहरण के तोर पर 'यार' 'गमूक्य जाम्', 'मरतब', 'साहिब', आदि शब्दों का वाक्यों में प्रयोग हुआ है। इन का वाक प्रकार, शैली, पदबंद, प्रतीकात्मकता, माप, तुकांत, अनुप्रास आदि ललेश्वरी के वाखों के समतुल्य नहीं है। कई ऐसे वाखों में आधुनिक शब्द व काव्य प्रयोग स्पष्ट है। किंतु लोक प्रिय होने के कारण यहां इन्हें भी सम्मिलित किया गया हैं।

आयस ति स्यो'दुय गछ् ति स्योदुय ।
स्यदिस हो'ल म्यह करय्चम क्या ।
बो' तस आस्स आगरय व्यो'द्य ।
व्यदिस त् व्यंन्दिस करय्चम क्या ।। १६३।।

क-२६। चि-६। शि-१६०। ग-४३। पा-३।

आयस	ति	स्यो'दुय	गछ् ति	स्योदुय
आई	भी	सीधे (और)	जाऊंगी भी	सीधे ही
स्यदिस	हो'ल	म्य	करय्चम	क्या
सीधी सादी को	टेढा	मुझ को	करेगा	क्या
बो'	तस	आस्स	आगरय	व्यो'दुय
मैं	उस	को थी	स्रोत से ही	जानती
व्यदिस	त्	व्यंन्दिस	करय्चम	क्या
जानी	और	मानी को	करेगा	क्या (टेढा संसार)

अर्थात, मैं संसार में सीधे आई तथा सीधे ही चली जाऊंगी। संसार का टेढापन मेरा क्या बिगाडेगां, अर्थात मैं संसार के टेढेपन (वासनाओं) की राह पर नहीं चलूंगी। क्योंकि मैं पहले से ही प्रभु को जानती हूं व उसकी भक्त हूं। यह ज्ञान रखने वाली का संसार कुछ नहीं बिगाड सकता। सीधे रासते पर चलने वाले को किसी का टेढापन क्या बिगाड़ सकता सकता है। यहां ललेश्वरी का इशारा पिछले जन्मों की भक्ति से हो सकता है। यह वाख नुन्द-३१७वां श्रुख है। किंतु वाख में प्रयोग लिंग के आधार पर इसे ललवाख की श्रेणी में रखा जासकता है।

मुहावरा - स्यदिस होल करि क्या - टेढा सीधे का कुछ नही बिगाड सकता है।

नुन्द-३१७ में तीसरी पंक्ति ' ब् तस गयास तती व्यो'दुय' के कारण अलग वाख है। हो सकता है कि ललेश्वरी का भक्त होने के कारण नुंद ऋषि ने यह वाख संशोधन करके कहा हो।)

ग्रट् छु फेरन ज़ेरे ज़ेरे ।
ओहकुय ज़ाने ग्रट्कुय छ़ल ।
ग्रट् यलि फेरि तय ज़ा'व्युल नेरे ।
गो' वाति पानय ग्रट्बल ।। १६४ ।।

क-५७। शि-१४६।

ग्रट्	छु	फेरन	ज़ेरे ज़ेरे
चक्की	है	घूमती	धीरे धीरे
ओहकुय	ज़ाने	ग्रट्कुय	छ़ल
ग्राटी ही केवल	जाने	चक्की	घुमाने का भेद
ग्रट्	यलि फेरि	तय	ज़ा'व्युल नेरे
चक्की (साधना)	जब घूमेगी	तो	महीन (आटा) नकले गा
गो'	वाति	पानय	ग्रट्बल
गेहूं	पहुंचेगा	स्वयं	चक्की के स्थान (पर)

अर्थात, चक्की धीरे २ घूमती है जिसे चलाने की तकनीक ग्राठी ही जानता है। जब चक्की चलेगी तो महीन आटा निकलेगा और गेहूं स्वयं ही चक्की पर पीसने के लिए पहुंचेगा।

भावार्थ - गेहूं रूपी साधक कर्म रूपी अंकुर को समाप्त करने के लिए गुरु रूपी ग्राटी (चक्की वाला) के पास आते हैं क्योंकि ग्राटी अर्थात गुरु ही चक्की घुमाने का 'छ़ल' अर्थात अध्यात्मिक साधना विधि का गुर जानता है। उसी के अनुभव से महीन आटे रूपी साधना (चक्की का घूमना) कर्म रूपी अंकुर के पिसे जाने से सफल हो जाती है और जिज्ञासु साधक 'ग्रट्बल' अर्थात गुरुधाम या परमधाम को प्राप्त होते हैं। विशेष - पक्का गुरु ही शिष्य को ठीक मार्ग दिखा सकता है न कि एक ढोंगी। नुन्द ३३२- ललेश्वरी के वाख का ही नकल लगता है। फिर भी मेरी राय अंतिम नहीं है।

ट्यो'ठ मो'दुर तय म्यूठ ज़हर ।
यस यूत छुनुख जतन बाव ।
ये'म्य यथ क'र्य कल त् कहर ।
सु तथ शहर वा'तिथ प्योव ।। १६५।।

क-२०। शि-१२०।

ट्यो'ठ	मो'दुर	तय	म्यूठ	ज़हर
कडवा	मीठा	और	स्वादिष्ठ	ज़हर
यस	यूत	छुनुख	जतन	बाव
जिसको	जितना	पैदा हुआ	प्रयत्न का	भाव
ये'म्य	यथ	क'र्य	कल त्	कहर
जिस ने	जिस (बात के लिए)	लगाई	लगन तथा	किया परिश्रम
सु	तथ	शहर	वा'तिथ	प्योव
वह	उसी	शहर	पहुंच	गया

अर्थात, मनुष्य जिस वस्तु को पसंद करता है वही उसको अच्छी लगती है चाहे वह मीठा, कडवा या मीठा ज़हर ही क्यों न हो। अर्थात, जिस को जिस बात की जितनी लगन होती है वह उसी परिमाण या मात्रा में उस स्थान पर पहुंच जाता है। तथा मनुष्य संसार में उलझेगा या अध्यात्म को पाने का प्रयत्न करेगा वह उस की रुचि तथा लगन पर निर्भर है।

मुहावरा - 'कल त् कहर' - अत्यंत ध्यान एवं परिश्रम से कर्म करना।

इस वाख (नुंद २५७) में पहली दो पंक्तियों की शब्दावली भिन्न है।

चालुन छु वुज़मलूह तू त्रटय ।
चालुन छु मन्धन्यन गट्कार ।
चालुन छु पान पनुन कडुन ग्रटय ।
ह्यत् मालि संतोश वाति पानय ।। १६६ ।।

क-२८। शि-११८। पा-५।

चालुन	छु	वुज़मलूह	तू	त्रटय
सहनी	हैं	बिजलियां	और	कडकें
चालुन	छु	मन्धन्यन	गट्कार	
सहना	है	दोपहर को ही	गहन अंधकार	
चालुन	छु	पान पनुन	कडुन	ग्रटय
सहना	है	अपने आप को	चक्की	में पीसना
ह्यत्	मालि	संतोश	वाति	पानय
तो रखो	आप	संतोष	आपहुंचे गा	स्वयं (लक्ष्य)

अर्थात, ललेश्वरी कहती हैं कि अध्यात्म को पाने के लिए कडक तथा बिजिलियां तथा दोपहर को गहन अंधकार सहन करने पडते हैं। ऐसा समझो कि चक्की के दोनों पाटों के बीच में पिसे जाने की पीडा को सहना है। जब संतोष तथा सहनशीलता प्राप्त होगी तो संतोष रखो कि लक्ष्य स्वयं ही पास आ पहुंचेगा।

मुहावरा - 'पान ग्रट् कडुन' - पूरा अनुभव प्राप्त करना।

भावार्थः सत्य यही है कि योग साधना के अग्रिम पडाओं में बिजलियां दिखती तथा कडकें सुनाई देती है जो सहन करना दुष्कर होता है और अभ्यासी को घबराहट होती है कि कहीं मर न जाऊं। इसे पाने के लिए अभ्यासी तो संतोष का ही दामन पकड लेता है। यहां अध्यात्म पथ पर संतोष का महत्व बताया गया है। (यह पद नुंद २४ में छः पदी वाख है और शब्दों में भी परिवर्तन है इस कारण दोनों अलग वाख हैं अतः चतुष्पदीय वाख ललेश्वरी का हो सकता है।) नुन्द-२४, तीन पद सांझा होने के कारण लल के वाख का नकल है।

ओ'मूय आद्य तय ओमूय सो'रुम ।
ओमूय ठहरुम पनुन पान ।
अन्यथ त्रा'विथ न्यथूय बोसुम ।
तवय प्रोवुम परमसथान ।। १६७ ।।

ग-१। क-१८२।

ओ'मूय	आद्य तय	ओमूय	सो'रुम
ओम ही	आदि और	ओम ही	जपा मैंने
ओमूय	ठहरुम	पनुन	पान
ओम को	ठहराया	अपना	शरीर
अन्यथ	त्रा'विथ	न्यथूय	बोसुम
अनित्य को	त्याग कर	नित्य	भासने लगा
तवय	प्रोवुम	परमसथान	
तभी	मुझे प्राप्त हुआ	परमस्थान	

अर्थात, ओम ही आद्य है इस लिए ओम का ही स्मरण किया। ओम को अपना आप ही मान लिया। अनित्य को छोडकर नित्य अर्थात ईश्वर का ही आभास होगया। इसी कारण ओम की उपासना से मैं ने परम स्थान पा लिया।

यह ओमकार के बारे में एक सामान्य पद है वा ४८, ४६, ५०, ५१ की समीक्षा करने से अतंर ज्ञात होता है।

द'मी डींठ्म नद वहवनी ।
द'मी ड'यूंठुम सुम न तृ तार ।
द'मी डींठ्म थ'र फ्वलवृनी ।
द'मी ड'यूंठुम गुल न तृ खार ।। १६८।।

क-१०। शि-२७। ग्रि-६६।

द'मी	डींठ्म	नद	वहवनी
कभी	देखा	नदी को	वेग से बहते
द'मी	ड'यूंठुम	सुम	न तृ तार
कभी	देखा	न पुल	न ही पार जाने का मार्ग
द'मी	डींठ्म	थ'र	फ्वलवृनी
कभी	देखा मैं ने	झाडी को	प्रफुलित
द'मी	ड'यूंठुम	गुल	न तृ खार
कभी	देखा उस में	न फूल	ही थे न कांटे ही

अर्थात, अपने जन्मों के बारे में जानकारी देते यह वाक्य कहा गया है। एक समय पर मैंने देखी एक नदी कम पानी वाली फिर इस नदी को गरजते हुए पाया अर्थात पानी से इतना लबालब भरा पाया कि उस पर न पुल या पार जाने की जगह ही या कोई घाट ही था। एक बार मैंने देखी फूलों की एक झाडी खिली हुई थी कभी मैंने देखी कि इसमें न पुष्प ही थे न कांटे ही। इस वाख में संसार की अस्थिरता प्रतिपादित होती है। इस वाख में 'खार' उर्दू शब्द है।

द'मी आ'सूस लो'कूट कूरा ।
द'मी आ'सूस जवाना पूर ।
दमी आ'सूस फेरन थोरन ।
द'मी सपनूस दज़िथ सूर ।। १६६।।

क-१४६। शि-२६।

द'मी	आ'सूस	लो'कूट	कूरा
किसी समय	मैं थी	एक छोटी सी	बालिका
द'मी	आ'सूस	जवाना	पूर
किसी समय	थी मैं	जवान	पूरी
दमी	आ'सूस	फेरान	थोरान
कभी	थी मैं	भ्रमन करती	फिरती
द'मी	सपनूस	दज़िथ	सूर
किसी समय	मैं हो गई	जल कर	राख

अर्थात कभी मैं बलिका थी और कभी वयसक थी और फिर घूमने फिरने लगी उसके बाद जलकर राख होगई अर्थात शरीर त्याग किया। संसार में आकर बचपन जवानी नहीं रहती और जीव को मृत्यु का ग्रास होना पडता है। यहां शरीर की बदलती अवस्थाओं से संसार की असारता दिखाई गई है।

यह एक हल्का एवं सामान्य वाख है। इसमें जवान शब्द उर्दू भाषा का है।

नियम कर्‍योथ गरबा ।
च्यतस करबा प्ययिय ।
मरन् ब्रोंठ्य मरबा ।
मरिथ मरतब ह्रिय ।। २००।।

क-१७। शि ३२। ग्रि-८७।

नियम	कर्‍योथ	गरबा
प्रण	किया था तूने	गर्भ में (आकर)
च्यतस	करबा	प्ययिय
याद	वह कब	आएगा तुझे
मरन्	ब्रोंठ्य	मरबा
मरने से	पहले ही	मर जा
मरिथ	मरतब	ह्रिय
मर कर	तेरा रुतबा	बढेगा

अर्थात माता के गर्भ में आकर तूने प्रण किया था (कि अब केवल आप का नाम ही जपूंगा)। तुम्हारे द्वारा किया गया वह प्रण तुझे कब याद आएगा। अपना शरीर छोडने से पहले ही अपने को पहचान ले तभी तेरा रुतबा बढेगा और तू ऊंचाई को पाएगा।

यह मीठा तथा सुंदर पद होने के कारण ललेश्वरी का होसकता है, किंतु मरतब शब्द के कारण ललेश्वरी के बाद के समय का वाख लगता है।

तिम छिन् मनुश तिम छि ऋेष ।
यिमन दिह मन् निशि गव ।
बडिथ त् बुडिथ ब्याख क्या रछिय ।
फुटिमितिस बानस प्यियि ग्यव ।। २०१।।

क-१८६।

तिम	छिन्	मनुश	तिम	छि ऋेष
वे	नहीं हैं	मनुष्य	वे	हैं ऋषि
यिमन	दिह	मन्	निशि	गव
जिनका	देह	मन	से अलग	होगया
बडिथ	त्	बुडिथ	ब्याख	क्या रछिय
बडा होकर	और	बुढापे में	दूसरा	क्या पाले गा तुझे
फुटिमितिस	बानस	प्यियि	ग्यव	
टूटे हुऐ	बर्तन में	गिरेगा (जैसे)	घी	

अर्थात, वे मनुष्य ऋषि हैं जिन्होंने बचपन से ही मन को शरीर से अलग रखा अर्थात मन को काबू कर लिया। बडा होकर जंजाल बढने और बुढापे में शरीर टूट जाने से मन काबू नहीं रहकर इधर उधर उसी प्रकार भटकता है जिस प्रकार टूटे बर्तन में से घी रिसकर निकल जाता है।

मुहावरा - ' तमि निशि गछुन '। किसी वस्तु से हाथ धो लेना, छुटकारा पाना।

शहन हुन्द शिकार गा'न्ठ कव् ज़ाने ।
हा'न्ठ कव ज़ाने पो'त्रय दोद ।
शमहुक सोज़ ल'श कव ज़ाने ।
म'छ कव ज़ाने पोंप्र्य गथ ॥ २०२ ॥

क-२०७। चि-८३। शि-१५४।

शहन	हुन्द	शिकार	गा'न्ठ	कव् ज़ाने
बाज़	का	शिकार (करना)	चील	क्या जाने
हा'न्ठ	कव	ज़ाने	पो'त्रय	दोद
बाँझ	कैसे	जाने	पुत्र की	पीडा
शमहुक	सोज़	ल'श	कव	ज़ाने
शमह का	आनंद	चीढ़ की लकडी	कैसे	जाने
म'छ	कव	ज़ाने	पोंप्र्य	गथ
मक्खी	कैसे	जाने	परवाने की	गति

भावार्थ -शाहबाज़ की तरह शिकार करने का अनुभव चील को कैसे हो सकता है। चील मुर्दा ही खाती है। बाज़ ज़िंदा को पकड कर खाता है। बांझ महिला पुत्र का दर्द कैसे जान सकती है। पुत्रवती ही पुत्र का दर्द जान सकती है। शमह का प्रकाश तथा लकडी की रोशनी की समता नहीं। 'परवाना और मक्खी की समता नहीं है।

सार यह कि अध्यात्म का रास्ता वीरों का रास्ता है। वे अपने लक्ष्य के लिए आगे का पथ स्वयं निर्धारित करते है। यह रास्ता कायरों के लिए नहीं है जो दूसरे का सहारा पाने का प्रयत्न करते है।

शिबन -१५४ 'शहन' के स्थान पर 'सिंहनी' तथा 'गां'ठ' के स्थान पर 'पा'ज़' प्रयोग किया है जो समतुल्य नहीं है। शमह उर्दू शब्द है। यह संदिग्ध वाख होसकता है।

परस हा मालि पो'रुम तु् पानस वुनुम ।
वन् कस ललि छुय म्य पानस राह ।
वाय गोम दिलस म्य क्याह को'रुम ।
कुनुय आ'सिथ सो'रुम न ज़ाह ।। २०३।।

क-२१५। शि-१७०।

परस	हा मालि	पो'रुम तु्	पानस	वुनुम
दूसरे को	अरे बाबा	समझाया और	स्वयं	समझा नहीं
वन्	कस	ललि छुय म्य	पानस	राह
कहूं	किस से	मुझ लल का है	अपना	दोष
वाय गोम	दिलस	म्य	क्याह	को'रुम
दुख हुआ	हृदय को	मैंने यह	क्या	किया
कुनुय	आ'सिथ	सो'रुम	न	ज़ाह
एक	होकर भी	स्मरण	नहीं किया	कभी

अर्थात, दूसरे को पढाया किंतु स्वयं समझा नहीं और यह मेरा अपना ही अपराध है। ऐसा मैंने क्यों किया यही दुख मुझे हुआ है। एक होकर कभी स्मरण नहीं किया।

टिप्पणी - देखें वाख ११८ ' दम् दम् ओमकार परनोवुम ' के साथ विरोध। 'दिल'-उर्दू शब्द है।

नफस्य म्योन छुय हो'सतुय ।
अ'म्य ह'स्य मों'गनम गरि गरि बल ।
लछ् मंज़् सास् मंज़् अखा लो'सतुय ।
नत् ह्यतनम सा'रिय तल ।। २०४ ।।

क-१४४। ग्रि पृष्ठ-१२६ पर नोल्ज़-२०१। शि-१३३

नफस्य	म्योन	छुय	हो'सतुय
मन (वासना)	मेरा	है	हाथी
अ'म्य	ह'स्य	मों'गनम	गरि गरि बल
इस	हाथी ने	मांगा	हर समय बल
लछ् मंज़्	सास्	मंज़्	अखा लो'सतुय
लाखों में से	हज़ारों	में से	कोई एक बच निकला
नत्	ह्यतनम	सा'रिय	तल
वरन्	दबा दिया	सब को	अपने नीचे

अर्थात, मेरा मन एक हाथी के समान है जो सदा बलवान बनने की इच्छा करता रहता है। इस इच्छा रूपी हाथी को लाखों मनुष्यों में किसी एक ने वश में किया। शेष सबको इस ने कुचल दिया।

भावार्थ - अपनी इच्छाओं पर काबू पाना बलवीरों का ही काम है। यही इच्छा पूर्णब्रह्म और हमारे बीच की बाधा है।

'नफस' उर्दू शब्द है।

बुथि क्या जान छुख व्वंद् छुय कनी ।
असल्च कथ ज़ांह सनी नो ।
परन लेखन वुठ ओंग्ज गजी ।
अंदरिम दुय ज़ाह च़जी नो ।। २०५।।

क-१४२। शि-१११।

बुथि	क्या	जान छुख	व्वंद् छुय	कनी
चेहरे से	कितने ही	अच्छे लगते हो	हृदय तो है	पत्थर का
असल्च	कथ	ज़ांह	सनी	नो
असली	बात	कभी	तूने बूझी	नहीं
परान	लेखान	वुठ	ओंग्ज	गजी
पढते	लिखते	तेरे होंट	अंगुली	घिस गए
अंदरिम	दुय	ज़ाह	च़जी	नो
अंदर का	द्वैत भाव	कभी	हटा	नहीं

अर्थात, चहरे से तो अच्छे लगते हो किंतु तेरा हृदय कठोर है। असली बात का तू ने मनन ही नहीं किया। पढने लिखने से तेरी केवल अंगुली और हूंट ही घिस गये किन्तु अंदर का द्वैत भाव हृदय से नहीं गया।

प्रान तू रुहुन कुनुय ज़ोनुम ।
प्रान बज़िथ लबिय न साद ।
प्रान ब'ज़िथ केंह ति ना ख्यज़े ।
तवय लो'बुम सूहम साद ॥ २०६ ॥

क-१५७- ग्रि-६०। शि-८५।

प्रान	तू	रुहुन	कुनुय	ज़ोनुम
प्राण	तथा	रुहुन को	एक जैसा	जाना
प्रान	बज़िथ	लबिय	न	साद
प्राण को	तलकर	मिलेगा	नहीं	स्वाद
प्रान	ब'ज़िथ	केंह ति	नो	ख्यज़े
प्राण का	तडका	लगा कर	नहीं	खा लेना
तवय	लो'बुम	सूहम	साद	
ऐसा करने से	पालिया	सोहम का	स्वाद	

अर्थात, प्राण तथा रुहुन लहसन (रूह) को एक जैसा माना। प्राण को तलकर (जला कर या पाणों को तकलीफ देकर) स्वाद न मिलेगा। इस लिए प्राण (प्राणों) का तडका लगाकर नहीं खा लेना। अर्थात प्राणों को हठात नहीं रोकना या पीडा देना। ऐसा (सहज क्रिया) करने से ही मैंने सोहम का स्वाद पा लिया, अर्थात स्वात्म को पहचानने का आनंद पा लिया।

कश्मीर में मुसलमान लोग ' प्राण ' तथा ' रुहुन ' तेल में जला कर सब्ज़ी में डालते है। प्राण के बारे में १५,१६ तथा १७ वाख को देखें।

स्वन द्राव वहनि त्‌ मल गव व'थित ।
ये'लि म्य अनल्ह. द्युतमस ताव ।
कतुर ज़न गयस लोल्‌ व्यगलिथ ।
यलि कठको'श चो़'ल निशि रव द्राव ।
लल बो रूज़ुस त्यलि शीहलिथ ।
ये'लि च़्यतस प्यव बो' तस नाव ।। २०७।।

क-१५४। पा-६६।

स्वन	द्राव	वहनि	त्‌ मल	गव वथित
सोना	निकला	आग में से	और मैल	उसका उड गया
ये'लि	म्य	अनल्ह.	द्युतमस	ताव
जब	मैंने	आग से	दी	गर्मी
कतुर	ज़न	गयस	लोल्‌	व्यगलिथ
बर्फ	जैसे	गई	प्रेम से	पिगल
यलि	कठको'श	चो़'ल	निशि	रव द्राव
जब	शरद	समाप्त हुआ	तो पास ही	सूर्य निकल आया
लल	बो	रूज़ुस	त्यलि	शीहलिथ
लल	मैं	रह गई	तब	शांत तथा ठंठी
ये'लि	च़्यतस	प्यव	बो'	तस नाव
जब मुझे	याद	आया	मेरा ही	उसका (भी है) नाम

अर्थात, जिस प्रकार तपाने से सोने की मैल हट जाती है और शुद्ध सोना प्राप्त होता है। उसी तरह अपने हृदय की मैल को तप द्वारा तपा कर दूर किया और अविद्या रूपी बर्फ भी पिगल गई और जब मुझे याद आया कि मेरा नाम तो उसी का नाम है अर्थात मैं और वह एक ही हैं तो मुझे परम शांति का अनुभव होगया। मेरे विचार में यह छः पदी वाख लल का नहीं है।

वुछान त् बो छस सा'र्यस्य अंदर ।
वुछुम प्रज़लान सा'र्यस्य मंज़ ।
बूज़िथ त् रूज़िथ वुछ हरस ।
घर् छुय तसुंदुय बो क्वस् लल ।। २०८।।

क-१६६। ग-३१।

वुछान त्	बो	छस	सा'र्यस्य	अंदर
देखती	मैं	हूं	सब के	अंदर
वुछुम	प्रज़लान	सा'र्यस्य	मंज़	
देखा उसको	प्रकाशमय	सब	में	
बूज़िथ	त्	रूज़िथ	वुछ	हरस
सुनकर यही	और (उस पर)	स्थिर	देख	हरि को
घर्	छुय	तसुंदुय	बो	क्वस् लल
यह घर (शरीर) भी	है	उसी का	फिर मैं	कौन लल (हूं)

अर्थात, जब मैं ने सब में झांका तो उसी को पाया। अपने शरीर में भी उसी को देखा। फिर यह लल नाम किस का है?

यह वाक्य लल का नहीं हो सकता है - कारण १. चारों पदों के अंतिम शब्दों की ध्वनि का कोई मेल नहीं है। २. पहली औरं दूसरी पंक्ति का अर्थ भिन्न नहीं है। ललेश्वरी के वाखों की यह विशेषता नहीं है।

तीसरी पंक्ति में मध्यम पुरुष तथा शेष पंक्तियों में उत्तम पुरुष का उपयोग इस पद को संदिग्ध बनाता है।

केंच़न र'ण्य छय शिहिज बूनी ।
नेरव न्यबर शुहुल करव ।
केंच़न र'ण्य छय बर् प्यठ हूनी ।
नेरव न्यबर त् ज़ंग ख्ययिव् ।। २०६।।

क-१५२। शि-१४५। ग्रि-१२५। चि-६५।

केंच़न	र'ण्य	छय	शिहिज	बूनी
कुछ की	पत्नि	होती है	ठंडी छांव वाले	चिनार (की तरह)
नेरव	न्यबर	शुहुल	करव	
निकलें	बाहर (घरसे)	तो साया	मिलेगा	
केंच़न	र'ण्य	छय	बर् प्यठ	हूनी
कुछ की	पत्नि	होती है	दरवाज़े पर बैठी	कुतिया
नेरव	न्यबर	त्	ज़ंग	ख्ययिव्
निकलें	बाहर	तो	टांग को	काटती है

भावार्थ - किसी की पत्नि ठंडे मिज़ाज की होकर चिनार के पेड की भांति ठंडा साया प्रदान करके सब को सुख देती है। कोई स्त्री घरके बरामदे पर बैठी कुतिया की तरह अर्थात कर्कशा होती है जो बात बात पर झगडा करती है अपितु ठंडी स्वभाव की गृहणी घर को प्यार से स्वर्ग बनाती है और झगड़ालू पत्नि घर को नरक बनाती है।

सबूर छुय ज़्युर मर्‌च़ त् नूनुय ।
ख्यन् छुय ट्यो'ठ त् ख्ययस कुस ।
सबूर छुय स्वन् सुंद दूरय ।
म्वल् छुय थो'द त् ह्यस कुस ।। २१०।।

क-२०२। चि-७६। शि-१६८।

सबूर	छुय	ज़्युर	मर्‌च़	त्	नूनुय
सबर	है	ज़ीरा	काली मिरिच	तथा	नमक
ख्यन्	छुय	ट्यो'ठ	त्	ख्ययस	कुस
जो खाने में	है	कडवा	फिर	खाएगा	कौन
सबूर	छुय	स्वन्	सुंद	दूरय	
सबर	है	सोने	का	झुमका	
म्वल्	छुय	थो'द	त्	ह्यस	कुस
मूल्य	है	ऊंचा	तो	खरीदे गा	कौन (इसे)

अर्थात, धैर्य एक ऐसा कडवा पदार्थ है कि इसे ग्रहण करना कठिन है। यह सोने की तरह अत्यंत मूल्यवान है। इस को खरीदना भी कठिन है। अर्थात धैर्य एवं सहनशीलता कोई विरला ही पा सकता है।

सबूर उर्दू शब्द है किंतु ललवाखों में उर्दू का प्रयोग नहीं हुआ है।

ब्रोंठ का'ल्य आसन तिथिय केरन ।
टंग चूंठ्य पपन चे़रन सू़त्य ।
माजि कोरि अथवास क'रिथ त् नेरन ।
दो'ह द्यन बरन परद्यन सू़त्य ।। २११।।

क-१५६। शि-३७। ग्रि-६२।

ब्रोंठ	काल्य	आसन	तिथी	केरन
आने वाले	समय के	होंगे	वैसे ही	लक्षण
टंग	चूंठ्य	पपन	चे़रन	सू़त्य
नाश्पाती	सेब	पक जायेंगे	खुबानी के	साथ (समय पर)
माजि	कोरि	अथवास	क'रिथ त्	नेरन
मां	बेटी	हाथ में हाथ	डालकर तथा	निकलें गीं
दो'ह	द्यन	बरन	परद्यन	सू़त्य
सारा	दिन	बितायेंगें	गैरों के	साथ

अर्थात, यह एक भविष्य वाणी की गई है कि आने वाले समय में सेब नाशपाती तथा खुबानी सब एक साथ ही पकेंगें। और मां बेटी हाथ में हाथ डाल कर घर से निकलेंगीं और सारा दिन दूसरों के साथ बिताएंगीं।

कोसम बागस हयो'तमय अचुन ।
पचि़यय मन त् अचुन प्राव ।
स्वरूप दर्शन छु तो'तुय अचुन ।
को'त छुय गछुन पकुन त्राव ।। २१२।।

क-२२७। ग-८२।

कोसम	बागस	हयो'तमय	अचुन
कुसुम	वाटिका में	आरंभ किया	घुसना
पचि़यय	मन त्	अचुन	प्राव
चाहे तेरा	मन तो	अंदर	प्रवेश (कर)
स्वरूप	दर्शन छु	तो'तुय	अचुन
स्वरूप का	दर्शन है	वहीं	घुसना
को'त	छुय	गछुन	पकुन त्राव
कहां	है	जाना	चलना छोड दे

अर्थात, मैं कुसुम वाटिका में प्रवेश करने लगी। तुम चाहो तो प्रवेश करो। वहां ही घुसने से स्वरूप का दर्शन होगा। इधर उधर जाना छोड दे। जहां आनंद की प्राप्ति अर्थात स्वरूप दर्शन हों वहां प्रवेश करो। इस के लिए कहीं नही जाना है। यह सब अपने अंदर ही है।

विशेषः- पहली पंक्ति में चलने के क्रिया है और चौथी में इसका उलट है यह विरोधभास लगता है। ललेश्वरी के वाखों में विरोधाभास नहीं है।

दो'द क्या ज़ानि यस नो बने ।
गमूक्य जामू हा वलिथ तने ।
गरू गरू फीरूस प्ययम कने ।
ड्यूंठुम नू कांह पनूनि कने ।। २१३।।

क-२०६। चि-८१। शि-१७१। पा-८।

दो'द	क्या	ज़ानि	यस नो	बने
जलना	क्या	जाने	जिस को (पर)	हुआ (बीती नहीं)
गमूक्य	जामू	हा	वलिथ	तने
चिंता के	वस्त्र	अरे	पहने	बदन पर
गरू	गरू	फीरूस	प्ययम	कने
घर	घर	गई	बरसे (मुझ पर)	पत्थर
ड्यूंठुम	नू	कांह	पनूनि	कने
देखा	न	किसी को	अपने	पक्ष में

अर्थात, जो स्वयं न जले वह जले हुए की पीढा को कैसे जान सकता है। गम अर्थात 'प्रियतम की चिंता' के कपडे पहने तथा घर घर में गई परन्तु मुझे दुत्कार ही सुननी पडी और मेरा समर्थन किसी ने नही किया अर्थात मेरी बात को कोई समझ न सका। 'गमूक्य जामू' उर्दू शब्द है इस कारण संदिग्ध ललवाख है।

श्रान तय ध्यान क्या सन करे ।
च़्यतस रठ त्रकऱ्य वग ।
मनस त़् पवनस मिलवन कऱ्य ।
सहज़स मंज़ कर तिर्थ स्नान ।। २१४।।

क-२४३। ग-६०। शि-३४।

श्रान	तय	ध्यान	क्या सन	करे
स्नान	तथा	ध्यान	क्या	करेगा
च़्यतस	रठ	त्रकऱ्य	वग	
चित की	पकड	कस कर	डोर (लगाम)	
मनस	त़्	पवनस	मिलवन	कऱ्य
मन	तथा	पवन (श्वास) का	मिलाप	कर
सहज़स	मंज़	कर	तिर्थ	स्नान
(फिर) आत्मा	में	करो	तीर्थ	स्नान

अर्थात, स्नान ध्यान से कुछ नहीं होता। प्राणायाम द्वारा अपने मन की डोर कस कर पकड के तब आत्म स्वरूप दिखेगा।

'स्नान' शब्द तथा 'वग' का वज़न बराबर नहीं है। देखें वाख ५४ 'ध्याऩ् किन्य दय ज़गि कीवल ज़ोनुम'। उपरोक्त वाख इस वाख के साथ मेल नहीं खाता है। इसलिए ललेश्वरी का वाख नहीं होसकता। केवल अर्थ तथा लोकमत की दृष्टि से यहां प्रस्तुत है।

शिव छुय थलि थलि रोज़ान ।
मव ज़ान ह्योंद तु् मुसलमान ।
त्रुकय छुख तु् पान प्रज़नाव ।
सय छय साहिबस सीतीय ज़ान ।। २१५।।

क-५६। शि-१४८।

शिव	छुय	थलि	थलि	रोज़ान
शिव	है	जगह	जगह	रहता
मव	ज़ान	ह्योंद	तु्	मुसलमान
मत	जानो (अन्तर)	हिंदू	और	मुसलमान में
त्रुकय	छुख	तु्	पान	प्रज़नाव
समझदार	हो	तो	अपने को	पहचान
सय	छय	साहिबस	सीतीय	ज़ान
वही	है	साहिब के	साथ	पहचान

अर्थात, शिव हर स्थान पर रहता है, हिंदु और मुसलमान का (भेद) मत करो। यदि समझदार हो तो अपने को पहचानो तो वही साहिब के साथ पहचान है।

यहां केवल प्रसंग हेतु इस वाख को शामिल किया गया है क्योंकि इसे ललवाख ही माना गया है तथा बडे चाव से प्रस्तुत किया जाता है ।

भावार्थ को छोडकर यह पद ललेश्वरी का नहीं है। जिसका तर्क यह है कि -

१. ललेश्वरी कश्मीर शैव सिद्धांत के पराद्वैत की अनुयायी थीं। लल ने द्वैत की बात कभी नहीं की तो लोगों ने यह पद उसके साथ जोड कर ललेश्वरी को द्वैत में खडा किया। वाख १८६ को समझने का प्रयास करें – ' शिव छुय ज़ा'व्युल ज़ालवाहरा'विथ ' अर्थात 'शिव बारीक जाल की तरह फेला हुआ है'। 'शिव छुय थलि थलि रोज़ान' पंक्ति 'शिव छुय ज़ा'व्युल ज़ाल वाहरा'विथ' के समांतर बनाई गई है। स्थान और विस्तार के आधार पर भी भावात्मक भिन्नता है।

२. कश्मीरी पंडित अपने को हिंदु नहीं किंतु कश्मीरी पंडित या 'भट्' ही कहते रहे हैं। घाटी में १९९० में इसलामी आतंकियों द्वारा बलपूर्वक निष्क्रमन के पश्चात् वह अब अपने को हिंदु कहलाने लगे हैं। तो ललद्यद के समय की बात ही क्या है कि हिंदु शब्द का प्रयोग होता होगा? ' वुछुम पंडित पनने गरे' अर्थात पंडित को अपने ही घर में पाया। ललेश्वरी ने अपने वाखों में 'पंडित' तथा 'बट्' शब्द का ही प्रयोग किया है न कि हिंदु का।

३. शिव सब में विद्यिमान है उसमें अंकों के लिए स्थान नहीं है तो दो (हिंदु और मुसलमान अर्थात भिन्नता) की बात अचिंत्य है। ३. इसमें ' साह्यब ' शब्द ही दर्शाता है कि यह पुरातन छंद नहीं है।

१. ललवाक्यों (वाखों) के आधार तथा संदर्भ

१. George Grierson and Lionel D. Barnett, 1920. Lalla-Vakyani,The Royal Asiatic Society London :109 वाक्य. नोल्लज़ के कुछ वाख में सम्लित है।

२. जिया लाल कौल तथा नंद लाल तालिव, १६८४. 'ललद्यद', तीसरा संस्करण, जम्मू कश्मीर अकाडेमी ऑफ आर्ट ऐंड कलचर। २५८ वाख (मिश्रित)।

३. शिवन कश्ष्ण रैणा, १६७७. 'ललदूयद' संस्कृत अनुवाद आचार्य श्री रामजी शास्त्री। प्रकाशक भुवन वाणी ट्रस्ट लखनऊ, १७६ वाख.

४. Michael Witzel, 1995. The Kashmiri Brahmins. In: Studies on the Nilamata-Purana, (Ed.), Y. Ikari, Kyoto, pp. 211- 268

५. बी एन सोपोरी १६६६., 'ए पीप इन टु हाई ह्यूमेनिटी' ललेश्वरी, २ भाग - प्रकाशन

६. सर्वानंद चिरागी 1996 Wise sayings of Laleshwari hindi- english edition Part I, 1st Edition -100 वाख

७. गोपी नाथ रैणा -'ललेश्वरी वाक्य रहस्य' ६३ वाख उपलब्ध हुए हैं।

८. नाज़ी मुनवर एवं शफी शौक. १६७८, 'का'शरि अदवुक तारीख', का'शुर डिपार्टमेंट, कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, प्रथम संस्करण.

६. बी एन पारिमू १६७८ 'दि एसेन्ट ऑफ सेल्फ' मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १०१. १८ भागों में विभाजित।

१०. फिदा मोहम्मद हुसनैन, २००६. द शाह हमदान आफ कश्मीर, श्रीनगर कश्मीर

११. समाज में प्रचलित लौकिक आदान प्रदान से।

१२. धान की निहाली लगाने वाले नि:अक्षर काश्तकारों द्वारा गाये गए गीतों में ललवाखों का गाया जाना जो वाखों के जन्म लेने के समय से लगभग शुद्ध रूप में आज तक गाये जाते रहे हैं। शब्दों के शुद्ध उच्चारण पर वरिष्ठ लोग कडी नज़र रखते थे।

१३. सोफी महफिलों में गाने वाले कलाकारों द्वारा गाये गीतों में ललवाखों का प्रयोग।

१४. 'To The Other Shore' Lalla's Life and Poetry Vitasta Publishers 1999 - कुल 148 वाख। जिसमें ललेश्वरी द्वारा पुरुष समाज के विरुद्ध विद्रोह करने का दावा किया गया है किंतु लल की सास एक महिला ही थी न कि पुरुष।

१५ 'वाखपोथी' महात्मा म्यर्ज़काक की अमृत वाणी -हस्तलिखितरचना समय-१६७३ बिक्रमी तदानुसार-१६१७ ई०, अप्रकाशित संकलन-श्री रामचंद काक हांगल गों'ड अनंतनाग कश्मीर। बिना शीर्षक मौखिक नाम 'वाखपूथ्य'। ललवाख पृष्ठ ८१, ८२, ८३।

१६. वयोवृद्ध स्वजनों से सुने मौखिक पद ।

१७. बिमला रैना..लल म्यान्यन नज़रन मंज़। Lal Ded in My View, Ubs Publishers Distributors Ltd. ISBN-13: 9788174766649 (2009).

टिप्पणी

१. ललवाक्यानि-George Grierson

२. Michael Witzel, The Brahmins of Kashmir - page 2.
"Under more enlightened successors, however, Brahmins were able to retain their comparatively high social status as government officials, and in fact so many of them worked for the early Sultans that Sanskrit remained the language of administration until the middle of the 15th century, - a fact illustrated by the current interpolated versions of Ksemendra's Lokaprakasa with its many Persian and Arabic loan words".

३. 'का'शरि अदबुक तारीख'। लेखक नाज़ी मुनवर शफी शौक।

४. नुंद ऋषि-का वाख देखें-
तस पद्मान पोरचि लले ये'म्य गलि गलि अमरय्थ चवो।
स' सा'न्य ति अवतार ल्वले तिथ्य म्यह वर दितो दिवो।

४क. (क) वो'न समद मीरन शास्तर ह्युव, पर ओम सू पर ओम सू।।
(ख) को'र ललि यिकवट् आकाशस प्रानस ज़ान मिलनाव भगवानस सूत्य।

छ़ल् गय ललम'च़ शुराह यार श्रानस पल् तमि को'र ज़गि तिक् तारनस।
व्यपदीश को'रनय नुंदरेशानस, रिंदव दो'पहस आ'नि आ'रिफान।
छ़्यप छ़ा'रिस गिंदुन शाहमदानस ज़ान मिलनाव भगवानस सूत्य।
शमस फकीर।(क-पृष्ठ ३१, ३२) ।

५. कश्मीर में स्यमपुर एक छोटा सा ग्राम है जो श्रीनगर जम्मू राजमार्ग पर पांपुर से चार मील पहले प्लाई बोंड कारखाने के पास ही पडता है। ललेश्वरी का जन्मस्थान घने पेडों के बीच में है जो चारदीवारी से घिरी हूई है। लेखक १९६४ ई में वहां अपने भाई को देखने जाता था जो प्लाई बोंड कारखाने में काम करता था। हमारा डेरा भी चारदीवारी जगह के पास में एक दो मंज़िल मकान की दूसरी मंज़िल में था, जिसके नीचे संगतराशों की दुकान थी, जो मसाला कूटने की ओखलियां आदि बनाते थे। मैं दुकान पर बैठकर उनकी कला को देखने के लिए घंटों गुज़ारता और छेनी हथोडे की समांतर ध्वनि का आनंद लेता। वे कभी ललवाख भी सुनाते और अर्थ वता कर कहते कि ललेश्वरी हमारे ही गांव की बेटी है और वह स्थान जो घेरा हुआ है वहीं पर उसका घर था और उसकी शादी बचपन में हुई थी किंतु उसने हमारे गांव का नाम रोशन कर दिया। वे तो हमारी पूजनीय है। वे ललेश्वरी की मुलाकात की दास्तानें सुनाते जो नुंदऋषि के साथ हुई थी।

६. 'दा एसेंट आफ से'ल्फ' पारमू पृष्ठ ३ पंक्ति २३ तथा पृष्ठ ६ पंक्ति १३ पर देखें।

७ 'बब् सुन्द नाव छुय जाना जिगरय ह्यहरन नाव क्याह को'रूये'। ह्यंज़े वनवुन 'हियमाल' २०१० पुष्कर नाथ रैणा पृष्ठ ६४ लायन १०।

८ 'पारिमू-ऐसेंट ऑफ स्यल्फ पद १'। तथा जन श्रुति पर एक नज़र-

जनश्रुति के अनुसार वितस्ता नदी के घाट पर घटी घटना 'ललि निलवठ च़लि न् ज़ाह' बात समाज में महिला वर्ग द्वारा स्वभाववश तुरंत फैलाई गई तो सितकंठ (सिद्धमोल) के घर भी यह वात पहुंच गई। इस छोटी तथा नन्ही सी वहू पर अत्याचार के पाप की चेतावनी सितकंठ (सिद्धमोल) ने अपने जजमान को सुनाई। ललेश्वरी के सुसर ने स्वयं ललेश्वरी की चावल की परोसी थाली में भात के नीचे पत्थर को पाया तथा ललेश्वरी की सहनशीलता पर आश्चर्य करते रहे कि उसने कभी भी किसी से यह शिकायत नहीं की थी कि प्रतिदिन उसकी सास उसकी थाली में परोसते समय भात के नीचे एक पत्थर रखती थी ताकि शेष लोगों को लगे कि ललेश्वरी के साथ अपनेपन का बर्ताव किया जाता है और विडंम्बना यह कि थोडा खाना मिलने के बाद भी वह इस

पत्थर को धोकर पुनः निश्चित स्थान पर रखती थीं। ससुर ने अपनी पत्नि के ऐसे घोर पाप करने पर प्रताडित किया था। तब जाके ललेश्वरी पर सास के सितम कम हो गए थे तथा उसके अध्यात्म की ओर झुकाव को अच्छा माना गया और ऐसा करने की उसे इस पथ पर स्वतंत्र रूप से छूट मिल गई। इस मुहावरे 'ललि निलवठ चॢलि न् ज़ांह' (अर्थात सितम कम न होना) ने ललेश्वरी के मुख से ही जन्म लिया था किंतु सखियों द्वारा उलाहना देने पर ही जवाब में उसने यह बात सहज ढंग से किंतु परोक्ष रूप से सुनाई थी न कि अपने इस कष्ट को लोगों के सामने व्यक्त करने के लिए। यह उस की निडरता ही थी कि बात को प्रभावोत्पादक डंग से प्रस्तुत किया।

९. त्रे'यि न्यंगि सरा सरॖय सरस अकि न्यंगि सरस अरशस जाय ; दमी डींठॖम पांडवन हॖंज मा'जी।

१०. ऐसा प्रतीत होता है कि ललेश्वरी ने कुछ देर तक अज्ञातवास में रह कर गहन तपस्या की होगी तभी उन्होंने अपने गुरु स्यदमोल को भी जगाया जब वह अपने घर के ठाकुर द्वार में पूजा कर रहे थ। कहा जाता है कि एक बार ललेश्वरी स्यदमोल के घर गई और अंदर जाकर गुरुमाता से पूछा कि (ललेश्वरीः- माता स्यदमोल कति छुह ? माता :- 'सु छु ठोकुर कुठि करन ज़फ'। ललेश्वरीः- ओवूह! 'सु छु वुन्यक्यन नंदॖ मरगि मंज़ गुर्यन सॗत्य करन टपॖ टप') अर्थात स्यदमोल कहां हैं? जवाव में उसने कहा कि वे ऊपर ठाकुर द्वार में बैठे जप कर रहे है। तो ललेश्वरी ने जवाब दिया 'हां वह नंद मरग में घोडों के साथ दुलतियां मार रहे हैं। (मैंने यह पद वयोवृद्ध सजन गोपीनाथ पंडित महिंद के मुख से सुना था)। यह वाख सुनते ही स्यदमोल निचली मंजिल में उतरे और ललेश्वरी के सामने मान लिया कि वह पूजा तो कर रहा था किंतु उसका मन नंदमरग चरागाह में उसकी गर्भिणी घोडी की ओर था कि कहीं कोई घोड़ा दुलती मार कर उसकी घोडी का गर्भ न गिरा दे) ऐसी त्रिकाल दर्शी ललेश्वरी अभी अपने घर में ही रह रही थी। स्यदमोल ललेश्वरी तथा इसके पति के बीच की वार्ता इसी बात का प्रमाण है।

११. कश्मीर में पधारने के वाद सैयिद अली हमदानी (शाहमदान) ने ललद्यद से मिलने का मन बना लिया जो उस समय खामपुर में थीं। ललेश्वरी जान बूझ कर तेज़ी से जा रही थी कि लोगों ने ललेश्वरी की ओर इशरा किया और सैयिद अली हमदानी उससे मिलने दौडे और लोग भी साथ चलने लगे। लल एक सब्ज़ी बेचने वाले की दुकान में घुसना चाहती थी जिसने मना किया तो वह नानवाई (कांदुर) के दुकान में घुस गई। इस लुकाछिपी (छ्यपछ़ोर) में लल जलते हुए तंनूर में कूद गई। कांदुर ने घवरा कर सोचा कि ललेश्वरी जल कर मर गई और उसे सज़ा होगी इसलिए तुरंत तनूर को डकन से ढांप लिया। सैयिद ने कांदुर (नानवाई) के दुकान में ललेश्वरी को जाते देखा

और तुरंत कांदुर की दुकान के पास पहुंच कर ललेश्वरी कहां हैं ? ऐसा पूछा। कांदर के इनकार करने पर उन्हों ने स्वयं तनूर का ढकन हटाया तो वहां से लल स्वयं दव्य आवरण पहन कर प्रगट हुई। कहा जाता है शरण देने के बदले नानवाइयों को ललेश्वरी का वर मिला और तभी से नानवाइयों द्वारा साफ तथा पवित्र रोटी बनाने का चलन हुआ और वरदान के भागी दार हुए।

१२. अमीर तिमूर-वंशज चंगेज़ खां।

अमीर तिमूर (१३३६-१४०५ ई) समरकंद से ५० मील दूर कैश जो अब शहरे सब्ज़ कहलाता है, में पैदा हुआ। उसकी मृत्यु ओटराव कज़ाकिस्तान में हुई। तिमूर ने मासको, इराक, मिसर, सीरया, अज़रबायजान, आरमेनिया, मसोपोटेमिया, जारिजिया पर विजय पाई। गाज़ी ('ज़फर नामा' से) बनने के लिए उसने १३९८ ई में भारत पर आक्रमण किया था। वह काफी दौलतमंद बन चुका था। कहा जाता है कि वह शरियत का सख्त पाबंद सच्चा तथा सख्त मज़हब परस्त मुसलमान होने का दावा करता था। इधर से सययिद मुहम्मद साहिब के वंशज होने के कारण अपने को आग में जलने से निरापद (इम्यून) मान कर सदा समाज पर अपना वर्चस्व बनाये रखते थे। इस कारण तिमूर अलवी सैययदों से घ्रणा करता था तथा आग से तपते धात के घोडे पर बैठने के लिए कहते थे। इस डर के कारण सारे सययिद वहां से अपने प्राण लेकर भाग गए और मीर सययिद हमदानी के नेतृत्व में कश्मीर में पनाह ली। तिमूर अपनी सलतनत में रातों में घूमकर रियाया की खबर लेता था। कहावत है कि एक बार रात को छद्म वेश में घूमते हुए जा रहा था कि एक घर के अंदर से बच्चों के रोने की आवाज़ सुनाई दी। वह रुका और सुना कि बच्चों की मां अपने बच्चों को तसल्ली देरही थी कि गरीबी के कारण उस के पास खाने को कुछ भी नहीं था और पिता के आने तक उन लोगों को खाली पेट प्रतीक्षा करनी होगी। उनकी दीनता को परख कर तिमूर ने महरों की एक थैली उनके घरके अंदर गिरवा दी। कुछ दिनों में उनकी दशा ही बदल गई। इतनी दौलत इनके पास कैसे आई ? एक दौलतमंद पडोसी ने इनपर अपनी दौलत चोरी होने का आरोप लगाकर दावा किया तथा शहर के काज़ी के पास इस गरीब के खिलाफ नालिश दायर कर दी। गरीब अपनी दौलत प्राप्त होने का कारण न बता सका और काज़ी ने उस को फांसी की सज़ा सुनाई। कहा जाता है कि अमीर तिमूर ने सययिद काज़ी के निर्णय को बदल दिया। तिमूर के गज़ब से सारी दुनिया कांपती थी। हो सकता है कि इस कारण भी ७०० सैयिद आग के घोडे पर चढने तथा भून जाने के डर से रातों रात सैयिद हमदानी के नेतृत्व में भाग खडे हुए और कश्मीर में पनाह लेली जहां सुल्तान कुतुब-उ-दीन शासक था। यहां सैयिद अली हमदानी ने इसलामी तबलीग आरंभ किया।

फिदा मुहम्मद हसनैन द्वारा लिखी पुस्तक 'द शाह हमदान आफ कश्मीर' २००६ संस्करण पृष्ठ ४ पर सैयिदों के घोडे पर जल जाने के भय से भाग जाने की बात कही है और चौथी अध्याय के ४१ पृष्ठ पर सैयिद अली हमदानी द्वारा आग के तपते घोडे पर बैठते ही ठंडा हो जाने की बात में 'खलासत-उल- मनकब' पुस्तक के लेखक का हवाला दिया है। उनके साथी कश्मीर में सैयिद की ज़ात से प्रसिद्ध हैं और अपने को कश्मीर के धर्मांतरित मुसलमानों से ऊंचा तथा वास्तविक मुसलमान मानते हैं।

१३. १६५२ ई० के नवंबर मास में मैं ने एक नाटे कद वाले त्राल निवासी लसा पंडित को देखा जो शाली की पूरी बोरी अपनी पीठ पर लादकर द्रुमवल की लंबी चढाई का रास्ता चढ रहा था जो उस ने लोगों से 'मांगय' (पैदावार का प्राप्त वार्षिक दान) के तोर पर प्राप्त की थी। समतल भूमि पर पहुंच कर वह सुसताने लगा। लगभग साढे चार बजे का समय था। पूछे बिना ही उसने अपने सांसों को गिन कर समय बताया। हमारी विद्यालय से छुट्टी हुई थी और वहुत सारे विद्यार्थी उसकी बाते सुनने लगे। हमने बोरी उठाने का कारण पूछा तो उसने 'यह मांगय की शाली है' शब्द कहे। अपनी आयु सौ वर्ष से कुछ ऊपर बताई और सैयिद अली हमदानी से उनके पूवर्जों की वार्ता तथा तांबे की पट्टी की बात सुनाई थी जो न्यूनाधिक इस प्रकार है।

'यहां त्राल में आकर सैयिद अली हमदानी की भेंट काली मंदिर के पुजारी से काली मंदिर के पास हुई। सैयिद ने कहा' काली का मंदिर मुझे सौंप दो। 'नहीं' पुजारी ने जवाब दिया। दोनों ने अपना अपना योगबल दिखाया। पिछडने के कारण अमीर ने अंतिम प्रश्न पूछा, अच्छा यह बताओ कि सैयिद अली हमदानी इस समय कहां है? काली भक्त पंडित पुजारी ने जेब में से पोथी (निचपत्री) निकाल कर सैयिद की ओर देखकर कहा 'वह या तो तुम हो या मैं हूँ'। सययद उत्तर सुनते ही पंडित के हाथ से पोथी छीनकर फाडने की कौशिश की किंतु पंडित ने उसकी ज़ोर ज़बरदस्ती को निष्क्रय कर दिया। सैयिद ने विनीत स्वर में पूछा कि अव कश्मीर में आगे किन का समय लिखा है? पोथी वाले पंडित ने कहा 'आप लोगों का' अर्थात मुसलमानों का समय। 'तो अब काली के मंदिर के स्थान पर आस्ताना बनेगा' सययद ने कहा। ब्राह्मण ने कहा कि हमारी रोज़ी रोटी तो इसी काली माता के नाम पर चलती है तो सययद ने कहा इस काली के स्थान पर आस्ताना निर्माण होगा तो इस की आय में तुम्हारा खांदान भी शामिल होगा और इस आस्ताने में लगभग छः सौ वर्षों के बाद जब आग लगेगी तो अपने काली मंदिर तथा इसमें रखी मूर्ति को पुनः संभाल लेना। ब्राह्मण ने कहा कि 'उस समय हमारे अगली पीढ़ी के पास क्या प्रमाण होगा?' फिर इस बात का ज़मानत

नामा या एग्रीमेंट तांवे के दो पट्टों पर खुदवाकर सैयिद के हस्ताक्षर अंकित कराके पंडित के हवाले किया गया। काली मंदिर के ऊपर एक भव्य आस्ताना खडा कर दिया गया और काली मंदिर को इसी आस्ताने के एक तहखाने में परिवर्तित किया गया जिसकी एक छोटी खिडकी मुख्य हाल में खुलती थी जो सदा वंद ही रहती थी तथा उन(लसा पंडित) के खांदान के लिए हर हफ्ते में एक दिन आस्ताने में घडी बजाने की वारी नियुक्त की गई। यह बोरी उसी मांगय की बोरी है जो शाली की कटाई के ऋतु के समय आस्ताने के मोलवियों और हमारे द्वारा लोगों से मांगकर ली जाती है। तांवे का लिखित पट्टा १९८९ तक त्राल के स्वर्गीय प्रकाश पंडित के पास था। किंतु कश्मीर में इसलामी आतंक वाद के कारण घर से भगाने पर वह त्राल में स्थित उनके घर में ही रह गया। इस बात की पुष्टि करते हुए प्रकाश पंडित ने जम्मू में मुझको वताई थी। ऐसा पंडित के साथ महादा हुआ जो तव से लेकर १९८९ तक प्रकाश राम पंडित का खांदान आस्ताने में गडियाल का काम करके आस्ताने की आमदनी में भागीदार थे और त्राल इलाके में मांगय जमा करते थे। स्मरण रहे कि किसी भी पंडित के अनुरोद पर मुतवली द्वारा खिडकी खोलकर मंदिर के दर्शन लालटेन जलाकर कराये जाते थे क्योंकि अंदर अंधेरा था। मंदिर के चश्मे का पानी पास में गुज़रते दिलनाग के पानी के साथ भूमिगत नाली द्वारा मिलता है। यह आस्ताना लगभग६०० वर्षों के वाद २००६ में पूरी तरह जल गया किंतु दूसरे प्रण की वात अव गौण हो गई है।

१४. नंगय शब्द के प्रयोग से नग्नता प्रकट नहीं होती है। इस संदर्भ में परम संत स्वामी गोविंद कौल वनपोह (१८८२-१९७३) द्वारा रचित इस पद को उद्धरित करना तर्क संगत रहेगा: (गोविंदमृत भाग २)

'ओमकार त्रिशूल लोयनम छ़लय दीह अभिमानस तुलनम कलय
दुय जाम् छ्यन्य त् गय न्यथ ननी न्यस्त्रय गुणी शीवस कर पूज़'। अर्थात उसने ओमकार का त्रिशूल मारा और मेरा अभिमान हर द्वैतका वस्त्र उतारकर मूझे नंगा कर दिया। यहां 'न्यथ नो'न' का अर्थ शाब्दिक नहीं लाक्षणिक होकर अद्वैत दशा को दर्शाता है न कि स्वामी गोविंद कौल नंगे बदन थे।

१५. दूध न पीने का कारण- लेखक द्वारा लिखी पुस्तक 'जीवनी स्वामी गोविंद कौल' पृष्ठ १७६ पंक्ति-३ (यह पुस्तक स्वा गोविंद कौल आश्रम महेंद्र नगर जम्मू में उपलब्ध है) । इस पुस्तक में नुंदऋषि के पूर्व जन्म की कहानी दी गई है कि नुंदऋषि जिसका पूर्व जन्म का नाम नंदराम था और गुरु का अपमान करने पद गुरु सहज़राम द्वारा शापित हो चुका था। इसी कारण नुंदऋषि ने अपने को नुंद नाम से ही संवोधित किया है। शैख नूरउदीन नूरानी, सैययद अली हमदानी का दिया इनका नाम है।

वाख सूची

सहायक अध्ययन

Lalla yogishwari, Anand Kaul, Vols. L, LIX, LX, LXI, LXII.

Vaakh Lalla Ishwari, Parts I and II (Urdu Edition by A. K. Wanchoo and English by Sarwanand Charagi, 1939).

Lal Ded by Jayalal Kaul, 1973, Sahitya Akademi, New Delhi.

Lalleshwari : Spiritual Poems by a Great Siddha Yogini, by Swami Muktananda and Swami Laldyada. 1981, SYDA Foundation,

Lal Ded: Her life & Sayings, by Swami Laldyada. Utpal Publications, 1989,

Naked Song, by Laldyada, Lalla, Coleman Barks (Translator), 1992, Maypop Books,

Toshkhani, S.S. (2002). Lal Ded : The Great Kashmiri Saint-Poetess. New Delhi: A.P.H. Pub. Corp.

Nil Kanth Kotru, Lal Ded Her life and sayings byw, Utpal publications, Rainawari, Srinagar, ISBN81-85217-02-5

http://en.wikipedia.org/wiki/Lalleshwari & referecers therin.

http://www.koausa.org/Saints/LalDed/Vakhs1.html

http://www.koausa.org/Saints/LalDed/Vakhs2.html

http://ikashmir.net/lalded2/index.html

http://www.hindu.com/lr/2005/05/01/stories/2005050100170400.htm



पुष्कर नाथ रैना का जन्म १६३६ ई में त्राल, कश्मीर के एक गांव लारीयार में हुआ। इनका परिवार पढा लिखा था। पिता की सातवीं संतान तथा पहले पुत्र । एम-ए तथा बी एड होकर शिक्षा विभाग में अध्यापक के तोर पर नियुक्त हुए और उच्च माध्यमिक स्कूल में हिंदी लेकचरार के तोर पर दिसंबर १६६६ ई में अवकाश प्राप्त किया। व्यवहारिक दृष्टि में वैज्ञानिक सोच, निर्भयता तथा निष्पाप बच्चों के संग में परमीश्वर के दर्शन पाना इनकी विशेषता है। भारतीय संस्कृति के प्रेमी होने के कारण इनको महाभारत, रामायण, गीताजी आदि का सामान्य ज्ञान प्राप्त है। महान संतों के साथ अनायास ही मिलाप होना इनकी स्वभाविकता है। कश्मीर के इतिहास तथा इसकी संस्कृति के प्रति रुचि रखते हुए कश्मीरी काव्य से भी लगन रखते हैं। शमस फकीर, अबदुल अहद ज़रगर, समदमीर तथा परमानंद, कृष्णजू राज़दान के मधुर काव्य को पढना सुनना पसंद है। सूफी गीत तथा संत वाणी प्रिय लगती है। संगीत के प्रति इनका अनुराग विद्यमान है। अध्यात्म के बारे में गुथी वनपोह के परम संत स्वामी गोविंद कौल ने सुलझाई। उनके काव्य का गाकर भली भांति रसास्वादन करके आनंद प्राप्त करना इनका शौक है। १४ अप्रेल १६६० के दिन प्यारे कश्मीर से निश्कासित हुए। उसके बाद लिखने में रुचि बढी और कुछ पुस्तकों ने जन्म लिया जिनमें प्रस्तुत पुस्तक के अतिरिक्त-जीवनी स्वामी गोविंद कौल वनपोह, हेंज़े वनवुन-पननि संकृति ह्यूंज़ अख ज़ान' जिसमें हेंज़े क्यिों और कैसे का उत्तर मिलता है। होल फुट्ज - मिश्रित गीत, परमानंद कृत ज्ञानप्रकाश का देवनागरी में लिप्यांतरण (कुछ संशोधनों के साथ) तथा पुस्तिका कश्मीर का संगर्षमय इतिहास (संयुक्त तोर शारदा केंदर के साथ) । अब ललेश्वरी को उनके ही वस्त्र पहना कर उनकी पवित्र वाणी प्रस्तुत है।

ISBN 81-85217-23-8



UTPAL PUBLICATIONS

R - 22, Khanjea Complex, Main Market, Shakarpur, Delhi - 110092

Ph. : 011-22464458, E-mail : utpalpublications@gmail.com

PB Rs. 300/-